उत्तर प्रदेश के चित्रकला जगत को समृद्ध करने वाले चित्रकार

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला में बंगाल शैली के चित्रकारों का योगदान

इलाहाबाद विश्वविद्यालय को चित्रकला विषय में डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध
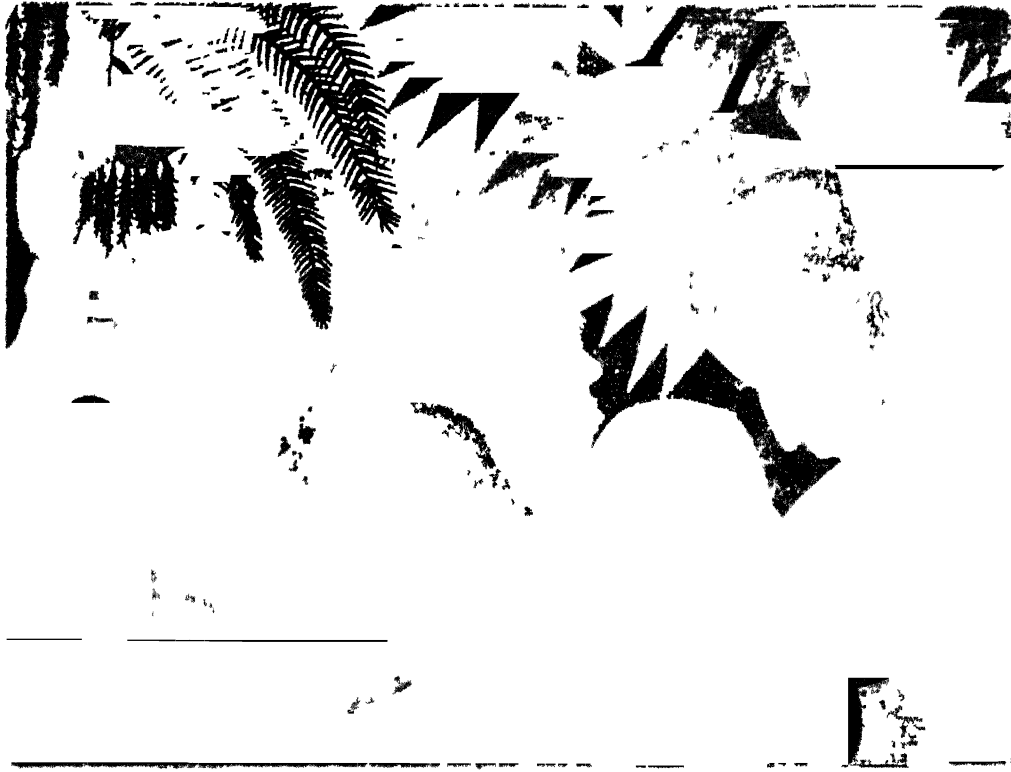
निर्देशक

डा० रामकुमार विश्वकर्मा
अध्यक्ष
दृश्य कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोध छात्रा

जूही शुक्ला
दृश्य कला विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

VOL-I

दृश्य कला विभाग

"लाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2000 - 2001

आवास
8B/14-A, शिवकुटी महादेव
पोस्ट आफिस कवलेरी लाइन्स
इलाहाबाद 211004

8-B/14-A, Shivkuti, Mahadev
PO Cavalary Lines
Allahabad - 211 004

✆ निवास/Resi (0532) 541386

CERTIFICATE

Certified that the present thesis entitled "**Uttar Pradesh Ki Aadhunik Chitrakala Mein Bengal Shaili Ke Chitrakaron Ka Yogdan**", being submitted for the degree of Doctor of Philosohpy in painting, is the original work of Ms. Juhi Shukla who has worked as a research scholar under my supervision.

Date 1.9.2001

Dr. R. K. Vishwakarma
Supervisor

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला में बंगाल शैली के चित्रकारों का योगदान

अनुक्रम

आमुख

कल्पना मानव स्वभाव का अभिन्न अंग है। कल्पना ज्ञात और परिचित विचारों को इस रूप में मिलाती है कि वह मिश्रित रूप नितान्त नवीन और विस्मयकारी हो कर अपूर्व आनन्द देता है। अनुकरण प्रियता और सौन्दर्य प्रियता की मनोवृत्ति मिलकर मनुष्य के कल्पना कौतुक में सहायता करती है, जिसके फलस्वरूप विविध कलाओं का आविर्भाव होता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्रकला को समस्त कलाओं में श्रेष्ठतम कहा गया है -

'कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।

मङ्गल्यं प्रथमं चैतद्गृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥'[1]

'कला उतनी ही प्राचीन है जितनी की मानव जाति और इसी प्रकार विभिन्नताओं से भरी है। सभी महान कलाकर्म एक विरासत हैं, उनका अपना अतीत होता है परम्परा होती है और चरित्र होता है। कला एक विशिष्ट ज्ञान है और इसीलिए इसकी अपनी व्यक्तिगत विलक्षणता है।'[2]

'ज्यौर्ज सैन्टायना अपनी पुस्तक 'रीजन इन आर्ट' में कला की परिभाषा देते हुए कहते है - ''कोई भी कृत्य जो किसी वस्तु को मानवीयता या वैचारिकता प्रदान करे वह कला है'' या 'भौतिक पदार्थो को आदमी द्वारा दिया गया आकार कलाकृति है।'

स्पष्ट है कि कला एक मानवीय क्रिया है, जिसके द्वारा भैतिक पदार्थ नया आकार प्राप्त करते हैं। इसे देखकर हम कलाकार के व्यक्तित्व तथा चरित्र का आभास पाते हैं,

---

1 विष्णु धर्मोत्तर पुराण,3 43-38

2 रूपदर्शिनी, द इण्डियन एप्रोच टू हयूमन-फार्म, ले0 एम0आर0 अचरेकर पृष्ठ स0 7

क्योकि यही मिलकर भौतिक पदार्थ को एकदम नया रूप प्रदान करते हैं, जैसा अन्यत्र कहीं भी नहीं देखा या पाया जा सकता । अर्थात् कलाकृति कलाकार के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करती है। कलाकृति कलाकार का एक प्रतिबिम्ब होती है। जिसके द्वारा हम कलाकार के मानवीय तथा वैचारिक स्वरूपका परिचय प्राप्त करते हैं। यहाँ क्रोचे का सिद्धान्त कला आत्म अभिव्यक्ति है चरितार्थ होता है।

कला अभिव्यक्ति है और व्यक्ति अपने व्यक्तित्व या आत्मा की ही अभिव्यक्ति कर सकता है। उसका व्यक्तित्व तथा आत्मा - शरीर, मन तथा मास्तिष्क के विकसित गुणों से परिपूर्ण होते हैं। इनके द्वारा वह जो अनुभूति ग्रहण करता है उसे ही कला में अभिव्यक्त कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति व्यक्तिगत होती है। इसीलिए व्यक्तिगत अनुभूति की ही अभिव्यक्ति कला मे की जा सकती है। अनुभूति का कोई स्थूल स्वरूप नहीं होता। वह सूक्ष्म होती है। इसीलिए उसे जितने ही सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त किया जाय उतनी ही वह शुद्ध, निर्मल तथा प्रभाव शाली होती है।[1] आज की कला में व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की ही बात ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमारी ऑखें दृष्टि के यन्त्र रूप में कुछ निश्चित आयामों के आगे नही देख पाती। ये आयाम है लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई। रूप और आकार और अधिक आयामों के साथ नेत्रो द्वारा नहीं देखे जा सकते। यहाँ तक कि त्रिआयामी रूप भी केवल टुकड़ो में ही देखे जा सकते हैं इन्हें कभी भी पूर्णता में नहीं देखा जा सकता। मस्तिष्क एक खण्ड (Fraction) से दूसरे तक सम्पूर्ण त्रिआयामी फार्म की चित्ररूप में कल्पना कर उसे जोड़कर देखता है। इसी प्रकार जब हम अपनी ऑखे बंद करते है तभी हम वस्तुओं को वास्तव मे देखते हैं और बिना देखे हम बहुत कुछ देखते हैं। उपनिषदों में भी कहा गया है- 'वह अकेला देखता है जो सभी प्राणियों को अपने समान देखता है जिसे हम नहीं जानते है वह हमारे भीतर के सभी अणुओं में विद्यमान है।[2]'

---

1 कला का दर्शन, रा0च0शुक्ल, पृष्ठ स0 340

2 इण्डियन एस्थेटिक्स एण्ड आर्ट एक्टीविटी, पृष्ठ स0 68-69

चित्रकार का कार्य सिर्फ प्रकृति की वास्तविक नकल करना ही नहीं बल्कि प्रकृति की त्रुटियों या अपूर्णता को विकसित कर पूर्णता प्रदान करना भी है।[1]

आधुनिक चित्रकला में लोक कलाओं को प्रेरणा स्वरूप चित्रकारों ने अपने निकट पाया है जबकि इस लोक कला का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है और न ही ये ऐतिहासिक रूप से विकसित ही हुई है। ये उसी प्राचीन आदर्श के रूप में दिखती हैं जो पिता द्वारा पुत्र को समय की यादगार स्वरूप सौंपी जाती है। इसके रूप की अवधारणा में कोई औपचारिक परिवर्तन दिखता नहीं लेकिन सभी कालों की समस्त पीढियों द्वारा समाज मे इसे पर्याप्त मान्यता मिली है। इसकी सरलीकृत विशेषताओं मे एक अपील रही है जिसने शहरो के अभिजात्य वर्ग एवं गांव के अनाभिजात्य वर्ग दोनों को समान रूप से आकर्षित किया है।[2]

प्राचीन काल मे उत्तर प्रदेश 'मध्य देश' के नाम से विख्यात था। मनुस्मृति (2/1) में हिमालय और विन्ध्य पर्वतो के मध्य में जो विनशन सरस्वती नदी थानेश्वर के पश्चिम मे प्रवाहित होकर जहाँ विलीन होती है, से लेकर प्रयाग तक का प्रदेश मध्य देश कहा जाता था।[3]

इसी प्रकार उत्तर प्रदेश का अर्वाचीन महत्व तो रहा ही है चित्रकला के क्षेत्र में भी आदिम चित्रकारी के अनेकों स्थल यहाँ पाये गये, किन्तु जब जब आधुनिक चित्रकला की बात उठी तो उत्तर प्रदेश के विषय मे खुलकर कभी किसी ने चर्चा करना ज़रूरी नही समझा, जबकि इस दृष्टि से भी उत्तर प्रदेश काफी सम्पन्न रहा है। यहाँ के चित्रकारों ने देश विदेश तक में अपनी पहचान बनाई है। राज्य ललित कला अकादमी ने एवं प्रदेश के अन्य कला सस्थाओं ने भी उत्तर प्रदेश की समसामयिक एवं आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में सकारात्मक कार्य किया है किन्तु इन सबसे पूर्व बंगाल शैली के चित्रकारों ने ही इस क्षेत्र में शुरूआती क़दम बढ़ाया। यूँ तो बंगाल शैली, आधुनिक चित्रकला आदि के विषय में बहुत

---

1 इण्डियन एस्थेटिक्स एण्ड आर्ट एक्टीविटी, पृष्ठ स0 233

2 वही पृष्ठ स0 46

3 ज्यागरफी ऑफ पुराणाज डा0 एस0एम0 अली, पृष्ठ सख्या 10

सारे ग्रन्थ है पुस्तके हैं और पत्र पत्रिकाये है, किन्तु 'उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला मे बंगाल शैली के चित्रकारो का योगदान' एक साथ कहीं भी उल्लिखित नहीं है। अत: इस क्षेत्र में कार्य करना मेरे लिए गर्व की बात है और यही मेरे शोध का मुख्य उद्देश्य है।

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला में बगाल शैली के चित्रकारों का योगदान विषय पर कार्य करने का बीज परम् आदरणीय गुरू डा0 राम कुमार विश्वकर्मा जी के सानिध्य से अंकुरित होकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के रूप मे पुष्पित हो रहा है, आपने श्रेष्ठ गुरू एवं स्नेहिल पिता के रूप में समय समय पर मेरा निरंतर उत्साह वर्धन किया है। अत: इस प्रबन्ध का सर्वश्रेष्ठ अंश इन्हीं गुरूदेव का प्रसाद है।

जूही शुक्ला

शोध छात्रा

आभार ज्ञापन

किसी भी कार्य को उसके अजाम तक पहुंचाने के लिए व्यक्ति की भीतरी इच्छा, लगन, परिश्रम के साथ साथ प्रेरणा और सहयोग की अहम् भूमिका होती है।

मैं सर्वप्रथम अपने शोध प्रबन्ध के निर्देशक डा0 राम कुमार विश्वकर्मा, विभागाध्यक्ष, दृश्य कला संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। यह शोध प्रबन्ध आप ही की सतत् प्रेरणा, सजग मार्ग निर्देशन, आत्मीयता पूर्ण सहयोग का ही प्रतिफल है। साथ ही मैं गुरूपत्नी परम् आदरणीया श्रीमती विश्वकर्मा जी की भी आभारी हूँ जिन्होने मुझे निरंतर अपने मातृत्व से अभिसिंचित किया जिससे मुझे शोध कार्य के लिए उत्साह, गति और ऊर्जा निरतर मिलती रही है।

मैं अपने पिता स्व0 श्री सन्तोष कुमार शुक्ला, माता स्व0 श्रीमती कल्याणी देवी, भाई स्व0 पकज कुमार शुक्ल के प्रति भी आभारी हूँ जिनके जीते जी मेरा रजिस्ट्रेशन शोध छात्रा के रूप में हुआ था। आप लोग मुझे चित्रकला के क्षेत्र में कार्य करने की निरंतर प्रेरणा देते रहे और मुझे लेकर विभिन्न स्थलो का भ्रमण मेरे कार्य हेतु करवाया। आप लोगों के आकस्मिक निधन ने कुछ दिनो के लिए कार्य को विराम दिया था. किन्तु वर्तमान में मेरे पृज्य भाई श्री नीरज कुमार शुक्ला, भाभी श्रीमती सन्ध्या शुक्ला, बहन-श्रीमती गीता मालवीय एव श्री योगेश मालवीय के आत्मीय सहयोग ने मेरा कार्य सुगम बना दिया। मै उन सभी विद्वान आचार्यो, अधिकारियों के प्रति नतमस्तक होते हुए आभार व्यक्त करती हूँ जिनका परोक्ष एवं प्रत्यक्ष रूप से मुझे सहयोग मिला। साथ ही इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में मैने, जिन ग्रन्थों, भण्डारो, चित्रों एव शोध संस्थानों द्वारा ज्ञान वृद्धि की, उनके अन्तर्गत 'दृश्यकला विभाग' इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 'केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय,' 'केन्द्रीय पुस्तकालय उ0 प्र0 इलाहाबाद,' 'पब्लिक लाइब्रेरी कम्पनीबाग,' 'इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद,' 'गगानाथ झा शोध सस्थान इलाहाबाद,' 'पुस्तकालय जवाहर नवोदय विद्यालय टिहरी गढ़वाल,' 'पुस्तकालय ज0न0 वि0 मिर्जापुर,' 'पुस्तकालय जवाहर नवोदय विद्यालय गौरीगज सुल्तानपुर,' 'राष्ट्रीय सग्रहालय नई दिल्ली,' 'आधुनिक कला दीर्घा नई दिल्ली,' 'जवाहर बाल

भवन नई दिल्ली,' 'ललितकला अकादमी नई दिल्ली,' 'साहित्य अकादमी नई दिल्ली,' 'राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ,' 'ललित कला केन्द्र (अलीगंज) लखनऊ,' 'पणिक्कर आर्ट गैलरी त्रिवेन्द्रम,' 'जहाँगीर आर्ट गैलरी मुम्बई,' 'प्रिस आफ वेल्स म्यूजियम मुम्बई,' 'गांधी शान्ति अध्ययन प्रतिष्ठान नई दिल्ली,' 'प्रयाग महिला विद्यापीठ इलाहाबाद,' 'हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद,' 'चित्रांगन पुस्तकालय आगरा,' 'आगरा कालेज आगरा,' 'भारत कला भवन, वाराणसी' इत्यादि सहित मै सभी की आभारी हूँ जहाँ से पुस्तके पढीं चित्र देखे लोगों से मिली जिनसे मुझे अपनी सोच मे भी विस्तार मिला।

अतिरिक्त इसके मैं अपने समस्त सम्बन्धियों एवं मित्रों की आभारी हूँ जो मेरे शोध को लेकर फ्रिकमंद थे और समय समय पर सहयोग देने को तत्पर रहे और कुछ ने मुझे पत्रिकायें आदि उपलब्ध करवाई।

मैं डा0 मौसमी घोष की आभारी हूँ जिन्होंने बाग्ला से हिन्दी में अनुवाद के साथ मुझे प्रुफ रीडिंग में अपना बहुमूल्य समय प्रदान किया। मै अपने टंकण कर्त्ता श्री इम्तियाज अहमद जी व वीरेन्द्र कुमार जी की भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरी पाण्डुलिपि मे संशोधन करते हुए मुझे सहयोग दिया।

मै अपने गुरू डा0 रामकुमार विश्वकर्मा जी के पुत्र - पुत्रियों की भी आभारी हूँ जिन्होने मुझे बड़ी बहन का स्नेह देते हुए कभी परिवार की कमी खलने न दी और यातायात सम्बन्धी दिक्कतो में सहयोग दिया ,जिससे मै अपने कार्य को आगे तक ला पाई।

दृश्यकला विभाग के समस्त गुरूजन, कार्यालय अधीक्षक एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो की भी आभारी हूँ जिन्होंने कार्यालयीन क्रिया कलापों में मुझे सहयोग दिया।

अंत मे मै परम्पूज्य गुरू एव निर्देशक डॉ0 राम कुमार विश्वकर्मा जी के प्रति पुनः आभार व्यक्त करते हुए अपनी वाणी को यही विराम देती हूँ।

सधन्यवाद।

जूही शुक्ला

शोध छात्रा

अध्याय - 1
भूमिका

उत्तर प्रदेश का परिचय :-

उत्तर प्रदेश । भारत का सबसे घना और अनूठा राज्य है। यह विश्व के अनेक देशों से आकार और आबादी में बड़ा है। पूरे देश की साझी संस्कृति और विरासत के प्रतीक इस राज्य ने अकेले ही भारत के इतिहास और वर्तमान को जितना प्रभावित किया है, उसकी दूसरी मिसाल नहीं।

पुरातत्व :- भारतीय पुरातत्व के मानचित्र में उत्तर प्रदेश का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। यहॉ हमारे सांस्कृतिक विकास की प्राय: प्रत्येक कड़ी किसी न किसी रूप मे मिलती है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में आदिमानव के सास्कृतिक अवशेष गुफाचित्रो के रूप मे विद्यमान हैं। इन गुफाओं में तत्कालीन मानव के शिकार के जानवर , शिकार मे प्रयोग किये जाने वाले जानवरों तथा उसके तौर तरीकों का चित्रण मिलता है। इन गुफाचित्रो से हमें यह भी पता चलता है कि आदि मानव जब पशु जीवन से मानव जीवन की ओर विकसित हो रहा था, उस समय से ही कला की भावना उसमें निहित थी। ये गुफाचित्र मिर्जापुर जिले के अहरौरा के समीप किरहिया पहाड़, जतवा पहाड़ तथा रामदेवी नामक पहाडों में प्राप्त हुए हैं। यहॉ से प्राप्त चित्र लगभग एक लाख वर्ष पूर्व मानव सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक है। (इनका पता उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा वर्ष 1976-77 में लगाया गया है[1])

इतिहास :- कभी आर्यावर्त, कभी मध्य देश, कभी संयुक्त प्रांत के नाम से पुकारे जाने वाले उत्तर प्रदेश का इतिहास बहुत प्राचीन एवं काफी रोचक है। इसे वैदिक काल में ब्रह्मर्षि देश के नाम से जाना जाता था।

पुरानी मान्यताओ के अनुसार, ब्रह्मा के पुत्र दक्ष प्रजापति ने हरिद्वार के निकट स्थित कनखल में मानव वंश की शुरूआत की थी। मनु के पुत्र अक्ष्वाकु ने अयोध्या को अपनी

---

1 कला त्रैमासिक, अक चार निबन्ध उत्तर प्रदेश पुरातत्व की दृष्टि मे, निबन्धकार — रामचन्द्र सिंह पृष्ठ स०-30-31

राजधानी बनाया। इस वंश के अन्य राजाओं में सगर, मान्धाता, दिलीप, रघु, दशरथ तथा राम प्रमुख थे। पुरूरवा ने चद्रवंश की स्थापना की, जिसकी राजधानी कन्नौज थी। नहुष के पुत्र ययाति भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट थे। ययाति के पाँचों पुत्रों का राज्य कुरुवंश, यदुवंश, गाधिवंश, क्षात्रवृद्ध वंश, वत्स वंश क्रमशः हस्तिनापुर, मथुरा, कन्नौज, वाराणसी और कौशाम्बी नामक स्थानों पर था। कहा जाता है कि कुरुवंश के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत के नाम पर ही हमारे देश का नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। उत्तर प्रदेश का इतिहास सिंधु घाटी सभ्यता के समय से शुरू होता है। सिंधु घाटी सभ्यता का एक प्रमुख केन्द्र मेरठ जिले में स्थित आलमगीरपुर है। भारत के दो महाकाव्यों - रामायण तथा महाभारत का प्रेरणा स्रोत भी उत्तर प्रदेश है।

सम्पूर्ण उत्तर भारत तथा मध्य भारत मे चौथी सदी में एक शक्तिशाली राज्यवंश का प्रादुर्भाव गुप्त वंश के रूप में हुआ। उसका राज्य लगभग 200 वर्षो तक रहा। इस अवधि में मथुरा तथा वाराणसी की समृद्धि चरम सीमा तक पहुँची। परन्तु इस वंश के पतन के बाद इस क्षेत्र पर हुणों ने आक्रमण किया तथा एक बड़े क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया। इन्हें भौखरी राजा ईशान वर्मन ने युद्ध कर पराजित किया। इसने कन्नौज को मध्य देश की राजधानी बनाया। कालान्तर में हर्षवर्धन ने इस क्षेत्र पर शासन किया तथा कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद 8वीं सदी में यशोवर्मन ने कन्नौज पर आधिपत्य जमा लिया। परंतु इसके उत्तराधिकारियों के काल में कन्नौज का पतन हो गया। इस पर अधिकार जमाने के लिए गुर्जर प्रतिहार, पाल तथा राष्ट्रकूट राजवंशों में प्रतिस्पर्धा रही, परतु गुर्जर प्रतिहार, (7वी तथा 10वीं सदी) सफल रहे। प्रतिहारो के पश्चात् उत्तर प्रदेश में दो नये राजवंशो का प्रादुर्भाव हुआ (1) महोबा का चंदेल वंश तथा (2) कन्नौज का गहरवाडो वश । चदेल वंश ने 400 वर्षो तक शासन किया। गोविन्द चन्द्र तथा जयचन्द्र (1170-1193) गहरवाडो वंश के दो प्रमुख राजा थे। जयचन्द्र के मोहम्मद गोरी द्वारा पराजित होने के बाद अतत: कन्नौज का पतन हो गया। 1857 के प्रथम स्वतत्रता संग्राम में वर्तमान उत्तर प्रदेश की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इस आन्दोलन की चिंगारी मेरठ से उठकर संपूर्ण भारत में ज्वाला बनकर फैल गई। इसमें भाग लेने वाले महत्वपूर्ण राष्ट भक्त थे— झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अवध की बेगम हजरत महल, बख्त खां, कानपुर के नानासाहब, अहमद उल्ला शाह, बेनीमाधव सिंह, अजीमुल्ला खां।

सन 1858 ई० मे ईस्ट-इडिया कंपनी के स्थान पर महारानी विक्टोरिया भारत मे ब्रिटिश राज्य की सर्वेसर्वा बन गई। इसी वर्ष उत्तर प्रदेश को दिल्ली संभाग से अलग कर दिया गया तथा आगरा के स्थान पर इलाहाबाद को राजधानी बना दिया गया।

इन दिनों उत्तर प्रदेश दो भागों में बँटा था—उत्तर-पश्चिमी प्रदेश तथा अवध। 1877 ई० में इन्हें क्रमशः लेफ्टिनेट गवर्नर तथा चीफ कमिश्नर के अधीन कर दिया गया। ये क्षेत्र क्रमशः आगरा तथा अवध के नाम से प्रसिद्ध हो गये। परंतु 1902 ई० में इनका नाम आगरा और अवध संयुक्त प्रांत हो गया। 1921 में इसकी राजधानी लखनऊ स्थानांतरित कर दी गई तथा इस प्रांत को गर्वनर के अधीन कर दिया गया। सन् 1937 में उत्तर प्रदेश का नाम संयुक्त प्रांत कर दिया गया। इसका नया नाम 'उत्तर प्रदेश' 26 जनवरी 1950 को पड़ा तथा इसे वर्तमान रूप 1 नवंबर 1956 को प्राप्त हुआ।[1]

धार्मिक :- उत्तर प्रदेश को ही राम और कृष्ण के अवतरित होने का सौभाग्य प्राप्त है। यहीं श्री राम और कृष्ण ने तत्कालीन कुरीतियों को दूर करने के लिए आततायी दानवों का वध किया था। सरयू नदी के तट पर स्थित अयोध्या नगरी आज भी हमारे सामने विद्यमान है, जिसकी गोद में भगवान राम की स्मृतियां संजोयी हैं। कानपुर जिले के बिठूर अर्थात ब्रह्मावर्त, उन्नाव जिले के परिहर अर्थात् सीता परित्याग नाम के स्थलों के अतिरिक्त इलाहाबाद जिले के श्रंगवेरपुर तथा प्रयाग स्थित भारद्वाज मुनि का आश्रम हमें श्रीराम की कीर्तियों का सकेत देते हैं।

महाभारत के नायक श्री कृष्ण की लीला भूमि मथुरा जनपद आज भी उनके जीवन की कलाओं का मूक साक्षी है। भगवान कृष्ण के कार्य कलापों से शायद ही कोई भारतीय अनभिज्ञ होगा। हस्तिनापुर मे दूर तक फैले टीले इसी उत्तर प्रदेश के अर्न्तगत स्थित हैं। जो हमें महाभारत की घटनाओं की गाथा सुनाते हैं। यहाँ की खुदाई में चित्रित भूरे रंग के मिट्टी के बर्तन के टुकड़े प्राप्त हुए हैं जो आर्यो के जीवन से विशेष रुप से सम्बद्ध बताये जाते हैं।

---

1. उत्तर प्रदेश, ले० अशोक कुमार शर्मा, पृष्ठ स०— 10-11

श्री बुद्ध ने सर्वप्रथम वाराणसी के समीप सारनाथ में ही अपने धर्म का सूत्रपात किया था। कौशाम्बी, संकीसा, श्रावस्ती, कुशीनगर आदि स्थल भी इसी उत्तर प्रदेश में स्थित है जो बौद्ध महातीर्थो के नाम से जाने जाते है।

जैन धर्म के तीर्थंकरो ने भी उत्तर प्रदेश की भूमि को अपनी शिक्षाओ से सिचित कर पवित्र किया। अतिम तीर्थंकर श्री महावीर जी का महापरिनिर्वाण देवरिया जिले के पावा नामक स्थान पर बताया जाता है।[1]

सुदूर दक्षिण से आदि शंकराचार्य काशी में ही आये। उन्होंने हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान किया। उनकी समाधि उत्तर प्रदेश के उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय पर्वत श्रंखला के मध्य स्थित है। वहीं उन्होंने प्रसिद्ध केदार नाथ मन्दिर का निर्माण किया एवं बद्रीनाथ धाम की स्थापना की। (अब उत्तरांचल में)

अन्ध मध्य युग में भारत के समस्त राज्यों से आये विद्वान प्रचारक और सुधारक उत्तर प्रदेश की ओर आकर्षित हुए। इस भू-क्षेत्र में उनका लक्ष्य भारत की 'मूलवाणी' की खोज करना था। यही वह क्षेत्र था, जहॉ परम्परागत अध्यापन पीठे थी, जिनके द्वारा धार्मिक एवं सांस्कृतिक धाराओ को मार्ग दर्शन एवं स्वरूप प्रदान किया गया। लोगों के जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए कलाकार और शिल्पकार भी यहॉ आये। रामानन्द, चैतन्य, कबीर, तुलसी, सूर ने भी समय-समय पर इस क्षेत्र को अपना कार्य स्थल बनाया।[2]

उत्तर पश्चिम के पर्वतीय क्षेत्रों तथा बंगाल की खाड़ी के लगभग मध्य में स्थित यह उपजाऊ प्रदेश आक्रामक मुसलमानों के लिए भी बसने का एक उपयुक्त स्थान बना। इन पूर्वकालीन मुसलमान आक्रमणों के साथ सूफी सन्त भी आये। परिणामस्वरूप जाति कुल एव विचारों का एक इन्द्रधनुषी सम्पुटन बना, जो राष्ट्र की अमूल्य निधि सिद्ध हुआ। इसी काल मे उर्दू भाषा को जन्म मिला और हिन्दी के साथ-साथ उसका भी विकास होने लगा। अमीर

---

1 कला त्रैमासिक अक चार, पृष्ठ स० - 31

2 उत्तर प्रदेश सामान्य ज्ञान, ले०- जैन भटनागर एव डा० सोलकी, पृष्ठ स० - 14

खुसरो इसी युग की देन थे उनके द्वारा अपनाई गई भाषा को हिन्दी और उर्दू लेखकों ने भी अपनाया। संगीत में भी खुसरो का महत्त्वपूर्ण योगदान था। सितार वाद्य उनका ही अविष्कार है।

मुगलकाल में समष्टि संस्कृति प्रथम बार प्रस्फुटित हुई। इसका सर्वोच्च विकास अकबर के शासनकाल में हुआ। उसने अपने आगरा दरबार में प्रसिद्ध कलाकार, शिल्पी और विद्वानों को एकत्रित किया। बिना किसी भेदभाव के उनके द्वारा साहित्य, कला और सांस्कृतिक धाराओ को गति प्रदान की गई, जो आज भी विद्यमान है। अकबर के पुत्र जहाँगीर ने भी हिन्दू-मुसलमान चित्रकारों को समान रूप से प्रोत्साहित किया। शाहजहाँ द्वारा निर्मित श्वेत सगमरमर का अद्वितीय ताजमहल उसके अमर प्रेम का प्रतीक है। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा। यद्यपि दिल्ली अंधकार ग्रस्त हो चली थी, किन्तु राजनीति और संस्कृति के केन्द्र अवध के नवाबों के दरबार बनने लगे। कुछ समय तक अवध नवाबों के दरबार फैजाबाद में रौनक करतेरहे, बाद में लखनऊ उनका रंगमंच बना। साम्प्रदायिक भाईचारे के वातावरण में कला, साहित्य, संगीत और कविता का अत्यधिक विकास हुआ। इन क्षेत्रों में नये कीर्तिमान स्थापित हुए। किन्तु सबसे अधिक राजनीतिक उथल-पुथल उस समय हुई जब अंग्रेजो ने अवध को अपने अधिकार में कर लिया।

राज्य में क्रान्ति की अलख जाग उठी। क्रान्ति का प्रमुख केन्द्र उत्तर प्रदेश ही रहा है। इसी क्षेत्र में निर्णायक युद्ध हुए, तथापि अंग्रेजी शक्ति भारत में सत्तारुढ़ हो गई। भारतीयों में परस्पर फूट डालकर अंग्रेज अपने राज्य को सुदृढ़ करना चाहते थे। सन् 1877 मे सर सैयद अहमद खां ने 'एम०ए०ओ०' कालेज की नींव डाली। बाद मे सन् 1915-16 में पण्डित मदन मोहन मालवीय ने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। 1921 में महात्मा गाँधी ने काशी विद्यापीठ में पठन-पाठन आरम्भ कराया। अनेक स्वतंत्रता सेनानी इस विद्यापीठ की ही देन हैं जिन्होंने असहयोग आन्दोलन में गाँधी जी के साथ कार्य किया। इसी वर्ष एक राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना अंग्रेजों के

एम० ए० ओ० कालेज के विरुद्ध अलीगढ़ में की गई थी। हालाँकि बाद में इसे दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया।[1]

स्वतंत्र भारत के इतिहास में करीब-करीब सभी प्रधानमंत्री उत्तर प्रदेश के ही रहे हैं। गंगा यमुना सदृश्य पवित्र नदिया तथा उनके द्वारा प्रदेश को होने वाले लाभों के कारण उत्तर प्रदेश का अपना महत्व है।

भौगोलिक :- भारतीय उपमहाद्वीप के मध्य-उत्तर में स्थित उत्तर प्रदेश भू-गर्भिक दृष्टि से भारत के प्राचीनतम् 'गोंडवाना लैण्ड महाद्वीप' का भू-भाग है।

यह भारत के सीमांत प्रदेशों में से एक है। इसके उत्तर में नेपाल व तिब्बत की सीमाएँ मिली हुई है। इसके उत्तर-पश्चिम, पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में हिमांचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली व राजस्थान है और दक्षिण में मध्य प्रदेश व पूर्व में बिहार की सीमा इसको स्पर्श करती है। भौगोलिक दृष्टि से यह 77° -3' और 84° -39' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। इसके पूर्व पश्चिम का विस्तार 650 किमी है, उत्तर से दक्षिण तक यह 23° - 52' तथा 31° -28' उत्तरी अक्षांशो के मध्य है तथा उत्तर से दक्षिण तक इसका प्रसार 240 किमी० है। इसका कुल क्षेत्रफल 2,94,416 वर्ग किमी० है।[2]

उत्तर प्रदेश एक ऐसा विस्तृत राज्य है जहाँ अनेक प्राकृतिक विविधताएँ वर्तमान है। इनमें धरती का ऊँचा नीचा रूप (पर्वतीय और मैदानी), वनस्पति, जलवायु, मृदा उल्लेखनीय हैं। इन्हीं विभिन्नताओं के आधार पर इसे चार प्राकृतिक भागों मे बाँट कर रखा है :-[3]

1 उत्तर का पर्वतीय प्रदेश — (अल्मोड़ा, चमोली, टिहरी, पिथौरागढ़ आदि)

2 भावर तथा तराई प्रदेश— (सहारनपुर, बिजनौर, पीलीभीत, बरेली, आदि)

---

1 उत्तर प्रदेश सामान्य ज्ञान, ले०-जैन, भटनागर एव डा० सोलकी, पृष्ठ स०- 15

2 उत्तर प्रदेश सामान्य ज्ञान, ले०-जैन, भटनागर एव डा० सोलकी, पृष्ठ स०- 28

3 उत्तर प्रदेश सामान्य ज्ञान, ले०-अशोक कुमार शर्मा, पृष्ठ स०- 11

3 गंगा का समतल मैदान— (यमुना एवं चंबल के बीहड़)

4 दक्षिण का पठारी प्रदेश— (झांसी, जालौन, हमीरपुर, बॉदा, एवं मिर्जापुर जिले के अधिकांश भाग इसके अर्न्तगत आते है)

उपरोक्त क्षेत्रीय विषमता के कारण ही यहॉ की जलवायु में विभिन्नता पाई जाती है। उत्तर में हिमालय अवस्थित होने के कारण प्रदेश के अधिकांश भाग की जलवायु उष्ण कटिबंधीय मानसूनी है।

प्रमुख साहित्यकार :- धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश मे विश्वप्रसिद्ध रचनाये एव साहित्यकारों की एक लंबी फेहरिस्त है, जिसमें प्रारम्भिक साहित्यकारो मे कवि विद्याधर-(प्राकृत पिगल सूत्र कीर्तिलता, कीर्तिपताका), जगनिक कवि-(आल्हा-चरित), कबीर दास-(साखी-सबद रमैनी), कवि रैदास-(बानी), गोस्वामी तुलसी दास-(मानस, राम सतसई, विनयपत्रिका आदि), सूरदास-(सूरसागर), भूषण-(शिवराज भूषण) बिहारी लाल (बिहारी सतसई) इंशा अल्लाह खान-(उदयभान चरित), लल्लू लाल-(प्रेमसागर, सिंहासन बत्तीसी, बेताल पच्चीसी आदि)।

प्रेमचन्द-(गबन, गोदान, सेवासदन), भारतेन्दु हरिश्चन्द-(भारत दुर्दशा, बादशाहदर्पण आदि), पं0 प्रताप नारायण मिश्र-(हठी हम्मीर), पं० बालकृष्ण भट्ट-(पद्मावती अनुवादित नाटक), पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी-(निबन्ध लेखन एवं सरस्वती के सपादक) देवकी नन्दन खत्री-(चंन्द्रकांता) नजीर अकबराबादी-(आगरा बाजार), मैथिली शरण गुप्त-(साकेत, यशोधरा), सुमित्रानंदन पंत-(वीणा), पं० सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-(राम की शक्ति पूजा, तुलसी दास), महादेवी वर्मा-(नीरजा, यामा आदि) जयशंकर प्रसाद (कामायनी), हरिवंशराय बच्चन-(मधुशाला), रामधारि सिंह दिनकर-(प्रणभंग कुरूक्षेत्र), वृन्दावन लालवर्मा-(मृगनयनी)।

प्रमुख पर्यटन स्थल :- फूलों की घाटी (ऋषिकेश-बद्रीनाथ मार्ग पर), औली (जोशीमठ के पास) नैनीताल, पिथौरागढ़, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमनोत्री, हरिद्वार, मंसूरी, हेदरादून, लैन्सडाउन, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, सरधना, काशी, प्रयाग (माघ मेला), कौशाम्बी, फतेहपुर सीकरी आदि।

चित्रकला शैलियाँ :- कदरा शैली या मिर्जापुर की विलुप्त शैली :- इसमे रेखाओ का प्रयोग होता था, पृष्ठभूमि नही दर्शायी जाती थी। भाव ही मोटे तौर पर घटनाओं के साथ अंकित होते थे।

ब्रज या मथुरा शैली :- प्रकृति, प्रेम और भावों की अभिव्यक्ति में हर प्रतीक को जीवित स्वरूप देने की चेष्टा की जाती है। पृष्ठभूमि समृद्ध होती है।

बुंदेली शैली :- चित्रों में गहराई का आभास दिया जाता है। चित्रों मे कठोरता प्रतीत होती है।

मुगल या आगरा शैली :- प्रारम्भ में इसमें साइड पोज पर ही ध्यान दिया जाता था। इमारतों, व्यक्तियो, शिकार, तथा सुंदरता की संयत अभिव्यक्ति होती है।

आधुनिक मिश्रित शैली :- कलाकार चमन किरन के चित्र इसके अन्तरगत आते है।

प्रमुख चित्रकार :- जगन्नाथ मुरलीधर आहिवासी:- (हर विषय पर पकड), श्री कृष्ण चैतन्य भट्ट : - ब्रज सांझी, कृष्णभक्ति विषय के चित्रकार हैं। परंपरावादी चित्र बनाते है।

बद्रीनाथ, मुनिसिह, नारायण कुमार, डी० पी० धुलिया :- भावों एवं प्रभाववादी चित्रों के विशेषज्ञ माने जाते है।

रमेशचन्द्र साथी, अजमत शाह- मिश्रित शैलियों के कलाकार हैं।

सुमानव, रणवीर सक्सेना, रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ खन्ना, योगेन्द्र नाथ वर्मा, नन्द किशोर खन्ना, नित्यानंद आदि अनेकों चित्रकार हैं सक्रियता से अपने कार्यो में लगे रहे हैं।

इस प्रकार अन्य-शिक्षा, उद्योग, लोकसंगीत, नृत्य तकनीक आदि समस्त क्षेत्रों में उत्तर प्रदेश तरक्की की ओर अग्रसर है।

आधुनिक कला

"संसार का कोई ऐसा रहस्य नहीं है जो आधुनिक कला को व्याख्यायित कर सके। कला के लिए हमें सर्वप्रथम अपनी दृष्टि खोलकर रखनी होगी। आधुनिक कला और प्राचीन कला ऐसी भिन्न नही है जैसी वे प्रतीत होती हैं क्योंकि ये दोनों समान सृजन शक्ति से अनुप्राणित हैं। किन्तु जब प्राचीन कला रूपों की रचना की गई तो वे बहुधा यथार्थ को केन्द्र में रखकर ही रचे गये जबकि आधुनिक कला भिन्न-भिन्न एवं नवीन रूपाकारों या बिम्बो की खोज करने के लिए स्वतंत्र है।"[1]

श्री एलीन लीपा (ALLEN LEEPA) के उपरोक्त कथन को आधार मानकर आधुनिक कला की बात खोज से ही शुरू करना समीचीन है। विश्व के समस्त कला इतिहास को पलट कर देखे तो यह बात साफ है कि आदिम युग से आज तक मनुष्य ने अपनी खोजी प्रवृत्ति के कारण ही विकास की ऊँचाइयों को छुआ है।

आधुनिकता का एक अर्थ निश्चय ही खोज भी है, निरा पुनराविष्कार ही नहीं (पुनराविष्कार का प्रयत्न ही-सायास प्रयत्न-शायद हमारे यहाॅ बंगाल-स्कूल के रूढ़ और किन्ही अर्थों में बेजान हो जाने का कारण भी बना) और इस खोज में संवेदना की वह सूक्ष्मता शामिल है जो हमें बासीपन से बचाती है, नये आयामो और नई दृष्टियों की ओर ले जाती है।[2]

आधुनिक कला का इतिहास मुख्य रूप से आधुनिक कलाकारों के कलासम्बन्धी दृष्टिकोणों में हुए परिवर्तन का इतिहास है। जीवन के दार्शनिक मूल्यों में परिवर्तन होते ही

---

1 There is no single secret which is going to explain modern art We must first unlock the door to art Modern art and the art of the past are not as different as they appear to be, for they both deal with the same forces But whereas older forms of art usually created these forces through realistic forms, modern art is free to explore a variety of form द चैलेन्ज ऑफ माडर्न आर्ट, ले०- एलीन लीपा (हर्बट रीड द्वारा अग्रसारित) पृष्ठ स०-13

2 देखना, ले० प्रयाग शुक्ल, पृष्ठ स०- 86

उसका जीवन के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव पडना स्वाभाविक था एवं कलाक्षेत्र इसमे अपवाद नही हो सकता था। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से परम्परागत सामाजिक व धार्मिक निष्ठाएँ टूट रही थी, व आधुनिक दर्शन की स्वीकृतियो मे मानव का स्वतंत्र, स्वयपूर्ण व बहुरंगी व्यक्तित्व, उसकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा एवं ऐद्रिय अनुभूतियो के पीछे छिपे हुए रहस्य की खोज ये तत्व बाह्य उद्देश्यो के बन्धनो से मुक्त होकर कार्यान्वित हो रहे थे।

कलाकार का व्यक्तित्व स्वतंत्र होते ही सर्जनक्षेत्र में कलाकार की आत्मिक अभिव्यक्ति व विशुद्ध सौन्दर्य की खोज के बीच द्वन्द शुरू हुआ, ऐसी द्वान्दात्मक अवस्था में आधुनिक कला गतिमान हो गई।

वस्तु निरपेक्ष, सौन्दर्य, आत्मिक अनुभूति, अतियथार्थ कल्पना आदि कलातर्गत सर्जनशील तत्वों का स्पष्ट व विशुद्ध रूप आधुनिक काल की जिन कला शैलियों मे दृष्टिगोचर हो गया है उन सभी कला शैलियों को आधुनिक कला मे सम्मिलित करते है। अर्थात ये सभी तत्त्व सर्जनप्रवृत्ति के अविभाज्य अग होने के कारण न्यून अधिक मात्रा में प्राचीन, मध्ययुगीन एवं समकालीन सभी कला शैलियों में विद्यमान होते हैं। बीस से तीस हजार वर्ष पूर्व के वन्य मानव के चित्रों मे ये तत्व इतने स्पष्ट रूप से प्रकट हैं कि देखने में यह कला आधुनिक कला के समान प्रतीत होती है। लोककला एवं बालचित्रकला में भी मूल सर्जनशील तत्वो का बहुत ही स्वाभाविक विकास होता है। आधुनिक कला का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि लोककला आदिम एव बाल कला से आधुनिक कलाकारों को अपरिमित प्रेरणा मिली है। उपरोक्त कलाओं से आधुनिक कला भिन्न है तो इस विचार से कि यह रूपांतर्गत तत्वो के शास्त्रीय अध्ययन का परिणाम है। या कलाकार की व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति है या उसमे कलाकार द्वारा की गई आंतरिक सत्य की खोज है, किन्तु, आदिम, लोक या बाल कलाओ में जो आधुनिक कला के समान गुण दृष्टिगोटर हैं वे पूर्णतया सर्जन क्रिया की स्वाभाविकता से सिद्ध हुए है। आधुनिक कला में बाह्य उद्देश्य नहीं होता जबकि ये कलाये बाह्य उद्देश्य से प्रेरित होती है।[1]

---

1 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, ले० र० वि० साखलकर, पृष्ठ सं०- 2

श्री बी० सी० सान्याल के अनुसार आधुनिक कला आधुनिक जीवन की जटिलताओं को प्रतिबिम्बित करती है। किन्तु ये बात पश्चिमी सन्दर्भ में तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर कही जा सकती है। बीसवी शताब्दी में पश्चिमी जन जीवन ने तो दो-दो विश्वयुद्धो के विनाशकारी दौर को देखा था, और भी अनेकों समस्याओं का सामना किया था, परिणामस्वरूप 'गोयर्निका' जैसे चित्रों का निर्माण हुआ। अतिरिक्त इसके पूँजीवाद, क्रान्तिकारी समाजवाद, निरंकुश फासीवाद, औद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास ने वहाँ के समाज के साथ साथ चित्रकला के क्षेत्र में दादावाद, अतियथार्थवाद जैसे कलावादो को जन्म दिया। किन्तु भारतीयो के समक्ष 19 वीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक ऐसी स्थितियॉ नहीं थीं। हम सिर्फ मध्यकालीन परिदृश्य से उबर रहे थे और पश्चिम की तुलना में यहॉ के जीवनक्रम मे सारगर्भित अन्तर भी रहा है- इसलिए गगनेन्द्र नाथ टैगोर आदि चित्रकारों ने जब घनवादी चित्र बनाये तो वे ऊपरी होकर रह गये।

हालाँकि आज भारतीय चित्रकार शहरों के वासी है और आधुनिक जीवन की जटिलताओ से मुक्त भी नहीं है। उन्होंने बड़ी बुद्धिमानी से आधुनिक कला की सार्वभौमिकता को उतना ही स्वीकारा है जितना आधुनिक मानव के अनुभवों को बॉटा है।

आधुनिक भारतीय चित्रकला के विकास क्रम को अध्याय दो में स्पष्ट किया गया है फिर भी भारत मे आधुनिक चित्रकला की शुरूआत कुछ यों हुई - कि मोलाराम आखिरी कलाकार थे जिन्होंने प्राचीन भारतीय चित्रकारो द्वारा कलाकृतियों पर नाम न लिखने की परम्परा को जिया। 1833 ई० में इनकी मृत्यु के उपरान्त चित्रों पर हस्ताक्षर करने का समय प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार कला समूह से व्यक्तिगत प्रयास की तरफ बढ़ गई। कुछ ही वर्षो में विदेशों से आयातित ओढे गये प्राकृतिकवाद ने राजा रवि वर्मा को आगे किया। इनके तैल माध्यम में निर्मित चित्र जो काफी प्रचलित हुए वह इसी अर्थ में महत्वपूर्ण थे कि उनमें छिन्न-भिन्न होती भारतीय संस्कृति के चिन्ह भौतिक रूप से दिख रहे थे।

करीब 19वीं शताब्दी में पुरातत्व के गहन शोध और बढ़ती हुई राजनीतिक जागृति ने सांस्कृतिक राष्ट्रीयतावाद की ओर पुनर्जागरण आन्दोलन को प्रेरित किया। यह उथल पुथल बंगाल में ज्यादा सक्रिय थी।

बंगाल स्कूल के संस्थापक श्री अवनीन्द्र नाथ टैगोर पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय शैली के लक्षण को प्रकट करने वाली कला को प्रारम्भ किया। इस कला की विशेषता थी – 'रंग और रेखाओं की कोमलता और एक संगीतमय कल्पनावाद'। ऐसा कहा जाता है कि मानव खोपडी के अध्ययन ने उन्हें रैफेल के पूर्व की कला के प्रशिक्षण को छोड़ने के लिए प्रेरित किया और वे बचे हुए पूर्वी मुहवरो की तरफ मुड़ गये। तुरत उभरी भारतीय शैली पूरे देश मे फैल गई और बंगाल स्कूल ने एक राष्ट्रीय स्वरूप को अपना लिया।

जो समकालीन है वह जरूरी नहीं कि आधुनिक हो। इस भेद को नजर अंदाज करने का अर्थ है बहुत बड़ी उलझन पैदा करना। भारत में आधुनिक चित्रकला और भारतीय आधुनिक चित्रकला के रूप में जो चल रहा है उसमें पृथकीकरण होना चाहिए।[1]

भारतीय कलाकार अगर विदेश में ही विस्तार खोजते हैं तो वे भ्रम में है। भारतीय कलाकार को भारत का ही होना होगा। यही पर उसे दर्शक खोजने होंगे। उसको अपने भावनात्मक जीवन को उसी वातावरण से जोड़ना होगा जो उसे पुनर्जीवन प्रदान कर सके और जो रचनात्मक हो। और जब तक सारे कलात्मक निर्णय आन्तरिक आन्दोलनों से तथा हमारे जीवन यापन की सक्रान्ति से उत्पन्न नहीं होंगे तो उनका महत्व नहीं रहेगा।[2] इस दृष्टि से रवीन्द्र नाथ टैगोर यामिनी राम जैसे कलाकारों का प्रयास सार्थक है।

इन कलाकारों ने तत्कालीन समसामयिक कला की सम्पूर्ण धारा को निकाल बाहर नही किया बल्कि अपने कार्य मे प्रत्येक ने कुछ नया कुछ अलग और एक नितान्त व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करके सम्पूर्ण विश्व के साथ सुर से सुर मिलाने का प्रयास किया।

प्रेरणा के मूल स्रोतों के लिए उनकी तलाश उन्हें आदिम और लोक कला की खोज की तरफ ले गई, जिसे कोई भी आधुनिक कलाकार छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकता। इन कलाओं के रूप एव कल्पना के प्रति आकर्षित होकर कलाकारों ने साहसपूर्ण, सशक्त अभिव्यक्ति हेतु खिलौनों और गुड़ियों की ओर रूख किया। पटुआ चित्रों में इन्होंने प्रतीक

---

1 मार्डन आर्ट इन इडिया, ले०- आजीत मुखर्जी, पृष्ठ स० - 11

2 कला त्रैमासिक - जनवरी 1975, निबन्धकार-निजीम ऐजकिल, पृष्ठ स०-10

और सरलीकरण को खोजा, पिकासो जैसी मुखाकृतियों को चुना और अन्तराल को महत्व प्रदान करने के लिए सपाट रंगों का इस्तेमाल किया।[1]

अपनी बाद की रचनाओं में अवनीन्द्र नाथ टैगोर ने पेड़ की सूखी टहनियों, जड़ो, लोहे के हुक और जंक लगे कीलों, बेकार खिलौनों यहाँ तक कि टूटे हुए फर्नीचर के टुकड़ों को प्रयोग में लाकर काम किया। इस प्रकार उनके रूपाकार लम्बे समय तक कोमल रगो से ढॅके न रह सके बल्कि दृढ़ और मौलिक हुए।

अवनी बाबू के विशेष गुणी शिष्य नन्द लाल बोस भी उस सवेदनात्मकता से ऊपर हुए जिसने बंगाल स्कूल पर विजय प्राप्त की हुई थी। एक समय ऐसा भी आया जब वे आसान गुणात्मकता और मिथकीय संयोजनों से निकल कर नये लक्ष्यों की तरफ मुड़े और दबे हुए अनुभवों को दृश्य अर्थ प्रदान किये। इस अर्थ में अवनीन्द्र नाथ और नन्दलाल दोनों ही निश्चित रूप से हमारे समय के हैं फिर भी वे अतीत के आन्दोलनों से ही पहचाने जाते हैं। पूर्व एव पश्चिम के गहन मुद्दों को यह प्रथम नव अकादमीवाद सुलझा नहीं सका। इसी आन्दोलन में विरोध की प्रवृत्ति और चालू धारा भी विद्यमान थी। कलाकार इस अवसर पर एक धारा से दूसरी धारा पर झूल रहे थे। ठोस प्रकार की विषयवस्तु ही जीवित थी और बार-बार दोहराई जा रही थी। एक रसता और शुद्धता की कमी युवा चित्रकारों को निराशा की तरफ ले गई और वे निम्नस्तरीय रचना करने लगे। उन्हें आम जनता की प्रश्न सूचक रुचि के साथ विचार करना पड़ता था।

इस परिस्थिति में अन्ततः तब तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ जब तक कि 1920 के लगभग रवीन्द्र नाथ टैगोर की एक चित्रकार के रूप मे प्रस्तुति नहीं हो गई और यामिनी राय की आधुनिक आदिम कलाकार के रूप में और इन्हीं दो चित्रकारों के साथ 'आधुनिक' शब्द ने भारतीय कला में एक नयी करवट ली।

---

1 मार्डन आर्ट इन इडिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ सख्या- 11

लोक साहित्य की पुन: खोज, औल और बौल गाने वाले सहज सम्प्रदाय, नाविकों के गीत, कबीर, दादू और अन्य रहस्यवादी चारणो ने आसान रूपों की रचना को प्रोत्साहित किया जो कि आदिम प्रतिमाओं के पुनर्मूल्यांकन पर आधारित है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर :- जब पचास वर्षो तक एक लेखक के रूप में रचना करने के उपरान्त रवीन्द्र नाथ टैगोर ने रेखांकन और रंगाकन प्रारम्भ किया तो उन्होंने सभी सेतुओ का परित्याग किया और पूर्णतया नये धरातल पर प्रयोग किया।[1]

जीवविज्ञानी और मनोवैज्ञानिक किनारे मिल गये। उनके आदमी और जानवर, फूल और जानवर कभी कभी एक रहस्य और डरावनी चीजों की ओर ले जाते हैं। अपने चित्रो में वे अपनी दमित इच्छाओं को तोडते हुए और सुसुप्तावस्था की महत्वपूर्ण शक्ति को मुक्त कराते हुए प्रतीत होते हैं।

पेन से लकीरें खीच कर रंगों के साथ खेलते हुए उन्हें कपड़े पर सुखाकर फिर अँगुलियों से मिटाकर उन्होंने बड़ी निर्ममता से कार्य किया और जो रेखायें खींची उन्हे सही नहीं किया, न ही उस पर रुकर विचार किया। जो भी स्याही मिली उसी से कार्य शुरू कर दिया। ज्यादातर फाउन्टेन पेन की स्याही का इस्तेमाल रंगों के रूप में किया। जब कभी उनके पास यह स्याही उपलब्ध नहीं होती थी तब वे फूलों को निचोड़कर उसके रस को रगों के स्थान पर इस्तेमाल करते थे।

उनके चित्रों मे वही गुण होते थे जो उनके रखांकनो में होते थे। जिस क्षण उनका कार्य समाप्त हो जाता था, तो नई गम्भीर सोच जग जाती थी। इस समय के उनके अनेको चित्र वस्तुओं मे नये तत्त्वो को उद्घाटित करते हैं। प्रथम बार मे तो कलाकार ने एक अभिरुचि प्रदर्शित की जो उनके बाद के कार्यो में लगातार जारी रही। रेखा, दृष्टि एवं लय को रंगो के साथ मिलाने के लिए उनके चित्रों में शुद्ध रंगों के लिए एक वस्तुनिरपेक्ष भाव भी उभरता देखा जा सकता है।

इस प्रकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी विषयवस्तु को उनके आवश्यक चरित्र के साथ

---

1 मार्डन आर्ट इन इडिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ सख्या- 14

खोलने के लिए कार्य किया जैसे कि वे उनकी कल्पानाओं मे रहते थे। ये कल्पना ऐसी थी जो रहस्य मे चमकती थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते भी हैं – "कला में सत्य को साबित करने का केवल एक ही तरीका है, जब यह हमसे जबरन कहता है- "मैं देखता हूँ।" एक गधे को हम वास्तविकता में (प्रकृति में) नजर अंदाज करके आगे बढ़ सकते है, लेकिन कला मे इस गधे को हमें अवश्य ही पहचानना होगा।" जब टैगोर के चित्रों को पागल आदमी की कला कहा गया तो उन्होने कहा-"मेरे चित्रों का उद्‌गम सिखाये गये अनुशासन मे से नहीं है न ही परम्परा में से है और न ही रेखाकनो के सावधानी से किये गये प्रयास मे है।"[1] जो बहुत ही आश्चर्य चकित कर देने वाली बात इस व्यक्ति के चित्रों में है वह हैं 'गति'। लबे समय से सम्मानित मान्यताओं को तोड़ते हुए जब वे निकल रहे थे तब वे सिर्फ नकारात्मक शक्ति के रूप मे ही नहीं थे। उन्होंने अपना स्वयं का एक संसार भी बनाया जो सबसे अलग था। उनका कोई शिष्य भी नहीं रहा था। वास्तव में रवीन्द्र नाथ टैगोर की कला एक पुरातन मान्यता से नहीं निकली है बल्कि वह तो एक दुलर्भ रचनात्मक व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है।

अब तक यामिनी राय भी प्रचलित यूरोपीय शैली की व्यक्तिचित्रण की पद्धति पर जो कार्य कर रहे थे उससे अलग हो गये।

यामिनी राय :- 30 वर्षो तक अकादमिक क्षेत्र में रहने के बाद यामिनी राय अपनी मातृभूमि की ओर लौटे जहॉ बांकुड़ा जनपद में वे लोककलाकारों के सम्पर्क में आये। यहाँ उन्होंने पाया कि पटुआ और बर्तन बनाने वालों में एक शक्ति है, इनके अपने रुपाकार है जो अत्यन्त सरल है तथा इनके रंग शुद्ध हैं। स्वतंत्रता एवं अपना रास्ता स्वयं बनाने के लिए यामिनी राय की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वे कभी चैन से नही बैठे और उन्होंने तब तक अपनी खोज जारी रखी जब तक कि स्वयं को अकादमिक पंजों से मुक्त नही कर लिया।

कलकत्ता लौट कर उन्होंने बड़े जोश से चित्रण प्रारम्भ किया। वे अक्सर कहा करते थे- "कार्य के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर की सच्चाई की ओर मुड़ता है।"[2]

---

1 मार्डन आर्ट इन इडिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ सख्या- 15

2 'Through work', A man moves towards the reality within himself" मार्डन आर्ट इन इडिया पृष्ठ सख्या- 16

चित्रकारी इनके लिए लम्बे समय तक व्यवहारिक उद्देश्य के लिए आकृतियों को अकित करने का साधन नही थी बल्कि एक प्रगति उस तरफ थी जो अदृश्य था और जिसे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। इन्होंने प्राथमिक रंगों एवं शुद्ध रेखाओं के रीति पूर्वक एकत्रित नमूनों को खोला। इन नमूनों की यह विशेषता थी कि आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति जागरूक किसी व्यक्ति की आत्मिक सच्चाई से ओत-प्रोत थे, सजावटी थे और इनकी रेखायें स्पष्ट थी। अपने प्रयोगो में यामिनी राय ने वस्तुनिरपेक्ष प्रतीकों को विकसित किया। ये प्रतीक रूप समसामयिक अभिव्यक्ति के परिणाम थे और तौर तरीको से आधुनक किन्तु भावनात्मक स्तर पर गम्भीर रुप से भारतीय थे।

माध्यम के रूप मे यामिनी राय टेम्परा का इस्तेमाल करते थे। इनके रंग जडो एव फूलों से, कीचड और लैम्पसूट (Lampsoot) से तैयार किये जाते थे। यहॉ तक कि समय समय पर उन्होने पुराने कपडों और फटी साड़ियों को कैनवस के लिए इस्तेमाल किया। पहले इस पर गोबर का लेप इसे कड़ा करने के लिए करते थे। फिर खड़िया का लेप तैयार करके चित्र सतह तैयार करते थे।

इनके चित्रों को लोक कला से निकली हुआ मानना, एक गलती होगी श्री अजीत मुखर्जी के असार- यामिनी राय उस प्रारम्भिक और सामूहिक रूप और रंग के जलाशय में डुबकी लगा रहे थे जो समय और अन्तराल को अलग करता है और इस 'प्रारम्भिक सन्दर्भ मे एक पटुआ चित्रकार और पिकासो में कोई भेद नहीं रह गया जैसे यामिनी राय और जादू चित्रकारों मे कोई भेद नही रह जाता।

रवीन्द्र नाथ टैगोर और यामिनी राय की पृष्ठभूमि के विपरीत, एक नई जागरूकता ने युवा कलाकारों को प्रोत्साहित किया कि वे धीरे-धीरे स्वयं को खोलने की दिशा में प्रयोग करें। समकालीन धारा जो आदिमवाद की दिशा में जा रही थी वह सबसे ज्यादा मकबूल फिदा हुसैन, सुनील माधव सेन, मोहन बी० सामन्त और सुधा मुखर्जी के कार्य में दिखती है। हुसैन और सामंत के भीतर जैन लघु चित्रों के लिए उबाल था तो सुनील माधव सेन एवं सुधा मुखर्जी में पटुआ चित्रों के प्रति। इन कलाकारो में एक ऐसी बलवती इच्छा जिसने दूसरे अर्थो

में उनके कला के विकास में सहायता दी। इन कलाकारो मे सामंत को छोड़कर कोई भी अकादमिक तरीके से प्रशिक्षित नही था किन्तु इन्होने अपनी स्वयं की कुछ विशेषताओं को विकसित किया फिर भी एक सवेदनात्मकता सभी में सामान्य थी। प्रत्येक में थोड़ी या ज्यादा औपचारिक तेजी थी और वे शक्तिशाली रंगों के आघात को इस्तेमाल करते थे। इनमे एक ताजगी और जीवन्तता थी और ये इतने गहरे तक थी कि लगता था कि वे देखने और चित्र बनाने के लिए ही है।

मेहनती ओर प्रयोगधर्मी फितरत के हुसैन स्वयं को विदेशीपन से अलग रखते थे। वे चालाकी और चालों को चलने की इच्छा न रखते हुए अपनी तूलिका को खुले और ईमानदार तरीके से इस्तेमाल करना पसंद करते थे। अधिकांश तैल रंगों से निर्मित, विशाल कैनवस पर उतारी गई उनकी तस्वीरें बहुत बड़ी होती चली गई और एक जादू जैसा आकर्षण बुनती है।

सुनील माधव सेन तैल का प्रयोग, सीमित और साफ तरीके से करते है और कभी कभी चम्मच के पीछे के भाग से बड़ी तेजी से करते हैं। किन्तु ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य रंगों का ढांचा खड़ा करना नही है बल्कि वे रंगो की लयात्मकता के महत्व पर जोर देते हुए उसे स्पष्ट करते हैं। सामन्त रंगों की संगीतमय प्रस्तुति में सफलता प्राप्त करते हैं जिसमें ताने यद्यपि ये बहुत पतली और सुन्दर हैं, शक्तिशाली नमूनों का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। वह अकसर तोड़ मरोड़ करते हैं। नई दृष्टि के लिए कैनवस पर रंग छिड़क कर आकृतियाँ रचते है।

सुधा मुखर्जी के काम पर डिजाइन का बहुत प्रभाव है। रंगों और रूपों को समस्त नमूनों के साथ सरल करते हुए वह कभी कभी एक सीधा प्रभाव छोड़ती हैं जो हिला देने वाला है। टेम्परा रंगों से निर्मित चित्रों की श्रंखला में उनके ठोस रूपाकार स्वतः स्फूर्त चेतना से मानवी होते हैं जिनमें उनकी भावना उनके रूपों की भाँति अनुशासित हैं, और केन्द्र में होने के कारण गहरे तक प्रवेश कर जाती है।

एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि उपरोक्त चित्रकारों का आदिमवाद आते जाते फैशन से प्रभावित नहीं हुआ। शायद बढ़ती हुई अनिश्चितता से बाहर निकलने के लिए 1935

में अमृता शेरगिल ने पेरिस की कला शैली को भारतीय विषयों के साथ पकड़ने का प्रयास किया। लेकिन उनकी निकटता आधुनिक चित्रकारो के साथ गहरी नहीं है। उनका भारत दु:ख और त्रास का भारत था जिसने गौड़ स्थान प्राप्त किया।

इस प्रकार हमें मान लेना चाहिए कि 'आधुनिक कला भी समकालीन है, किन्तु आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक सभ्यता का विकास आधुनिक जीवन दर्शन, विचारधारा, ज्ञान विज्ञान की प्रगतियों, नवीनतम् खोजो तथा तथ्यो पर आधारित होता है। एक स्थान की आधुनिकता को एकाएक दूसरे स्थान पर आरोपित करना हमेशा खतरनाक होता है और क्षणिक भी। ऐसा होने पर स्वत: स्वाभाविक विकास अवरोधित हो जाता है। आधुनिकता नकल करने की चीज नही है बल्कि स्वय मे विकसित करने की चीज है।'[1]

बंगाल शैली :-

रवीन्द्र नाथ टैगोर का शान्ति निकेतन हमारी परम्परा एवं विरासत से अज्ञानता को और राष्ट्रगौरव के क्षरण को रोकने का एक सफल प्रयास रहा है। इसकी स्थापना का उद्देश्य ही यह था कि हमारे तत्कालीन युवा वर्ग को अपने अतीत पर गौरव हो।[2] इसी शान्तिनिकेतन मे स्थापित कला भवन ने स्वदेशी आन्दोलन से प्रेरित होकर जिस राष्ट्रीय कला शैली को विकसित किया उसे बंगाल शैली के नाम से ख्याति प्राप्त है। बीसवीं शती के मध्य तक भारत की आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक और राजनीतिक चेतना विघटित एवं धूमिल हो गई थी। 1903 ई० में लार्ड कर्जन द्वारा किये गये बंग-भंग से जनता पर और बुद्धिजीवियों तथा कलाकारों पर जो दुष्प्रभाव व्याप्त हुआ उसका आक्रोश कलाकृतियों में उभरा उसके फलस्वरूप और स्वाधीनता तथा राष्ट्रीय नव जागरण के देशव्यापी आन्दोलन ने कलाकारो को कला के पुनर्मूल्यांकन की ओर प्रवृत्त किया।[3]

---

1 आधुनिक कला समीक्षावाद, ले0- प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ स0 32

2 नन्दलाल बोस, सपादक- आर० एल० बर्थोल्म्यू, पृष्ठ स- 45

3 भारतीय सस्कृति और कला ले०- वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स० 585

प्रसिद्ध चित्रकार 'रामकुमार' के अनुसार - " भारतीय चित्रकला यहाॅ के जनजीवन की उपज है। इसमें उपस्थित सभी तत्त्व भारतीय है। वस्तुतः हमारे संस्कार हमारा चिन्तन, हमारे रंग और हमारा परिवेश सब कुछ भारतीय है। अतः हमारे सोचने एव अभिव्यक्त करने की प्रणाली भी भारतीय है।[1] यही बात बंगाल शैली के कलाकारों ने बहुत पहले समझ ली थी। वे अपनी स्वतंत्रता के प्रति सजग हुए। इसकी पहल यहाँ के कुछ खास चित्रकारों ने की। हमारे देश में आज आधुनिक कला की जो मजबूत इमारत खड़ी है उसके आधार स्तम्भ हैं हमारे वे साहसी चित्रकार जिन्होने आधुनिक कला के आन्दोलन को भारतीय रंग में रंगकर आगे बढाया है। इन्ही चित्रकारो ने यहाॅ पर आधुनिक चित्रकला की इतिहास रचना और उसके भावी स्वरूप की भूमिका तैयार की। कलागुरू अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस आदि ने बंगाल शैली को जन्म दिया।

बंगाल शैली की जिन विशेषताओं ने इसे पाश्चात्य शैली से अलग हटकर अपना अस्तित्व बनाने मे सहायता की वे निम्नलिखित हैं—

यूरोपीय अन्धानुकरण का त्याग :- चित्रकला के क्षेत्र में भारतीय परम्परा, सस्कृति, धर्म इतिहास आदि का प्रवेश हुआ। यूरोपीय शैलियों, वादों तथा चित्रांकन की रंग पद्धतियो का भारत में जो ऑख मूंदकर चित्रण हो रहा था उसे बंगाल शैली या पुनर्जागरण काल की कला में सर्वथा त्याग दिया गया।

समन्वित चित्रशैली का विकास :- इस काल के कलाकारों ने यद्यपि पाश्चात्य चित्रशैलियों का अंधानुकरण छोड़ दिया था तथापि उसके जो उपयोगी तत्व थे उनका समावेश अपनी कला में जारी रखा। रूप विधान, प्राकृतिक सुषमा तथा छाया प्रकाश आदि के महत्वपूर्ण तत्त्वों का इस समन्वित कला में प्रयोग चलता रहा। यह सही है कि कला मे भारतीय दर्शन, पुराण, इतिहास तथा धर्मो में वर्णित आदर्श प्रमुखता पाने लगे थे तथापि अंकन के यूरोपीय ढंग से प्रभावित समन्वित शैलियाँ ही अधिकतर प्रचलित थी। समन्वय की

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ ले०- डा० प्रेमचन्द्र गोस्वामी, पृष्ठ स०- 103

प्रक्रिया रगो के प्रयोग मे भी अपनाई गई जैसे यूरोप में निर्मित तैलरंगों, जलरंगों तथा पेस्टल रंगो के प्रयोग में कलाकारों ने कोई परहेज नही बरता। उन्हें खुले दिल से अपनाया।

भारतीय परम्परा से अनुप्राणित छोटे आकार के चित्र — बंगाल स्कूल की तत्कालीन प्रचलित कला शैली में निर्मित प्राय: सभी चित्रों में यद्यपि भारतीय परम्परा का ध्यान रखा जाता था तथापि वे आकार में छोटे होते थे। आज की कला के समान कोई कलाकार विशाल आकार के फलक का प्रयोग नहीं करता था।[1] कागज ही चित्राकन के लिए उपयुक्त फ़लक था और उसी की पृष्ठभूमि पर चित्र बनाया जाता था।

दर्पण तुल्य यर्थाथ से दूर कल्पनाजन्य चित्र :- यूरोपीय प्रभाव की कला शिक्षा तथा चित्र निर्माण मे मॉडेल्स (नारी तथा पुरूष को वाञ्छित मुद्रा में बिठाकर चित्रांकन करना) का बहुत प्रचलन था साथ ही फोटोग्राफी की मदद से रुपाकारों में छाया-प्रकाश का सतुलन बनाया जाता था किन्तु इस तरह की चित्रण प्रणाली में रस भाव, अभिव्यंजना का कोई महत्व न था। बगाल शैली के चित्रकारों ने मॉडेल तथा फोटोग्राफी से सहायता लेने के बजाय अपने मानसपटल पर अंकित रूपों का कल्पनाजन्य चित्रण किया।

रंगों की वाश एवं टेम्परा पद्धति :- बंगाल शैली के चित्रकारों ने शैली के साथ-साथ चित्राकंन के माध्यमों में भी समन्वयात्मक रुख अपनाया। ब्रिटिश तथा जापानी जलरंग पद्धति के मिश्रण से वाश पद्धति का विकास किया गया और अधिकाश चित्रकारों ने इसे अपनाया। इस पद्धति में कागज मे किये गये रेखांकनों एवं आकारों को रंग करके सर्वप्रथम पानी में डुबोया जाता था और रगों की तहों को फिक्स किया जाता था। यह प्रक्रिया अनेक बार अपनाकर चित्र को पूर्ण किया जाता था। इसी के साथ-साथ जिन चित्रकारों का यह आग्रह था कि हमें अपनी ही परम्परा एव साधनों को अपनाना है, उन्होंने रंगो की टेम्परा पद्धति को अपनाया। आचार्य नन्दलाल बोस, यामिनी राय, ऐ० के० हल्दार ने टेम्परा पद्धति में ही अधिकांश चित्रों का निर्माण किया है। इसमें धूसर आभा वाले कम चटख, सीधे सपाट

---

1 यहाँ बी एन आर्या अपवाद है।

रंगो के प्रयोग के बाद, रेखाओं द्वारा आकृतियॉ अभारने की प्रथा थी। ये टेम्परा पद्धति आज तक आधुनिक चित्रकारों मे प्रचलित है।

स्केचिंग की प्रधानता :- बंगाल शैली के चित्रकारों का यह मानना था कि चित्राकृतियों में गति लाने, प्रकृति के रूपांकन तथा चित्रों की ऊर्जा और लय के विकास के लिए स्केचिंग की आदत अपनाना आवश्यक है। अत: इस शैली के चित्रकार घर एव विद्यालय से बाहर जाकर, प्रकृति, पुरूष, जीव-जन्तु, जलचर, थलचर सभी के गतिमान स्केच किया करते थे। इससे पूर्व भारत में ऐसी प्रथा नहीं थी।

अपनी इन्ही उपरोक्त विशेषताओं के कारण बंगाल शैली के कला आन्दोलन ने देशव्यापी ख्याति अर्जित की तथा भारतीय कला को विदेशी जकड से मुक्त करने का भागीरथ प्रयास किया[1]

'कला के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आत्मवादी रहा है, भारतीय कला के मर्म को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए स्थूल नहीं सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है। भारत में कला की अनुभूति स्वयं परमात्मा की अनुभूति मानी गई है। कला को एक प्रकार की आध्यात्मिक प्रक्रिया माना गया है।[2]

बंगाल शैली के चित्रों में उपरोक्त कथन के भाव को देखा जा सकता है साथ ही उसमें सत्यंम् शिवम् सुन्दरम् की अद्‌भुत अनुभूति सहज ही होती है।

बंगाल शैली की वाश विधा में रंगों की पारदर्शकता पर श्री शैलैन्द्र नाथ डे ने बताया है कि — वाश चित्र बनाने के लिए उन रंगों का उपयोग करना आवश्यक होता है जो पारदर्शक होते है, जैसे - पर्सियन ब्लू (Prussıan blue), फ्रेन्च ब्लू (Fıench Blue), क्रिमसन (Crımson), गैम्बोज (Gamboge), इंडिगो (Indıgo), सीपिया (Sepıa), हॉकर्स ग्रीन (Hokeıs-gıeen), बैन्डेक ब्राउन (Vandyke Bıaown) बर्न्ट साइना (Burnt Sıenna), इमरल्ड ग्रीन (Emeralgreen) येलो (Yellow) आदि।[3]

---

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, ले० डा० प्रेमचन्द्र गोस्वामी, पृष्ठ स०- 5

2 एस्थेटिक्स, सौन्दर्य; ले० — डा० राजेन्द्र बाजपेयी, पृष्ठ स०- 194

3 भारतीय चित्रकला पद्धति, ले० - शैलेन्द्र नाथ डे, पृष्ठ स०-68

उपरोक्त रगो का प्रयोग आरम्भ मे ही करना चाहिए और आरम्भिक दशा मे वाश चित्रो मे सफेद रग नही मिलाया जाता था। रग लगाते समय कागज को गीला ही रखा जाता था। गीले कागज पर ही पतले-पतले रगों का आभास दिया जाता था। इस प्रकार चित्र मे पूरे रंग लगाकर चित्र को सुखा कर फिर पानी में देकर चित्र को पक्का कर लिया जाता था। सूखने के बाद फिर चित्र को गीला, कर पतले रंगों का आलेपन पूर्ववत किया जाता था। ऐसा करने से चित्र कम रग लगाने पर ही मुलायम और सुन्दर आभास देने वाला प्रतीत होने लगता था। फिर उसमें जहॉ जो रग दिया है उन्हीं रंगों का वाश दिया जाता था। वाश देने के बाद उसी समय ब्रुश से उन जगहो से रंग उतारा जाता था जहाँ पर उभार अथवा लाइट रखनी होती थी। वाश चित्र में सफेद रंग का कम से कम प्रयोग करना ही अच्छा मानते है। येलो ऑकर (Yellow Ochie) इमरल्ड ग्रीन (Emeial green), वार्मिलियन (Vermilhon) इन रगो का अन्त मे प्रयोग करना चाहिए। अगर बिना सफेद मिलाये ही चित्र मे वाञ्छित कोमलता व आभास आ जाये तो वह ज्यादा सुन्दर प्रतीत होता है क्योंकि सफेद रंग कोमलता लाने के लिए ही इस्तेमाल किया जाता है।

वाश चित्रो मे धोने की क्रिया चित्र के प्रभाव दिखाने के लिए प्रयुक्त होती है ताकि रग का सम्मिश्रण पूर्णतया हो जाये, और कोमलता तथा कठोरता का समावेश हो जाये। वाश उन्हीं रंगो से किया जाता है जो चित्र में ज्यादा हैं। इनके साथ कुछ रगो मे सफेद जरूर मिलाया जाता है। पूर्ण चित्र का अलग ही छाया आलोक होता है, जिससे चित्र सुन्दर प्रतीत होता है।

उत्तर प्रदेश मे लखनऊ, आर्ट कॉलेज के वाश शैली के चित्रों मे देश के अन्य प्रान्तो मे प्रचलित वाश शैली के चित्रो से कुछ भिन्नता रही है जैसे यहॉ के चित्रों मे त्रिआयामी प्रभाव बहुत सशक्त तरीके से अभिव्यक्त है। चित्रों मे गहराई को बहुत सुन्दर ढंग से दिखाया गया है। श्री बी. एन आर्या का चित्र 'सांवरी' उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है जो वर्तमान में इलाहाबाद संग्रहालय में शोभायमान है। इसी तरह का एक अन्य चित्र पार्वती जो प्रो० राम चन्द्र शुक्ल द्वारा निर्मित है में भी बंगाल शैली की उक्त विशेषता है। शुक्ल जी के चित्र मे क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार शैली की भी कुछेक विशेषतायें है।

अध्याय-2

भारत में मध्यकालीन एवं आधुनिक चित्रकला का संक्षिप्त विकास क्रम

मध्यकालीन चित्रकला

गुप्त साम्राज्य के उपरान्त भारतवर्ष मे नवीनता की जो लहर आई सास्कृतिक इतिहास में उसे 'मध्ययुग' या मध्यकाल (600-13000 ई०) के अन्तर्गत माना गया है। मध्यकालीन भारत के कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभियान को उन्नतिशील बनाने वाले प्राचीन राजवशो मे पाल तथा सेन वंश (बंगाल), पल्लव वंश (दक्षिण) आदि का नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है। इस मध्ययुग मे भारत की सस्कृति, धर्म, साहित्य और कला के चहुँमुखी विकास हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण 'कार्य' हुए जिसका श्रेय इस युग के गुणों के पारखी शासकों को ही है, जिन्होने हिन्दू बौद्ध और जैन तीनो धर्मो के विकास मे स्वतंत्रता प्रदान की।[1]

महाराजा महेन्द्रवर्मन के पुत्र नृसिंह वर्मन (695 - 722 ई०) के शान्त एवं समृद्ध शासन काल मे कला और साहित्य की पर्याप्त प्रगति हुई। पल्लव वश के उपरोक्त शासकों के राज्य मे **सित्तन वासल** की गुफाओ के भित्ति चित्रों की कलात्मकता देखते ही बनती है। ये गुफाचित्र ब्राह्मण देवी देवताओं एवं जैन तीर्थकरों को आधार मानकर निर्मित किये गये हैं। अजन्ता भित्ति चित्रो से प्रभावित सित्तनवासल की गुफा के चित्रों मे प्राकृतिक दृश्यों को बड़ी भव्यता से चित्रित किया गया है।[2]

इन गुफा चित्रो की भित्ति पर चूने का खुरदुरा प्लास्टर करके सतह बनाई जाती थी। रगो के लिए लकड़ी का कोयला (काला) चूना (सफेद) लैम्प ब्लैक, येलो ऑकर, अल्ट्रामेरीन नीला एव टेरावर्ट हरा चूने के माध्यम से प्रयुक्त होता था।[3] मध्यकाल मे सित्तनवासल की गुफाचित्रो के अतिरिक्त चोल राजाओं द्वारा वृहदीश्वर (तंजौर) के मन्दिरों

---

1 - भारतीय सस्कृति और कला, लेखक- वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स० 56

2 - भारतीय सस्कृति और कला, लेखक-वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स०- 469

3 - 'जोधपुर क्षेत्र के भित्ति चित्रो का कलात्मक अध्ययन' (शोध प्रबन्ध) ले०- राजेन्द्र शर्मा, पृष्ठ स०- 64

में भी भित्तियों पर शैव धर्म से सम्बन्धित चित्र मिलते हैं। ये चित्र सेको फ्रेस्को पद्धति मे निर्मित किये गये हैं। इस पद्धति में दीवार पर चूने या रेत का पलस्तर करके, गीले पलस्तर पर ही लाल रंग लगाये जाते थे। इन चित्रों का निर्माण राजराजा प्रथम (1000 ई०) के समय में हुआ था। आकृति चित्रण चोल भित्ति चित्रों की प्रमुख विशेषता है शिव के चित्रांकन मे पुष्टता एवं पौरूष का सुन्दर दिग्दर्शन है। गति एवं लय अप्सरा एव गन्धर्वों के अंकन मे स्पष्ट है साथ ही आसीन आकृतियों में लचीलापन है। इस शैली के चित्रों की आकृतियों मे विविधता नहीं है और रेखायें भी कर्कश एवं कठोर है, परन्तु वर्णो में पर्याप्त कोमलता है।[1]

कालान्तर मे भित्ति चित्रों के निर्माण की लोकाप्रियता घटने लगी। आठवी शताब्दी के पश्चात तो ये समाप्त प्राय सी हो गई और इनके स्थान पर लघुचित्रों को वरीयता दी जाने लगी जैसा कि पूरब में बंगाल के पाल स्कूल (9वीं एव 12वीं शताब्दी) एवं पश्चिम मे गुजराती स्कूल मे (11 वीं - 15वीं शताब्दी) दिखाई देता है।[2] यही कारण है कि मध्यकालीन भारतीय चित्रकला को दो वर्गो में बॉटकर देखा जाता है, एक भित्ति चित्रण एवं दूसरा लघु चित्रण।[3]

भित्ति चित्रो से लघु चित्रों तक की कलायात्रा के पीछे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण गजनी का महमूद गजनवी (998-1030 ई०) रहा है, जिसने मध्य एशिया के अनेक देशों एवं अफगानिस्तान को स्वायत्तता प्रदान करते हुए सिन्ध मुलतान तक अपनी पहुँच बनाई। पहले से ही बसे हुए अरबों की मदद से पंजाब के मैदानों पर आधिपत्य स्थापित किया। उसके पश्चात थानेश्वर, कन्नौज तथा मथुरा को रौंदता हुआ वह गुजरात के सोमनाथ मन्दिर तक पहुँच गया। यहाँ उसने मन्दिरों को ध्वस्त किया उन्हे लूटा और भारत की अपार धन सम्पदा को अपने देश गजनी पहुँचवाया। भारत के कला प्रतिष्ठानों एवं ज्ञान केन्द्रो को अपूर्णनीय क्षति पहुँचाकर गजनी में पुस्तकालयों एवं मस्जिदों का निर्माण किया। इससे यह भी ज्ञात

---

1 भारतीय चित्राकन, लेखक - डा० रामकुमार विश्वकर्मा, पृष्ठ स०- 85-86

2 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, ए पिक्टोरियल प्रेसेन्टेशन- ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 32-33

3 द वर्ल्ड ऑफ इन्डियन मिनियेचर, लेखक- जमीला ब्रजभूषण, पृष्ठ स०- 11

होता है कि भारत में मुगल सल्तनत की रूपरेखा लगभग आठवीं शताब्दी से ही बननी प्रारम्भ हो गई थी।[1]

मध्य कालीन कला का चरम विकास इसके लघुचित्रों में देखने के मिलता है, जो क्रमश: पाल, जैन, अपभ्रश, राजपूत एवं मुगल शैलियों में उत्तरोतर, सौन्दर्य को प्राप्त करते हुए साफ दृष्टिगोचर होता है।

पाल शैली – पाल राजाओं के संरक्षण में पली 'पाल शैली' नाम से अभिहित इसके लघु चित्रों की अधिकाशत: विषयवस्तु बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। ये चित्र महायान बौद्धवाद के अन्तिम चरण में विकसित गहरी सजावट से निकले हुए हैं। 11वी और 12 वीं शताब्दी की प्रसिद्ध बौद्ध कृति प्रज्ञापारमिता के कतिपय ताड़पत्रो के हस्तलेख अद्यावतन् सुरक्षित है। इस शैली के चित्र लहरदार रेखाओं, मंद रंग संगति और सरल संयोजन युक्त हैं।[2]

तालपत्र के लंबे लंबे एक सरीखे टुकडे काटकर बीच में चित्र के लिए स्थान रिक्त छोड़ने के उपरान्त ताल पत्र के दोनो ओर नागरी लिपि में सुन्दर अक्षरों में ग्रन्थ लिखे जाते थे।[3]

पाल शैली के चित्रो में लाल नीला सफेद काला तथा इनके मिश्रण से निर्मित बैगनी फाखतई आदि रंगों का प्रयोग किया गया है। ये रंग क्रमश: सिन्दूर, हिंगुल महावर (लाल), लाजवानी, नील, (नीला) खड़िया सफेद, काजल (काला) आदि प्राकृतिक एव वानस्पतिक सामग्रियों से बनाये जाते थे।

अपभ्रंश :- पाल शैली का एक अन्य भाग पश्चिमी भारत में अपभ्रंश शैली के नाम से जाना जाता है। इसका इतिहास लगातार पाँच शताब्दियों का है (1100 – 1500 ई०) इस शैली के प्रारम्भिक चित्र ताल पत्रों पर बने है और बाद के कागज़ पर। जैसा कि ज्ञात हुआ है कि कागज़ चौदहवीं शताब्दी से प्रयोग में लाये जाने लगे थे किन्तु भारत में ये सोलहवी

---

1 भारतीय सस्कृति और कला, लेखक- वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स०- 530

2 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, ए पिक्टोरियल प्रेसेन्टेशन- ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 32

3 मध्यकालीन भारतीय कलाएँ और उनका विकास, लेखक- डा० रामनाथ, पृष्ठ स०- 6

शताब्दी में प्रयोग में आये।[1] इन चित्रों की प्रमुख विशेषताएँ इनकी तीन चौथाई कोणाकार मुखाकृतियाँ, नुकीली नाक, चेहरे से बाहर आती आंखो की रेखाएं हैं - ये लघुचित्र आकारो में $2\frac{1}{2}$ '' × $2\frac{1}{4}$ '' के हैं। प्रारम्भिक चित्रों में मैरुन पार्श्वभूमि और सरल रंग योजना है। जबकि पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद के चित्रों में सुनहरे एवं नीले रंग का भरपूर प्रयोग है।[2] (जो ईरानी प्रेरणा के कारण चलन में आया है)- उदाहरणार्थ अहमदाबाद से प्राप्त कल्पसूत्र की एक प्रति है जिसमें आकृतियाँ, वस्त्रविन्याश, साजसज्जा, बेलबूटे आदि ईरानी है।[3]

अपभ्रश शैली के चित्रों की विषय वस्तु तीन स्वरों की है- प्रथम प्रारम्भिक काल मे जैनों के पवित्र ग्रन्थ (कल्पसूत्र) की है। द्वितीय वैष्णव विषय- जैसे गीत गोविन्द, भागवत (कृष्णलीला) एवं तृतीय जनसामान्य से सम्बन्धित (चौरपंचाशिका) एवं ऋतुओं के मनोहारी वर्णन पर आधारित है जैसे वसन्त विलास (वस्त्र चित्रित रोल, 1451 ई०)। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार ''इन चित्रों में ताजगी और सुसगत रंग संयोजन है जो प्रारम्भिक राजस्थानी चित्रों में देखा जाता है।[4]

1100 से 1400 ई० के मध्य जो चित्रित ताड़पत्र पर पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, उनमें 'अंगसूत्र', 'कथा सरित सागर', 'त्रिषष्ठि शलाका पुरूष चरित्', 'श्री नेमिनाथ चरित', 'श्रावक प्रतिक्रमण चूर्णि आदि हैं। 1400 से 1500 ई० काल में जो पाण्डुलिपियाँ चित्रित की गई है उनमे 'कल्पसूत्र', 'कालकाचर्यम' और सिद्धहैम आदि उल्लेखनीय हैं। कल्पसूत्र की एक चित्रित प्रति 1237 ई० की तालपत्र पर प्राप्त है जो पाटन के भण्डार में सुरक्षित है।

कल्पसूत्र की प्रतियाँ शुद्ध धार्मिक भावना से प्रेरित होकर निर्मित की जाती रही हैं। धनी लोग इन्हे बनवाकर जैन साधुओं को समर्पित कर देते थे जो इन्हें सुरक्षित रखते थे और साधुओं को समर्पित कर देते थे जो इन्हें सुरक्षित रखते थे और वर्ष में एक बार श्रोताओं को

---

1 द वर्ल्ड ऑफ इन्डियन आर्ट, ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 32-33

2 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 32-33

3 मध्यकालीन भारतीय कलाए एव उनका विकास, ले० डा० रामनाथ, पृष्ठ स०- 45

4 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, पृष्ठ स०- 33

सुनाने के लिए बाहर निकाला करते थे। यह कार्य बड़ा पुण्यमय समझा जाता था। गुजरात के अतिरिक्त माण्डु एवं जौनपुर भी इस शैली के प्रमुख केन्द्र थे।

अपभ्रंश शैली के चित्रों में गहरा-गहरा रंग चित्र सतह पर लगाया गया है जिस कारण पृष्ठभूमि आकृतियों पर चढ़ जाती है। वर्तना क्षयवृद्धि आदि पर ध्यान दिया गया है। पेडों का अंकन गुलदस्ते जैसा और पशुपक्षी कागज के खिलौने जैसे प्रतीत होते है। फिर भी 16 वी शताब्दी मे इस शैली के चित्रों में सजीवता एवं सौन्दर्य के दर्शन होते है। उदाहरणार्थ 1525 ई० में रचित अवधी काव्य ''लौरचन्दा'' [1]के उपलब्ध कुछ चित्रित पृष्ठों मे इस शैली का क्रमिक विकास देखा जा सकता है।[2]

जैन शैली :- जैन चित्रकला की ऐतिहासिक उपलब्धि 7 वीं शताब्दी से है, जिसके प्रमाण, सम्राट हर्ष के समकालीन पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन (7 वीं सदी) के समय में निर्मित सित्तनवासल गुफा की पाँच जिन-मूर्तियॉ हैं, जिन्हे अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थों को चित्रित कराने एव करने का बडा शौक था। आरंम्भिक जैन कलाकृतियों को कुछ विद्वानों ने प्रारंभिक पश्चिमी शैली कहा, कुछ ने गुजराती शैली, और कुछ ने अपभ्रंश शैली के नाम से सम्बोधित किया है। 12 वीं सदी के पूर्व जैन चित्रकला शिथिल पड़ गयी और मुगल शैली की विकासावस्था मे तो उसका अस्तित्व सर्वथा ही मिट गया था। 12 वी सदी के बाद वह पुनरूज्जीवित हुई। कालान्तर में जैन चित्रकारो ने राजपूत और मुगल शैलियो से प्रेरणा ग्रहण कर अपने क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाया। जैन चित्रकला गुजरात की श्वेताम्बर कलम से प्रारम्भ होकर राजपूताना में वर्षो तक अपना विकास करती रही और बाद में ईरानी प्रभावो से मुक्त होकर 'राजपूत कलम' में ही विलयित हो गई।[3]

---

1 लौरचन्दा हिन्दी अवधी प्रेम कथाओ मे सबसे अधिक पुराना ग्रन्थ है इसकी रचना 'मुल्ला दाऊद' ने 1370 ई० मे 'चन्दायन' नाम से की थी।

2 मध्यकालीन भारतीय कलाए एव उनका विकास, ले० डा० रामनाथ, पृष्ठ स०- 45

3 भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स० - 138

'जैन कलाकारो की निपुणता का दर्शन ताड़पत्रीय पोथियों में देखने को मिलता है। 'सिद्धहेम व्याकरण' और 'कालकथा' की अनेक ताड़पत्रीय पोथियो पर जो चित्र अंकित है उनको देखकर तत्कालीन चित्रकला की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त किया जा सकता है।[1] जैन शैली के चित्रों के उदाहरण ताड़पत्र के अतिरिक्त कागज एवं कपड़ों पर भी प्राप्त होते हैं। किन्तु कागज पर बने चित्रों में वही बारीकी नही है जो ताड़पत्रों पर बने चित्रों मे प्राप्त होती है। जैन शैली के चित्रो में आँखों की बनावट भी दर्शनीय है जो जैन शिल्प एव स्थापत्य की देन है। रंगो और रेखाओं की दिशा में भी जैन कलाकारों ने सजगता बरती है। ताड़पत्रो पर अंकित चित्र प्राय: पीले रग के हैं और उनमें सोने जैसे रंग का भी प्रयोग है, पृष्ठ भूमि अधिकाश रूप से चटक लाल और पीली है। जैन चित्रो मे आकृतियाँ एक चश्म, डेढ चश्म और दो चश्म है।

प्रसिद्ध विद्वान वाचस्पति गैरोला के अनुसार — ''जैन कला में हमें एक असामान्य विशेषता यह दिखाई देती है कि उसमें तत्कालीन लोक-जीवन की सच्चे अर्थो में अभिव्यक्ति हुई है। ऐसा तभी सम्भव हुआ, जब कि वह धार्मिक सीमाओं में बँधी रही और राज्याश्रयो के विलासमय वातावरण की ओर से सदा ही विमुख रही। उसकी आकृतियो, रेखाओ और साज-सज्जा आदि सभी मे लोक कला का समर्थ रूप विद्यमान है। जैन चित्रो की इस लोककला का आधार 'कल्प सूत्र' तथा 'आचारांग सूत्र' में वर्णित जैन तीर्थकरों की जीवनी और 'कालकाचार्य कथा' रही है जो तत्कालीन लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-विचारो की अभिव्यंजना करती हैं।''[2]

राजस्थानी शैली :- मध्यकाल मे 15 वीं शताब्दी सांस्कृतिक पुनरुत्थान का काल था। फलत: धर्म, साहित्य, संगीत, वास्तु आदि समस्त क्षेत्रों में प्रगति एवं नवजीवन की लहर दौड़ने लगी। चूँकि अपभ्रंश शैली के चित्रों से ही चित्रकला में ईरानी प्रभाव परिलक्षित होने लगा था अत: इसमे हुए परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप जिस नई चित्रकला शैली का जन्म

---

1 वही

2 भारतीय चित्रकला, पृष्ठ स०- 143

हुआ उसे राजपूत या राजस्थानी शैली कहते हैं।[1] राजस्थान के राजपूत राजाओं के संरक्षण मे पल्लवित होने के कारण इसे राजपूत या राजस्थानी नाम से अभिहित किया गया है। इसका समय 1550-1850 तक मानते हैं। इस पर बौद्ध चित्रकला शैली का पर्याप्त प्रभाव है, इसी कारण डा० आनन्द कुमार स्वामी ने इसे भारत की प्राचीन निधि भी कहा है।[2]

राजस्थानी चित्रकला शैली की विषय वस्तु रूढिगत धार्मिक परम्पराओं के हटकर है। इनमें वैष्णव भक्ति विषयक चित्रो के साथ-साथ सासारिक विषयो को स्वच्छन्द रूप से प्रदर्शित किया गया है। बदलते दौर में वैष्णववाद के उदय से तांत्रिको की योग क्रियाओं एव दार्शनिको की रहस्यमयता के स्थान पर राधा एवं कृष्ण के भक्तियुक्त प्रेम की परम्परा स्थापित हुई और इसी भक्ति को ही मोक्ष का साधन माना गया। जिसमें सहज सम्प्रदाय के चण्डीदास (14 वी शताब्दी), मैथिल कवि विद्यापति (15 वीं शताब्दी), जयदेव ने (12 वीं शताब्दी) गीत गोविन्द मे और बिल्वमंगल ने 'बाल गोपालस्तुति' में रसभीने प्रेम को अधिक महत्व दिया है। 10 वीं शताब्दी के भागवत पुराण में कृष्ण एवं ब्रज की गोपिकाओं के प्रेम की चर्चा है। 16वी शताब्दी वल्लभाचार्य ने तो राधा एवं कृष्ण के पवित्र प्रेम को भक्त के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार यह कृष्ण प्रेम गाथा वैष्णववाद की आधार शिला बना। इस नये दृष्टिकोण से सिर्फ धार्मिक ही नहीं अपितु कला के क्षेत्र में भी हलचल मच गई। अपभ्रंश शैली के काल में कलाकारों को अपने हृदय की सुन्दर एवं कोमल अनुभूतियों को व्यक्त करने का कोई अवसर नहीं मिल सका था किन्तु 15 वीं शताब्दी में प्रेम की धारा जन-जन में प्रमुख हो गई। फलस्वरूप चित्रकला के सिद्धान्तों मे भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। 1451 ई० मे अहमदाबाद में रचित 'वसन्तविलास' में सर्वप्रथम इस दिशा मे ठोस प्रयत्न किया गया। वसन्तविसाल के अतिरिक्त विल्हण की चौरपंचाशिका और अन्य ग्रन्थो में धार्मिक अंश लेश मात्र भी नहीं है। 1506 में लिखी 'मृगावती' एवं मुल्ला दाउद की 'लौरचन्दा' के विषय लौकिक हैं तथा जो नायक नायिका भेद पर आधारित हैं। 1591 ई० में केशवदास ने

---

1 मध्यकालीन भारतीय कलाए एव उनका विकास, ले० डा० रामनाथ, पृष्ठ स०- 8

2 भारतीय चित्राकन, ले०- डा० रामकुमार विश्वकर्मा, पृष्ठ स०- 98-99

रसिकप्रिया एवं 1601 ई० मे कविप्रिया की रचना की। चित्रकारों ने रसिकप्रिया के बडे पैमाने पर चित्र बनाये। केशवदास ने अपने काव्य में सोलह श्रंगार एव स्त्री अलंकरण के सोलह प्रसाधनों का वर्णन किया है। चित्रकार अपने चित्रों मे शास्त्रोक्त विधि से स्त्रियो का अकन करने के ध्येय से कवि द्वारा बताये सोलह श्रृंगारों को ध्यान में रखता था। संगीत की प्रगति के साथ रागमाला के चित्र भी बनाये जाने लगे। सोलहवीं शताब्दी तक चित्रकला का रूप ही बदल गया। इन चित्रों मे अब उल्लास जीवतता एव स्फूर्ति मिलने लगी। रंगों का प्रयोग सौन्दर्यानुभूति के साथ होने लगा।

राजस्थानी शैली मे चित्रो में अग विन्यास वेषभूषा प्रकृति चित्रण, आलेखन सभी कुछ अपभ्रंश शैली से भिन्न है। इनमे लाल पीले रगो के साथ साथ अन्य चटकीले रगो का भी प्रयोग है। चित्रकारो ने रगो का प्रयोग टेम्परा प्रभाव के साथ किया है तथा सफेद रग को अन्य रंगो में मिलाकर उन्हे कोमलता प्रदान की है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दो मे – ''राजस्थानी चित्रों की स्त्रियां नारी सौन्दर्य के आदर्श रूप की यर्थाथ मूर्तियां हैं। कठोर उरोज, कमनीय कटिप्रदेश और गुलाबी हॉथ इनकी विशेषता हैं। आलेखनों में गति शीलता एव लयात्मकता है। पशु पक्षियों को प्रतीक रुप में चित्रित किया गया है।'[1]

श्री नीहार रंजन राय के अनुसार – ''राजस्थानी चित्रकला शैली का उद्देश्य आकृतियों एवं प्रतीको के माध्यम से एक कहानी कहना है। इस कला शैली में प्राकृतिक वस्तुएं- स्त्री, पुरुष, वृक्ष, जानवर और इमारते चित्र की एकरसता को दूर कर प्रतीक रूप मे चित्रित की गई हैं।'[2]

मेवाड किशनगढ़ बूँदी, बीकानेर, जयपुर आदि क्षेत्रों में विकसित राजस्थानी लघु चित्रकला अपने आरम्भिक समय में भित्ति चित्रकला थी क्योकि कुछ बड़े आकार के चित्र जयपुर एवं उदयपुर के महलों की दीवारों पर मिलते हैं।[3]

---

1 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, पृष्ठ स०- 33

2 पैनोरमा ऑफ इन्डियन पेन्टिग, पृष्ठ स०- 23

3 इम्डियन पेन्टिग, ले०- सी० शिवराममूर्ति, पृष्ठ स०- 93

मुगल चित्रकला :- भारत वर्ष के परवर्ती सांस्कृतिक विकास एवं कलाभ्युदय के इतिहास मे उत्तर मध्ययुगीन मुगल वंश का नाम उल्लेखनीय है। 330 ईसा पूर्व मे सिकन्दर के आक्रमण से यहॉ ग्रीको का प्रभाव बढ़ने लगा था और परिणाम स्वरूप भारत की एक छत्र शासन व्यवस्था खण्डित होना प्रारम्भ हो गई थी। महमूद गजनबी ने यहाँ की असंगठित स्थिति का लाभ लेते हुए यहाँ के सांस्कृतिक प्रतिष्ठानों को ध्वस्त किया। क्रूरता एव बर्बरता के इस दौर में भारतीय संस्कृति का इस्लाम धर्म से सम्पर्क हुआ। तत्पश्चात् यहॉ अरबी, ईरानी, तुर्की आदि बाहरी संस्कृतियों का समागम हुआ। जिसका प्रभाव साहित्य कला, राजनीति, धर्म और जनता के दैनिक रहन-सहन पर परिलक्षित हुआ। भारत में वास्तु, मूर्ति एवं चित्र तीनों कला रुपों में इस्लामी शिल्पियों एवं कलाकारों ने नई चेतना एवं नवीनतम् भाव विधा का समावेश किया। चित्रकला के क्षेत्र मे मुगल शैली ने भारत वर्ष को अविस्मरणीय कला थाती से समृद्ध किया।

दिल्ली में मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर के शासन काल में परम्परागत सास्कृतिक समन्वय का प्रभाव तेजी से प्रसारित हुआ। तुर्की भाषा में लिखित ''बाबर का आत्मचरित'' एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें बाबर ने फारसी चित्रकार ''विहज़ाद' के आलेखनों की सूक्ष्म विवेचना की है। शाहनामा की एक सचित्र प्रति जिसे बाबर अपने साथ भारत लाया था दो सौ वर्षो तक दिल्ली के शाही पुस्तकालय में रहने के बाद आज एशियाटिक सोसाइटी लन्दन में सुरक्षित है।

हूमायूँ को कला प्रेम विरासत में मिला था, किन्तु राजनीतिक उथल पुथल मे उसका कलानुराग दब सा गया था। काबुल में उसकी मुलाकात शीरी कलम के कुशल चित्रकार मीर सैयद अली और अब्दुस्समद शीराजी से हुई थी। अत: दिल्ली में पुन: स्थापित होने के बाद उसने दोनों कलाकारों को अपने दरबार में बुलवाया। इस पकार मुगल कालीन चित्रकला के इतिहास में नये युग का सूत्रपात हुआ। हूमायूँ के कला प्रेम की साक्षी सचित्र पोथियों में 'दास्तान-ए-मीर-हम्जा'', नासिर-उल-उमरा, हम्जानामा आदि विशेष उल्लेखनीय है।[1]

---

1 भारतीय संस्कृति और कला, ले०- वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स० 356

1556 ई० में अकबर गद्दी पर बैठा। वह स्वभाव से उद्दार एवं कला प्रेमी होने के साथ-साथ धार्मिक कट्टरता से मुक्त था। उसने संस्कृत और परसियन साहित्य की उत्कृष्ठतम् कृतियों के चित्रण का कार्य करवाया जिनमें — 'तिमूर के भवन का इतिहास' (मूल प्रति बांकीपुर मे है) महाभारत (जिसकी रज्मनामा नामक परसियन प्रति जयपुर में है)। 'हम्जानामा की प्रेमकथाओ के तो कपड़े पर 1375 चित्र सृजित किये गये थे। अतिरिक्त इसके रामायण, अकबरनामा, 'एयरे दानिश और अन्य ग्रन्थो पर अनेकों चित्रकारों द्वारा संयुक्त रूप से चित्र सृजित किये गये। अकबर कालीन इन चित्रों में राजस्थानी एवं परसियन कला शैलियो के सर्वोत्तम तत्वों को आत्मसात करके शुद्ध भारतीय भावना प्रदर्शित करने का सफल प्रयास है।[1]

अकबर काल में धार्मिक ऐतिहासिक ग्रन्थों के अलावा चित्रपट, व्यक्तिचित्र एव भित्ति पर भी पर्याप्त मात्रा में काम हुआ है। 1567—1582 ई० के मध्य सृजित 'हम्जानामा' के चित्र भारतीय चित्रपटों की परम्परा में बनाये गये है ये सवा दो फुट लम्बे और लगभग दो फुट चौड़े है। अकबर ने स्वयं अपने अनेकों व्यक्ति चित्र बनवाये और सम्राज्य के सभी उमरा को भी व्यक्ति चित्र बनवाने के लिए प्रेरित किया। इन व्यक्ति चित्रों को एक बड़ी पोथी मे संग्रहीत किया जाता था। फतेहपुर सीकरी की भित्तियों पर उसने शिकार, युद्ध एवं उत्सवों के चित्र बनवाये जो कि ग्रन्थ चित्रों की भाँति हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि इन्हें दीवार पर बड़ा करके बनाया गया है।

अकबर कालीन चित्रों मे विशुद्ध भारतीय रंगों का प्रयोग है जैसे- सिन्दूर पेवड़ी हिंगुल, जमाल, गेरू, हिरौंजी, रामरज, हरा ढ़ाना, नील आदि इन रंगो के मिश्रण से मीने के समान दमकते चित्र बनाये जाते थे और इन पर चमक के लिए स्वर्णकारी की जाती थी।

अकबर कालीन चित्रों के आलेखनों में गति एवं अभिव्यंजना के साथ आकृतियॉ भी भावपूर्ण है। रेखाओं की कलाकारी के अतिरिक्त चित्रों में सजीवता एवं उन्मुकता भी है।

---

1 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, ए पिक्टोरियल प्रेसेन्टेशन, ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 35

ईरानी अलंकारिकता को भारतीय विषयों, वेषभूषा, पशुपक्षी, वातावरण एवं प्रकृति के साथ मिला लिया गया है।

अकबर के समय में एक चित्र पर कई कलाकार काम करते थे। कोई वसली बनाता, कोई रूप रेखायें खीचता, कोई चित्रांकन करता तो कोई रंग। इस प्रकार कला किसी की व्यक्तिगत शैली न होकर एक प्रवृत्ति के रूप में सामने आती है जिस पर चित्रकारों से ज्यादा कला के आश्रयदाताओं की छाप होती है। और उस सामूहिक भावना की भी छाप दिखती है जिसकी प्रेरणा से उन कलाकारों ने साथ बैठकर साधना की।

जहाँगीर के शासन काल में चित्रकला का स्वर्ण युग मानते है। वह चित्रों का उत्साही प्रेमी, कला का उदार संरक्षक, कला पारखी और इस क्षेत्र में समीक्षात्मक दृष्टि रखने वाला था। रेखा का सौन्दर्य और दूसरे में विलीन होते हुए मृदुल रंग उसके शासन काल मे निर्मित चित्रों की विशेषता हैं। अधिकांशत: चित्र उसके स्वय के जीवन प्रसंगों और घटनाओं से सम्बन्धित हैं। वह पशुओं एवं पक्षियों का बेइन्तहां शौकीन था जिसकी उस्ताद मसूर द्वारा चित्रित सर्वोत्तम कृतियाॅ उसके निजी संग्रह में सुरक्षित हैं।

17 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब जहाँगीर गद्दी पर बैठा तो मुगल कला विहजाद के ईरानी प्रभाव से मुक्त हो चुकी थी। क्योंकि युवराज्यावस्था से ही जहाँगीर यूरोपी चित्रो का सग्राहक था। उसके चित्रकार उनकी (यूरोपीय चित्रों की) अनुकृतियाँ बना रहे थे। इसके अनेक उल्लेख मिले हैं। चित्र भी मिले हैं। निश्चय ही जहाँगीर शैली के परिपक्व उदाहरणों में यूरोपी शैली के चित्रों का स्पष्ट प्रभाव है।[1]

अकबर कला को मनोरंजन एव अध्ययन के उद्देश्य से प्रोत्साहन देता था किन्तु जहाॅगीर की रूचि चित्र कला में आन्तरिक एवं स्वाभाविक थी। वह व्यक्तिगत शौक के कारण चित्रकला को प्रोत्साहन देता था। जहाँगीर के शासनकाल में प्रकृति चित्रण चित्रकला की प्रमुख धारा बना। हाशियों के सजाने की कला का प्रारम्भ जहाँगीर के समय से प्रारम्भ

---

1 (चिति वीथिका, वाल्यूम 1-2 1995-96) निबन्धकार - राय आनन्द कृष्ण, पृष्ठ स०- 147

हुआ जिसके उदाहरण बर्लिन के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। हाशियों में लाल, नीले आदि चमकीले रंगों के साथ अधिकांशतः सोने का काम किया जाता था।

मुगल कालीन लघु चित्र आधिकांशतया बंबू की छाल से निर्मित कागज या फिर अच्छी तरह से पालिश किये हुए सिल्क के धागों वाले कपड़ों पर बनाये जाते थे। चित्र सतह को कड़ा एवं मोटा करने के लिए एक कागज पर दूसरा चिपकाया जाता था। पाण्डुलिपियो के रेखांकन इकहरी शीट पर ही किये जाते थे। फिर उन्हे ढीले फोलियों मे लगाया जाता था।[1]

लघु चित्रों की विषय वस्तु सुल्तान द्वारा ही निर्धारित की जाती थी। इन चित्रों के ले-आउट कुशल चित्रकार द्वारा हल्के नीले अथवा गेरूये रंग से चिकने कागज़ पर बना ली जाती थी। जब यह कार्य सम्पन्न हो जाता तो स्पष्ट एवं सटीक रेखायें खींची जाती। स्केचिंग के बाद सफेदे की एक पतली कोटिग की जाती जिससे गलत या अवांक्षित रेखाये मिट जाती थी।

सुल्तान द्वारा कुशल रेखांकन के कार्य को मान्यता मिलने के बाद इसे हिरन की पतली छाल पर ट्रेस किया जाता था तथा स्टेंसिल काट कर पुनः ड्राइंग तैयार की जाती थी।

जहाँगीर के बाद मुगल चित्रकला एवं चित्रकारों को उपेक्षा का सामना करना पड़ा इसीलिए चित्रकार मुगल दरबार छोड़कर हिन्दू राजाओ के संरक्षण में चले गये।

पहाड़ी चित्रकला - 18 वी शताब्दी में जहाँ मुगल शैली पतन की ओर अग्रसर हुई, राजस्थानी चित्रकला में अनेक शाखायें फूटीं और विभिन्न केन्द्रों में उनका विकास हुआ। परिणामस्वरूप पहाड़ी शैली का जन्म हुआ।

जम्मू बसौहली, चम्बा, नूरपुर, कांगडा, कुल्लू और सुकेत जैसे हिमालयी राज्यों के अंचलों मे निर्मित चित्रकृतियाँ पहाड़ी शैली के नाम से जानी जाती हैं। इनका विकास 18 वीं शताब्दी के अन्त एवं 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ।

---

1 चिति वीथिका, सपादक -जी० सी० पाण्डेय, निबन्ध-मुगल मिनियेचर पेन्टिग, निबन्धकार- गायत्री नाथ पत, पृष्ठ स०- 14-15

पहाड़ी कला की सबसे प्रिय विषय वस्तु कृष्ण की बाल लीलाएँ और राधा के साथ उनके प्रेम का वर्णन है। बार-बार दुहराए जाने वाले प्रतीकों में, वन शोभा युक्त वातावरण मे नृत्य और संगीत हैं। बसौहली के चित्र रंगों की असामान्य चमक और चैतन्य युक्त अभिव्यक्ति प्रदर्शित करते हैं। कांगड़ा के चित्र मुगल लघुचित्रों की कारीगरी को दर्शाते है। इनकी रग संगति कोमल एवं रेखायें बहुत बारीक हैं। विशेषकर नारी चित्रण मे।[1]

19वीं शताब्दी के द्वितीय चरण में ब्रिटिशों के आगमन से पूर्व अनेकों छोटे-छोटे राज्य पहाड़ी अंचलों में पनप रहे थे। कुछ राज्य जैसे कांगड़ा जम्मू और चम्बा का अपना लम्बा इतिहास था और इनकी उत्पत्ति प्राचीन युग से थी। जबकि अन्य राज्य बाद में राजनीतिक विभाजन के चलते बने और उन पर मुसलमानों का शासन था।[2]

कांगड़ा की घाटियों में चित्रकला की पहुँच के पीछे एक इतिहास है। 1739 में भारत पर नादिरशाह ने आक्रमण किया। दिल्ली उसके कब्जे में आ गई और सुरक्षा के लिए लोग चारों तरफ भागने लगे। दिल्ली से भागे शरणार्थियों में कुछ हिन्दू चित्रकार भी थे जो मुगल शैली में प्रशिक्षित थे वे पंजाब की पहाड़ियों में बचकर आये गुलेर पहुँच कर उन्हें राजा दिलीप सिह (1695-1744) का आश्रय मिला। बाद में उनके पुत्र गोवर्धन चन्द्र और पोते प्रकाशचन्द्र ने इस परम्परा को कायम रखा।

1786 ई० में राजा संसार चन्द्र ने कांगड़ा के किले पर अधिकार कर लिया। संसार चन्द्र एक कलाप्रेमी शासक था उसने गुलेर के चित्रकारो के प्रति आकर्षित होकर उन्हे अपने संरक्षण में प्रोत्साहन प्रदान किया।[3]

पहाडी चित्रकारो के पास पहले से ही चित्रण हेतु विषय सामग्री उपलब्ध थी। रामायण, महाभारत, भागवत पुराण, मार्कण्डेय पुराण, गीत-गोविन्द और रसमंजरी आदि

---

1 द हेरिटेज ऑफ इन्डियन आर्ट, ए पिक्टोरियल प्रेसेन्टेशन, ले०- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ स०- 34-35

2 सेन्टर्स ऑफ पहाडी पेन्टिग, ले० चन्द्रमणि सिह, पृष्ठ स०-5

3 पैनोरमा ऑफ इन्डियन पेन्टिग, निबन्धकार-श्री एम० एस० रधावा, पृष्ठ स०-26-27

संस्कृत ग्रन्थों पर पहले ही राजस्थानी शैली मे काफी काम हो चुका है। हिन्दी ग्रन्थो में रसिक प्रिया, बारहमासा, कविप्रिया, बिहारी सतसई आदि पर भी राजस्थानी शैली में काम हुआ है। अत: पहाड़ी चित्रकारों ने पुन: इन कथाओं को विषय वस्तु रूप में चित्रित किया। कुछ नये संयोजन भी रचे गये। जैसे लाछीराम द्वारा रचित 'करना-भरना' तथा स्थानीय प्रसिद्ध प्रेम कथाओं में 'हीर रांझा', 'सोहनी-महीवाल' आदि।[1]

यूरोपीय चित्रकारों के विपरीत पहाड़ी या भारतीय चित्रकारों को समूह मे प्रशिक्षित किया जाता था और वे सभी मिलकर किसी शैली की रचना करते थे। प्रत्येक शैली की अपनी विशेषतायें होती थीं। जैसे मुगल चित्रकारी अपनी बारीकियों के लिए जानी जाती है। राजस्थानी चित्र अपनी मोटी रेखाओं एवं तज गति के लिए प्रसिद्ध है तो पहाडी चित्रों की लयात्मकता हैं जो उसके प्रेमयुक्त विषयों के सर्वथा अनकूल हैं।[2]

दक्खिनी शैली :- मुगल स्कूल से उत्पन्न हुई गोलकुण्डा एवं बीजापुर के दक्खिनी राज्यो के स्थानीय शासको के प्रोत्साहन (मुगल शैली से अलग हुई कला) से दक्खिनी कलम का विकास 17 वीं शताब्दी में अपने आंचलिक प्रादेशिक रूप के साथ हुआ। इनकी विषयवस्तु मे अतिशय रूढ़िवादिता दिखाई देती है। चित्रकारो द्वारा व्यक्तिचित्रों पोथी अलंकरण, रागमाला तथा दरबार दृश्यों पर काफी प्रयोग किये गये। कैनवस पर व्यापक मात्रा में चित्रकारी को भी इस काल में सफलता के साथ सम्पन्न करने का प्रयास किया गया।

'रिचर्ड एटिंगसन' के अनुसार दक्खिनी राजाओं के लिए जो लघु चित्र बनाये गये वे मुगल चित्रो की तुलना में ज्यादा ही लचीले एवं शारीरिक आकर्षण वाले हैं। इनके भाव आनन्दित करने वाले एवं चंचल है। रंग भी नये हैं तथा जिन हिन्दू विषयों को मुगल चित्रो में स्थान नहीं मिला उसे दक्खिनी कलम में जगह मिली।[3]

---

1 सेन्टर्स ऑफ पहाडी पेन्टिग, ले०- चन्द्रमणि सिह, पृष्ठ स०-19-20

2 सेन्टर्स ऑफ पहाडी पेन्टिग, ले०- चन्द्रमणि सिह, पृष्ठ स०-21

3. पेन्टिग ऑफ द सुल्तान एम्परर्स ऑफ इन्डिया, इन अमेरिकन कलेक्शस पृष्ठ-स०-3

आधुनिक चित्रकला

भारतीय आधुनिक चित्रकला को जानने एवं समझने के लिए इसके विकास क्रम को समझना बहुत आवश्यक है और विकास क्रम को जानने से पूर्व तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य को भी जानना उतना ही जरूरी है, जिसने अप्रत्यक्ष रूप से भारत मे आधुनिक कला की विकास यात्रा को प्रभावित किया।

ऐतिहासिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि :- भारत मे जहाँगीर काल से ही यूरोपियन कला का प्रभाव मुगल शैली एवं अन्य भारतीय चित्रकारों की शैलियों पर दिखने लगा था। 18वीं शताब्दी तक भारत राजनैतिक उतार चढ़ाव के दौर से गुजर रहा था। विभिन्न छोटी छोटी रियासतों की शक्तियॉ स्वयं को सर्वोच्च साबित करने की होड़ में एक दूसरे के खिलाफ षडयंत्र रच रही थीं और आक्रमण कर रही थी। महान शासक पहले से ही बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी से हाथों सौंप चुके थे। ''ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना लदन मे 1599 ई० में हुई थी और 1600 ई० में महारानी एलिजाबेथ ने कंपनी के व्यापारियों को लंदन से पूर्वी भारत में व्यापार हेतु अधिकार प्रदान किया। ये अंग्रेज व्यापारी भारत में पुर्तगाली एवं डच लोगों को मसाले के व्यापार में परास्त करना चाहते थे।''[1] बगाल में कंपनी एवं नवाबो के गलत शासन एवं दुर्भिक्ष के कारण विनाश लीला छायी हुई थी। पुर्तगाली, डेन, डच, फ्रेन्च और अंग्रेजों के रूप में - विदेशी शक्तियां इसी ताक मे थीं कि कब मौका मिले और वे भारत की राजनैतिक शक्ति को तोड़ सकें। इस कृत्य मे अंग्रेजों ने सफलता पाई उन्होंने सैन्य घुसपैठ के जरिए यहाँ अपने लिए स्थान सुरक्षित किया ताकि वे वर्तमान परिस्थिति का सर्वोत्तम लाभ ले सकें और यन्त्रणा देने वाले लंबे, साम्राज्यवादी शासन को लागू कर सकें।[2] इस काल खण्ड में हिन्दू- इस्लामी समन्वय की सांस्कृतिक धारा बन्द हो गई, किन्तु उनके अन्वेषण और पुनर्मूल्यांकन का नया युग भी शुरु हूआ। यद्यपि इस देश के जनजीवन को आंग्ल सभ्यता प्रभावित करने में सफल न हो सकी

---

1 इण्डिया आर्ट एण्ड कल्चर 1300-1900, ले० स्टुअर्ट कैरीवेल्च, पृष्ठ स०-419

2 पैनोरमा ऑफ इण्डियन पेन्टिग, निबन्ध- मार्डन इन्डियन पेन्टिग निबन्धकार- बी० सी० सान्याल, पृष्ठ स०-29

फिर भी अंग्रेज विद्वानों के सम्पर्क से परम्परागत भारतीय सस्कृति और कला की खोज एवं समीक्षात्मक अध्ययन की शुरूआत इसी युग में हुई। पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से भारतीयो का ससार की यांत्रिक एवं भौतिक प्रगति से परिचय हुआ तथा इसके दुष्परिणाम भी सामने आये। अंग्रेजों की नई शिक्षा की व्यवस्था ने विद्यार्थी को अतीत से काट दिया। अतीत के नाम पर अधकचरी अपग संस्कृति का नया रुप सामने आया। अच्छा रहा कि राष्ट्रभक्त भारतीयो एवं कर्णधारों ने अंग्रेजो की सांस्कृतिक उत्थान की आड़ में छिपे राजनीतिक अस्त्र को भाँप कर उसे निष्प्रभ एवं निष्क्रिय बना दिया। उन्होने भारतीय धर्म तथा संस्कृति के पुनरूत्थान हेतु ब्रह्म समाज, आर्य समाज इत्यादि नये अभियानों द्वारा जनता को उद्बोधित किया। राजा, राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक आदि भारतीय संस्कृति के आधुनिक युग के संरक्षक तथा प्रवर्तक थे। इन सबके मूल में राष्ट्रपिता महात्मा गाधी इनके प्रेरणास्रोत थे।

आधुनिक भारत के धार्मिक एवं सांस्कृतिक नव जागरण में राजनीतिज्ञो और बुद्धिजीवियों के साथ साथ कलाकारों का समान योगदान रहा है। इन सभी के एक स्वर ने मिलकर राष्ट्रीय स्वाधीनता की मशाल जलाई और ऐसी अनुकूल परिस्थितियो का वातावरण बनाया जिससे आज के भारत का निर्माण सम्भव हो सका।[1]

मुगलों एवं अग्रेज दोनो की दासता को भारत वर्ष ने झेला है। किन्तु दोनों में अन्तर था। मुगलों ने अपने शासन एव प्रभुत्व के स्थायित्व हेतु भारतीय परम्परा को कायम रखते हुए धार्मिक प्रभाव पर बल दिया। जबकि अंग्रेजों का तो लक्ष्य ही समस्त भारतीय सामाजिक जीवन को अशक्त बना कर अपने निरंकुश स्वामित्व को स्थापित करना था। अपने लक्ष्य की कामयाबी हेतु अंग्रेजों ने भारतीयों में धार्मिक विषमता का बीज बोया।

अठारहवीं शती के आरम्भ से सती प्रथा (1829ई०) गुलामों के व्यापार की प्रथा (1843 ई०), सामाजिक न्याय तथा समानता (1860 ई०) पुनर्विवाह (1856ई०) और अन्तर्जातीय विवाह (1865 ई०) हेतु जो नियम बनाये गये उनके मूल में राष्ट्रभक्त भारतीयों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उपरोक्त आन्दोलनों ने मिलकर एक नई चेतना को जन्म दिया कि

---

1 भारतीय सस्कृति और कला, लेखक :- वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स०- 58-59

प्रत्येक भारतीय स्वाधीनता के संकल्प को पूरा करने के लिए त्याग एवं समर्पण की भावना रखे।[1]

कला कभी भी तरक्की नहीं कर सकती यदि जीवन अस्थिर हो तो। 18 वीं शताब्दी के राजनीतिक उतार चढाव एवं अस्थिरता के दौर में भारतीय कलाएं पतन की ओर जाने लगीं। वे पुरानी कलाकृतियों की नकल मात्र होकर रह गई। कला इतिहास मे अनुपम भारतीय शिल्प, भित्ति चित्रण की तकनीक, और लघु चित्रण की परम्परायें खोने लगीं।

प्रारम्भिक ब्रिटिश शासन के दौरान कुछ भारतीय लोक कला परम्परायें अवश्य अपनी मौलिकता के साथ जीवित थीं परन्तु बाद मे यूरोपीय तैल चित्रण पद्धति के आने से ये भी चलन से बाहर होने लगी। पूर्व एवं पश्चिम की कला संस्कृतियो मे द्वन्द प्रारम्भ होकर यूरोप की निम्नस्तरीय कला ने भारत मे अपना रास्ता तैयार किया। अंग्रेज एवं पुर्तगालियो के 18 वी शताब्दी मे भारत आगमन के साथ ही पश्चिमी चित्रशैली भी यहाँ विस्तार पाती गई।[2]

पश्चिम एवं पूर्व के बेमेल संस्करण से उपजी **कम्पनी शैली** को यहॉ काफी प्रचारित किया गया। अंग्रेजी सरकार कुशल भारतीय चित्रकारों से पाश्चात्य नैसर्गिकता-वादी शैली के व्यक्तिचित्र, निजी परिवार के सामूहिक चित्र व स्थानीय दृश्य चित्र बनवाने लगे। ठेठ भारतीय जलरंगो के स्थान पर तैलरंग तथा पेस्टल रंगो का प्रयोग किया जाने लगा।[3]

1834 के आस-पास मैकाले के आंग्ल शिक्षा सम्बन्धी विचारों के चलते अधिकाश भारतीय अपनी कला, संस्कृति तथा सामाजिक विचार धारा को त्याग कर ब्रिटिशो का अन्धानुकरण करने लगे और यही सब प्रतिष्ठा का विषय माना जाने लगा। कला क्षेत्र मे विक्टोरियन नैसर्गिकता वादी कलाकृतियो को श्रेष्ठ माना जाने लगा। फलस्वरूप 19 वी शताब्दी के मध्य मे अग्रेजों ने भारत में कला विद्यालयों की शुरूआत की ताकि भारतीय चित्रकारो को भी पूरी तरह पाश्चात्य ढंग से प्रशिक्षित किया जा सके। मद्रास (1850),

---

1 भारतीय सस्कृति और कला, ले०0 वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स०- 588

2 पैनोरमा, ऑफ इन्डियन पेन्टिग, निबन्ध- मार्डन इन्डियन पेन्टिग, निबन्धकार- ब०सी० सान्याल पृष्ठ स०-29-30

3 आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, ले०-डा० प्रेमचन्द्र गोस्वामी, पृष्ठ स०-1

कलकत्ता (1854), मुम्बई (1857) मे ये कला विद्यालय सबसे पहले खोले गये। बाद मे लाहौर (1875), लखनऊ (1911) जयपुर आदि में भी इन कला विद्यालयों को व्यवस्थित रूप दिया गया।

ऐसे माहौल में राजा **रविवर्मा** पहले कलाकार थे जिन्होंने थियोडोर जेन्सन नामक अंग्रेज चित्रकार से पाश्चात्य तैल रंग चित्रण पद्धिति की शिक्षा प्राप्त की और इस माध्यम को भारतीय जीवन एवं पुराकथाओं से जोडा। इनके द्वारा निर्मित चित्र नैसर्गिकता की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। राजा रविवर्मा के पौराणिक विषयों के चित्र अत्यन्त लोकप्रिय हुए किन्तु पाश्चात्य चित्रण पद्धति भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति व जीवन दर्शन के अनुकूल नहीं थी। अत: रविवर्मा के चित्र अभिव्यक्ति के विचार से सराहे नहीं जा सके।[1] बगाल शैली के जोशीले समर्थक राजा रविवर्मा द्वरा स्थापित परम्परा को पतनशील मानते थे। (हालाँकि पिछले एक डेढ़ दशक से रविवर्मा के तैल चित्रो का पुनर्मूल्याकन शुरू हुआ है)।[2]

पुनरुत्थान शैली :- अंग्रेजों द्वारा खोले गये कला विद्यालयों में लन्दन की रायल अकादमी ऑफ आर्ट की तर्ज पर जो कला शिक्षा दी जा रही थी उस स्थिति में भारतीय कला के पक्षधर, शुभचिन्तक, कलाकार एव विचारक अत्यन्त विचलित हुए। फलस्वरूप उन्होंने विचार किया कि ऐसा आन्दोलन चलाया जाय जिससे कला क्षेत्र में लोप हो रही भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की रक्षा की जा सके। उक्त कला आन्दोलन को पुनर्जागरण की कला शैली या पुनरुत्थान शैली के नाम से जाना गया। उद्‌गम स्थल बंगाल होने से इसे बगाल शैली नाम भी दिया गया।

जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया है कि भारतीय परम्परा, संस्कृति, इतिहास एवं सभ्यता के नष्ट होने का खतरा कला के अतिरिक्त शैक्षिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी अनुभव किया गया। अत: हर तरफ से उसकी रक्षा हेतु, प्रयास किये जाने लगे। राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म-समाज' के माध्यम से उपनिषदो में व्यक्त भारतीय विचारों की स्थापना की और

---

1 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, ले०- रा० वि० सारवलकर, पृष्ठ स०- 341

2 कला चित्रकला, ले०- विनोद भारद्वाज, पृष्ठ स०-7

रूढिग्रस्त समाज को रास्ता दिखाने का कठिन प्रयास किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, मधुदत्त, केशवचन्द्र सेन व बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि ने शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में भारतीय परम्पराओं की पुर्नस्थापना का प्रयास किया। एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, इण्डियन एसोसिएशन (1876), नेशनल कांफ्रेस (1883), इण्डियन नेशनल कांग्रेस (1885) आदि संस्थाओं की स्थापना की गई जिनके माध्यम से राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रो में नई चेतना जागृत हुई। उपरोक्त संस्थाओ से कुछ उदारवादी अंग्रेज भी जुड़े जिन्होंने भारतीय दर्शन, इतिहास, संस्कृति तथा भा० प्राचीन सम्पदा का अध्ययन किया। ये अंग्रेज भारत की वास्तविक पहचान में दिलचस्पी रखते थे। कला क्षेत्र में भारत की नवीन पहचान का प्रयास ब्रितानी कला विद्वान ई० वी० हैवेल ने किया। 19वीं शताब्दी के अंत मे स्वदेशी आदोलन के साथ ही प्राचीन वैभव की ताजी होती स्मृतियो में चित्रकार हैवेल एवं अवीनन्द्र नाथ टैगोर ने अपने अनेक शिष्यों के साथ अजंता शैली की पुर्नस्थापना का प्रयत्न किया और इसे राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया।[1]

हैवेल ने स्पष्ट किया कि "**भारतीय कला ने हमेशा ही सर्वव्याप्त शाश्वत तत्त्वों को अपने सामने आदर्श रूप में रखा है।**" अपने इस विचार को सर्वोपरि रखते हुए उन्होने कलकत्ता कला विद्यालय की अध्ययन प्रणाली में प्राचीन ग्रीक एवं यूरोपीय मूर्तियो की अनुकृति बंद कराई तथा "भारतीय मूर्तिकला व चित्रकला" नामक पुस्तक में अपने (उपरोक्त रेखांकित) विचारों को प्रकाशित करवाया।[2]

पुनरुत्थान शैली के प्रमुख चित्रकार थे- अवनीन्द्र नाथ टैगोर, गगनेन्द्र नाथ टैगोर, नन्दलाल बोस, असीत कुमार हल्दार, क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, देवी प्रसाद राय चौधरी, यामिनी राय, अब्दुर्रहमान चुगतई, ईश्वरी प्रसाद, शैलेन्द्र नाथ डे, शारदाचरण उकील, आदि।

अवनीन्द्र नाथ ठाकुर एक समर्थ चित्रकार, दक्ष कलागुरू तथा कल्पना शील साहित्यकार थे।

---

1 चित्रकला और समाज, ले०- भाऊ समर्थ, पृष्ठ स०-62

2 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, ले०- रा० वी० साखलकर, पृष्ठ स०- 32

नन्दलाल बोस गांधी जी एव रवीन्द्र नाथ टैगोर से अत्यन्त प्रभावित थे। उनके सृजन मे राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की प्रतिध्वनि के साथ स्वदेशी के लिए संघर्ष की धमक भी सुनाई देती हैं। अतिरिक्त इसके नन्द बाबू ने भारतीय इतिहास पुराण आदि पर आधारित चित्रों का भी निर्माण किया है।

गगनेन्द्र नाथ टैगोर को कला संस्कार विरासत मे मिले थे। चित्रकार होने के साथ वह कुशल व्यगचित्रकार भी थे। उन्होने तत्कालीन भारतीय समाज की कुरीतियों, प्रचलित अतिवादी धारणाओ एवं अंग्रेजी हूकूमत की नीति पर अनेकों व्यंगचित्र बनाये।

चित्रकार असीत कुमार हल्दार श्रेष्ठ भारतीय वातावरण में पले बढ़े थे। उन्होने ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगो पर अनेक चित्र बनाये और भारतीयता के रंग में रंगी व्यापक कला दृष्टि को विस्तार दिया।

क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार आध्यात्मिक भावना से भरे हुए थे। उनकी कला में भारतीय धार्मिक तत्त्व विशिष्ट हैं।

यामिनी राय ने अपनी कला में लोक प्रतीकों को प्रमुखता के साथ उभारा और बंगाल की पट-चित्रकला को स्वाभाविक काल्पनिक रूपकारों से सुसज्जित कर उसे लोकप्रिय बनाया।

1902 में जापानी कलाकार 'हिसिदा' व 'ताइक्वान' के कलकत्ता आगमन से अवनी बाबू ने जापानी ढंग की कोमल रंग संगति को अपनाया व आकारों को सूचक रूप में स्पष्ट अंकित करना शुरू किया। यह पद्धति बंगाल शैली में अधिकांश चित्रकारों द्वारा अपनाई गई।

1905 मे ई० वी० हैवेल के स्थान पर अवनीन्द्र नाथ टैगोर कलकत्ता कला विद्यालय के आचार्य पद पर नियुक्त हुए। इनके शिष्यों में नन्दलाल बोस (शान्ति निकेतन), देवी प्रसाद राय चौधरी (मद्रास), समरेन्द्र नाथ गुप्त (लाहौर), असीतकुमार हल्दार (लखनऊ), क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार (इलाहाबाद), वेकटप्पा (मैसूर) पुलिनबिहारी दत्त (मुम्बई) मुकुल डे मनीषी डे, एवं शारदाचरण उकील (दिल्ली) शैलेन्द्र नाथ डे (जयपुर) सुधीर खास्तगीर (लखनऊ) आदि ने उपरोक्त स्थानों के कला विद्यालयों में पुनरुत्थान शैली का काफी प्रसार किया।

पुनरुत्थान शैली के घोषणापत्र के रूप मे 1913 मे **आनन्द कुमार स्वामी** की पुस्तक **'कला और स्वदेशी'** प्रकाशित हुई। इसमें उन्होने कहा कि — भारत मे कला विद्यालयो का सच्चा कार्य यूरोपियन तरीकों एवं आदर्शो का प्रचार करना नही है अपितु भारतीय परम्परा के टूटे हुए सम्पर्क सूत्रो को बटोरना तथा उन्हें शक्तिशाली बनाना है। राष्ट्रीय सस्कृति के अभिन्न अग के रूप में जनगण के जीवन तथा चिन्तन के अनुरूप ढालना है।[1]

1907 में कलकत्ता में स्थापित हुई इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट मे भी भारतीयता के हिमायतियों ने भारतीय कला परम्परा को पुष्ट करने का बीडा उठाया। इसी समय भारत के अन्य क्षेत्रों में भी कुछ कलाकार भारतीय कला के विकास में अपनी अहम भूमिका निभा रहे थे जैसे — इन्दौर में दत्तात्रेय दामोदर देवलालीकर पंजाब में एस० जी० ठाकुर तथा शोभासिह, गुजरात मे रविशकर रावल, राजस्थान में रामगोपाल विजयवर्गीय एवं गोवर्धन जोशी, उत्तर प्रदेश में जगन्नाथ मुरलीधर अहिवासी, बी०सी० गुई, असम मे भवेश सान्याल, श्रीलंका में जार्जकीट, केरल में के० सी० एस० पणिक्कर आदि।

आधुनिक चेतना में पुनरुत्थान शैली की अपर्याप्तता:- पुनरुत्थान शैली के प्रणेता एव प्रवर्तक श्री अवनीन्द्र नाठ ठाकुर की प्रारम्भिक कला शिक्षा कलकत्ता कला विद्यालय मे यूरोपीय पद्धति से हुई थी किन्तु सभी जानते है कि उनकी कोमल संवेदनाएं मानव अस्थिपजर का एनाटमी के नाम पर रेखांकन करने के लिए कतई राजी नही थी। यही कारण था कि वे अकादमिक कला प्रशिक्षण के विरुद्ध थे।[2] 1896 में हैवेल के कलकत्ता आने पर उनके विचारो से प्रभावित होकर उन्होंने अजंता एव मुगल शैली का अनुकरण शुरू किया। छाया प्रकाश के स्थान पर बारीक बाह्य रेखा से एवं समतल रंगो से आकारों को चित्रित किया। अतिरिक्त इसके उनकी चित्र शैली में पुनरूत्थान एव स्वदेशी का भाव इतना प्रबल था कि वे प्राचीन कला शैलियों की आत्मा तक न पहुँच सके। आगे चलकर तकनीकी क्षेत्र में कुछ सीमायें भी आड़े आई किन्तु इसके कारण थे। अवनी बाबू की प्रारम्भिक शिक्षा प्राचीन

---

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, ले०- डा० प्रेमचन्द्र गोस्वामी पृष्ठ स०-4

2 मार्डन आर्ट इन इण्डिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ स०- 13

रूढ़िबद्ध कला निर्मिति के अनुकूल नहीं थी। इसके लिए परम्परागत नियमों का गहन अध्ययन, पालन और लम्बी साधना आवश्यक थे। इन नियमों के अभाव में अवनी बाबू के चित्रो मे रेखा की वह सामर्थ्य एवं रंगों की मोहकता नहीं आ पाई जो प्राचीन भारतीय कला शैलियों की विशेषता रही है। एक प्रमुख कारण ये भी था कि पुनरुत्थान शैली के कलाकार प्राचीन कला शैलियों से वाञ्छित भावनात्मक तादात्म्य नहीं स्थापित कर पाये। चूँकि प्रत्येक महान कला शैली अपने समय के साथ चलती है और वही समय उसे कार्यात्मक अस्तित्व प्रदान करता है, जिसे भिन्न वातावरण या भिन्न समय में फिर से प्राप्त करना असंभव होता है। सही भी है किसी भी कला शैली में प्राचीन कला शैली प्रेरणा तो बन सकती है किन्तु, यही प्रेरणा जब साध्य बन बैठे तो प्रेरणा पाने वाली शैली के लिए अपना अस्तित्व कायम रख पाना बहुत मुश्किल होता है। ब्रिटिश शासन काल में विदेशी विचार धाराओ से समाज मे भारतीय धर्म, इतिहास दर्शन आदि के प्रति आस्था धूमिल पड़ चुकी थी। ऐसे समय मे पुनरूत्थान शैली ने धार्मिक ऐतिहासिक विषयवस्तु के बजाय जनजीवन की जीवन्तता को चित्रित करने का प्रयास किया होता तो शायद ज़्यादा सफलता मिलती।[1] राजनैतिक प्रेरणा देने वाले अधिकांश विषयो को भी पुनरुत्थान शैली मे नजर अंदाज किया गया। हालाँकि नन्दलाल बोस, यामिनी राय आदि कलाकारों ने इस दिशा में काम किया है किन्तु इतना ही पर्याप्त नही था।[2] सत्य तो यह है कि समकालीन परिस्थिति को जाने समझे बगैर सजीव कला का निर्माण एवं उसके लिए आवश्यक भावनात्मक तादात्म्य स्थापित करना असंभव है।

आधुनिक कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण कलात्मक गुण जैसे - **आकारों का सरलीकरण, वस्तु निरपेक्षता, चमकदार शुद्ध रंग, प्रतीकात्मकता** एव **प्रभावित करने वाले संयोजन** - इनकी प्राचीनकला शैलियों में बहुतायत है किन्तु, पुनरुत्थान शैली में इन गुणों का अभाव था। इन्ही कुछ कारणों से बंगाल शैली या पुनरुत्थान शैली समकालीन आधुनिक चेतना के लिए अपर्याप्त सिद्ध हो गई। **डा० आनन्द कुमार स्वामी** ने इसकी कमजोर रेखा एवं निस्तेज रगों पर असंतोष व्यक्ति किया है।तो **ओ० सी० गांगुली** ने निष्कर्ष

---

1 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, ले०- रा०वी० साखलकर, पृष्ठ स०- 342-343

2 चित्रकला और समाज, ले०- भाऊ समर्थ, पृष्ठ स०- 62

निकाला कि **पुनरूत्थान शैली का जन्म बौद्धिक विचार एवं स्वदेश प्रेम में हुआ इसी कारण उसमें स्वाभाविकता व सहज ज्ञान नहीं है।**[1]

किन्तु 1994-95 मे राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, नई दिल्ली मे 'आधुनिक भारतीय कला के सौ साल' प्रदर्शनी, जिसकी क्यूरेटर गीता कपूर थीं आयोजित की गई। इस प्रदर्शनी, में श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के चित्रों को देखकर अपने समय के प्रगतिशील चित्रकार 'कृष्ण खन्ना' ने स्वीकारा कि "अवनी बाबू की उपलब्धियों का अपना एक अलग स्थान है।"

चालीस के दशक में जिस पुनरुत्थान शैली के चित्रों को भावनात्मक कहकर अप्रासंगिक करार दिया गया था आज उसी शैली के प्रणेता अवनी बाबू की महीन एव कोमल संवेदनाओ से गणेश पाइन से लेकर नीलिमा शेख तक के समकालीन चित्रो मे एक सार्थक सवाद दिखाई देता है।[2]

नवीन चेतना एवं प्रयोगवादी कला

तत्कालीन चेतना हेतु अपर्याप्त बंगाल स्कूल से निकलकर अनेको चित्रकार भारत के अनेक क्षेत्रो मे स्थापित शैक्षणिक पदो पर पहुँचे और कला का विकास करने लगे इसी समय संचार माध्यमों के विकास, फ्रांस और यूरोप मे पनप रहे नये-नये कलावाद अन्तर्राष्ट्रीय वैचारिक आदान प्रदान आदि से लोग पेरिस जैसे कला केन्द्रो की तरफ आकर्षित होने लगे। बम्बई में जे० जे० स्कूल ऑफ आर्टस् एवं **प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप** की स्थापना, दिल्ली मे **शिल्पी चक्र** तथा भारत के सभी प्रदेशों में कला महाविद्यालयों एवं कला संस्थाओ की स्थापना के कारण आधुनिक प्रगोगवादी चित्रकला के प्रति कलाकारों का आकर्षण बढ़ा और राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत पुनरुत्थान शैली के प्रति लोगों का रुझान कम हुआ। कला व्यक्तिवादी होती चली गई और उसका परिवेश अन्तर्राष्ट्रीय हो गया। रूप निरपेक्षता का भाव

---

1 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृष्ठ स०- 343

2 कला चित्रकला, ले० विनोद भारद्वाज, पृष्ठ स०-7-8

कला में बढा। कला को सार्वदेशिक और सार्वभौमिक समझने वालो का समुदाय पनपता चला गया। बंगाल शैली के प्रति कलाकार एवं कलाप्रेमी दोनो ही उदासीन हो गये।

इस प्रकार 1940 के दशक मे कलकत्ता और बम्बई में प्रोग्रेसिव कलाकार एक नई सामाजिक प्रतिबद्धता और अन्तर्राष्ट्रीयता की बात करने लगे। यहाॅ पर यह याद रखने योग्य है कि 1920 के बाद रवीन्द्र नाथ ठाकुर, गगनेन्द्र नाथ ठाकुर, अमृता शेरगिल, विनोद बिहारी मुखर्जी यामिनी राय, सुधीर खास्तगीर और रामकिंकर सरीखे कलाकारों ने प्रोग्रेसिव ग्रुप के नारो एवं स्वतत्रता से पूर्व ही बंगाल स्कूल की रोमानियत एवं संवेदनात्मक नजरिये को अपने अन्वेषी एवं प्रयोगधर्मी विचारों के चलते लगभग अप्रासगिक कहकर नकार दिया था। उपरोक्त कलाकारों ने शान्तिनिकेतन में भी एक खास तरह का कला-वातावरण बनाया जिसमें आज के अनेक महत्वपूर्ण आधुनिक कलाकार प्रशिक्षित हुए है।

1923 व 1928 के मध्य गगनेन्द्र नाथ टैगोर ने घनवाद से प्रभावित होकर कुछ चित्र निर्मित किये किन्तु पाश्चात्य घनवाद के जन्म में जो उद्देश्य निहित थे वैसे प्रयोगो के लिए भारत में कोई गुजाइश उस वक्त न थी। फलस्वरूप कथानक पर आधारित साहित्यिक विषय वस्तु एवं घनवादी तकनीक से मिलकर उनके चित्र स्वप्निल हो गये। यही कारण है कि उनके चित्रों को धनवाद के बजाय रोमांचक यथार्थवादी कहना ज्यादा उचित प्रतीत होता है।[1] मध्यकालीन चित्रकार मोलाराम की 1833 मे मृत्यु के बाद से चित्रों पर हस्ताक्षर करने की प्रथा प्रारम्भ हो जाती है। अत: स्पष्ट है कि तभी से कला समूह से हटकर व्यक्तिगत प्रयास की ओर अग्रसर हुई। रवीन्द्र नाथ टैगोर, यामिनी राय आदि ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने तत्कालीन कला की सम्पूर्ण धारा को निकाल बाहर नहीं किया बल्कि प्रत्येक ने कुछ अलग, कुछ नया और नितान्त व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करके सम्पूर्ण विश्व के साथ सुर में सुर मिलाने का प्रयास किया।

प्रेरणा के मूल स्रोतो के लिए उनकी तलाश उन्हें आदिम और लोक कला की खोज की तरफ ले गई जिसे कोई भी आधुनिक चित्रकार छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकता। आदिम एव लोक कलाओं के रूप एव कल्पना के प्रति आकर्षित होकर इन कलाकारों ने सशक्त

---

1 चित्रकला और समाज ले०- भाऊ समर्थ, पृष्ठ स० 62

अभिव्यक्ति हेतु खिलौनों एवं गुडियों की ओर रूख किया। पटुआ चित्रों में प्रतीक और सरलीकरण को खोजा। पिकासो जैसी मुखाकृतियों को चुना और अन्तराल को महत्व प्रदान करने के लिए सपाट रगो का इस्तेमाल किया।[1]

अपनी बाद की रचनाओं में अवनी बाबू ने भी प्रयोग एवं खोज के महत्व को स्वाकारते हुए पेड़ की सूखी टहनियों, जड़ों लोहे के हूक, जंक लगे कीले, बेकार खिलौने को प्रयोग में लाकर रचनायें की हैं। ये वस्तुए उनकी परिपक्वता में सहायक सिद्ध हुई और उनके रुपाकार लम्बे समय तक कोमल रंगो से ढँके न रह सके बल्कि दृढ़ता और मौलिकता के साथ सामने आये। एक समय आया जब अवनी बाबू के विशेष गुणी शिष्य नन्द बाबू भी मिथकीय संयोजनों से बाहर निकले और नये लक्ष्य की तरफ रुख किया जिससे दबे अनुभवो को दृश्य अर्थ मिला।[2]

नव कलाकार एवं आन्दोलन :- द्वितीय विश्वयुद्ध के समापन के प्रगति के विचार से भारत के बडे शहरो में नवकलाकार प्रयत्नशील हुए। 1947 के बाद आधुनिक दृष्टि से सम्पन्न रचनात्मकता की सभावना लिए हुए चित्रकारो का जो समूह उभरा वह यहॉ की कला को नया मोड देने वाला सिद्ध हुआ। इसमें फ्रांसिस न्यूटन सूजा मकबूल फिदा हुसैन, के० एच० आरा वारे, गोदे, एव एस० एच० रजा के नाम विशेष रूप से लिए जा सकते हैं। इन्हीं कलाकारों ने मिलकर बम्बई में 1948 में प्रगतिशील कलाकार दल की स्थापना की। इस दल ने मुख्यत: पश्चिमी कला शैलियो से प्रेरणा ली और तैल माध्यम का प्रयोग किया। इन कलाकारो ने जहॉ एक ओर मातिस, पिकासो, गांग्विन तथा क्ली आदि से प्रेरणा ली तो दूसरी ओर गुजराती, लघुचित्र को आधार बनाकर रुप योजना विकसित की। उन्होंने कथककली, नृत्य आदिवासी मुखौटे, लोक प्रचलित खिलौने, कालीघाट के बाजार में बिकने वाले पटचित्र, मन्दिरों की मूर्तिकला एवं शास्त्रीय संगीत को भी अपनी प्रेरणा का आधार बनाया।[3]

---

1 माडर्न आर्ट इन इण्डिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ स०- 11

2 माडर्न आर्ट इन इण्डिया, ले०- अजीत मुखर्जी, पृष्ठ स०- 14

3 आधुनिक भारतीय चित्रकला, ले०- डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ स०-5

प्रगतिशील कलाकार दल के दूसरे चरण के कलाकारों मे कृष्ण खन्ना वी० एस० गायतोडे, मोहन सामंत, तथा तैयब मेहता आदि ने उक्त समूह से सम्बद्ध होकर स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय कला को एक मजबूत धरातल प्रदान किया।

बम्बई के समानान्तर ही दिल्ली में 1947 में शिल्पी चक्र की स्थापना हुई। इसके प्रमुख सदस्य थे भवेश सान्याल, कंवल कृष्ण, के० एस० कुलकर्णी, जया अप्पासामी, रामकुमार आदि।

इसी के साथ मद्रास एवं कश्मीर में भी प्रगतिशील कलाकार मण्डलों की स्थापना हुई।

1943 में कलाकारों के कलकत्ता ग्रुप का भी उदय हुआ। इसमें गोपाल घोष. प्राणकृष्णपाल, सुनील माधव सेन, नीरद मजुमदार, रथिन मित्रा, परितोष सेन, हेमन्त मिश्र तथा मूर्तिकार प्रदोष दास गुप्ता आदि शामिल थे। इस दल ने व्यक्तिवाद, कला के स्वातन्त्र्य और अन्तर्राष्ट्रीयता का स्वर उठाया था इनका कथन था, " **व्यक्ति सर्वोपरि है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं है .. कला अन्तर्राष्ट्रीय एवं स्वयं पर आश्रित होनी चाहिए।**"[1]

वर्ष 1947 के करीब दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें भारतीय कलाकारो को पहली बार स्वतंत्र देशों के कलाकारों की कृतियाँ देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

केन्द्रीय ललित कला अकादमी का गठन एवं विभिन्न राज्यों में कला अकादमियो और कला संस्थाओं की स्थापना सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं द्वारा कला स्तम्भो की शुरूआत-वर्ष 1968 से अन्तर्राष्ट्रीय त्रैवार्षिकी कला प्रदर्शनी त्रिनाले का प्रारम्भ, केन्द्र व राज्य स्तर पर कलाकारों में पुरस्कारों का वितरण आदि से भारतीय कला जगत में सक्रियता एव कला के प्रति लोगो का रुझान बढ़ा। गत वर्षो में भारतीय कला जगत से अनेकों समर्थ कलाकार जुडते रहे हैं और हर कलाकार अपने साथ आधुनिक कला की एक

---

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला, ले०- डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ स०-157

नई शैली को लेकर प्रकट होता रहा है। हर कलाकार का अपना माध्यम है, प्रयोग की अपनी प्रक्रिया है।

आधुनिक भारतीय कलाकृतियों में हमें सशक्त रग प्रयोग, नवीन तूलिका संघात, रूपाकार, मुद्राएँ तथा विघटित आकृतियाँ दिखती हैं। भारतीय कलाकारों के चित्र आदमी के सन्दर्भो और उसकी समस्याओ से भी सम्बद्ध है साथ ही आधुनिक जीवन के तनावो तथा विरोधाभासों को भी इंगित करते है। ये चित्र दर्शकों में करूणा उत्पन्न करने के साथ उन्हें प्रेरणा भी देते है।

ए० ए० आलमेलकर व रसिक रावल ने समकालीन जीवन से विषयों को चुनकर चित्रण किया और उनकी आकृतियाँ परम्परागत भारतीय रेखात्मक शैली के आधुनिक रूप है। इन कलाकारों ने जलरंगों को चित्रण हेतु प्राथमिकता दी। आलमेलकर ने अक्सर गत्ते पर पहले पतले रंगों एवं बाद में सूखे चमकीले रंगों मे चित्रण किया है रसिक रावल प्रथम पतले व पारदर्शक भिन्न रगों को एक साथ बहाकर पार्श्वभूमि को वस्तुनिरपेक्ष रूप देते व उस पर बारीक रेखा से आकृतियों को समतल रंगों में चित्रित करते थे।

हुसैन व बद्री नारायण की कला के प्रमुख प्रेरणास्त्रोत लोककला व खिलौनाकारी हैं लोक कला के सरलीकृत आकारों के साथ ही हुसैन पिकासो की भाँति रंगों की मोटी परतों पर स्पष्ट बाह्य रेखा खीचकर आरम्भिक (यूरोपीय) विश्लेषणात्मक घनवाद का प्रयोग करते हैं किन्तु यह प्रयोग इस भॉति है कि उनके चित्रों के विषय को हानि नहीं पहुँचती।

बद्री नारायण मोटी बाह्य रेखा से सरल आकारों को चित्रित करते हुए अपने चित्रों को बाइजेन्टाइन पच्चीकारी कला के निकट ले जाते हैं।

विनोद विहारी मुखर्जी की शैली में भारतीय कला का रेखा कौशल व गोथिक कला के सरल रूपाकारों का मिश्रण होने से वह भित्ति चित्रण के लिए सर्वथा उपयुक्त मानी गई।[1]

---

1 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, ले०- रा० वी० साखलकर, पृष्ठ स०- 353-354

चमत्कृति हेतु जे राम पटेल जैसे कलाकार लकड़ी जलाकर उसमें छेदो के द्वारा आकार निर्माण करते है।

कुछ कलाकार ऋचा श्लोक, धार्मिक-तात्रिक लोक प्रतीको और अक्षरों को भी कैनवस पर उतारने में लगे है। पलसीकर, बर्वे स्वामीनाथन, समर भौमिक, आदि कलाकारो का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान है।[1] हलाँकि पिछले पृष्ठों में वर्णित चित्रकारों के कार्य काफी हद तक पाश्चात्य आधुनिक कला से प्रभावित हैं किन्तु फिर भी जिस तरह से कलाकारों ने काम शुरू किया है वह सकारात्मक दिशा में ले जाने वाला है। हम देखते हैं कि समय-समय पर भारतीय चित्रकारो ने अपनी मौलिक सृजन प्रतिभा एवं भारतीय सरजमी से प्रेरणा के स्रोत ढूँढकर आधुनिक भारतीय चित्रकला को विकसित करने मे स्वय को समर्पित किया है। निश्चय ही यह प्रवृत्ति कला विकास में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी।

---

1 चित्रकला और समाज, ले०- भाऊ समर्थ, पृष्ठ स०- 69

अध्याय-3

मध्यकालीन चित्रकला एवं आधुनिक चित्रकला में अन्तर

आधुनिक चित्रकला का प्रारम्भ परम्परागत मध्यकालीन चित्रकला से उबरने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता है। यह बात और है कि आधुनिक भारतीय चित्रकला को लेकर इसके प्रारम्भ को लेकर, इसकी शुद्धता को लेकर आज तक कोई एक मत नहीं बन सका है, और यह भी निश्चित तौर पर कह पाना कठिन है कि मध्यकालीन सामाजिक परिवेश से तुरंत-तुरंत उबरा भारतीय समाज और तत्कालीन आधुनिक युगीन भारतीय कला वास्तव में भारतीय आधुनिक कला थी। इस बात को आगे के पृष्ठो पर क्रमशः स्पष्ट करने का प्रयास जारी है। चूंकि मध्यकालीन चित्रकला शैलियाँ भारतीय परम्परागत चित्रकला की अद्वितीय धरोहर है और जहाँ तक उनके स्थायित्व की बात है वे तकरीबन एक हजार वर्ष तक अनवरत सफलता पूर्वक देश के विभिन्न स्थानों पर फलती-फूलती रही हैं और आज विश्व भर में अपने अनूठे सौन्दर्य के साथ ख्यात है।

इस सन्दर्भ मे सीताकांत महापात्र का यह कथन है कि ''परंपरा एक गीत है जो मस्तिष्क में अनुगूँजे भरता है, अदृश्य पुलों के ज़रिये अतीत को वर्तमान से जोड़ता है और प्रायः व्यक्ति के चित्त व सामाजिक ढाँचे को स्थिरता प्रदान करता है।''

और भी

''सांस्कृतिक परिवर्तन के गतिविज्ञान मे नव्यता का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना निरंतरता व परंपरा का।''[१]

इन विचारों को आधार मानकर मध्यकालीन चित्रकला से आगे आधुनिक चित्रकला मे क्या परिवर्तन हुए, आधुनिक चित्रकला मध्यकालीन चित्रकला से कितनी भिन्न है, इनमें परस्पर क्या अन्तर है, यह जानना आम व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक है साथ ही कला के विस्तार की दृष्टि से भी एवं अग्रगामी अध्ययन को ध्यान में रखते हुए भी।-

---

1 पुस्तक - कला, समय और समाज, सम्पादक - प्रयाग शुक्ल, निबध—परम्परा और कलाकार,

भारत में चित्रकला का जन्म प्रागैतिहासिक कालीन गुफा चित्रों में माना जाता है। प्रागैतिहासिक मानव ने किस प्रकार अपनी संस्कृति सभ्यता और अपने भावों का विकास इन चित्रो में प्रदर्शित किया है इनके अनेक तथ्य उद्घटित होकर सामने आ चुके हैं। ये चित्र ''मध्य प्रदेश के आदमगढ, रायगढ़, बिहार के चक्रधर पुर सिंहनपुर, होशंगाबाद और मिर्जापुर के लिखुनिया, कोहर तथा भलडरिया आदि स्थानों में प्राप्त हुए है। श्री असीत कुमार हल्दार ने चक्रधर पुर मे प्राप्त गुफाचित्रों को 3000 वर्ष ई० पू० का बताया है। ''[1]प्रागैतिहासिक चित्र एपने समय के उन्नत जीवन के सशक्त उदाहरण हैं। इस युग के उल्लासमय जीवन, पशु, पक्षी, आखेटक संस्कृति के चित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

धीरे धीरे इन चित्रो में सभ्यता के परिवर्तन के साथ-साथ परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। कला की उद्भावना में धर्म प्रेरणा बनकर आया। भारत के लोगो को कला की प्रेरणा प्रकृति से मिली। वेदों के ऋषियों ने प्रकृति के अनेक रूपों की पूजा कर उन्हे देवत्व का स्वरूप प्रदान किया। ये दैवी शक्तियाँ ही कालान्तर में लोक-परलोक, आत्मा-परमात्मा, बह्मा, विष्णु और मेहश आदि के नाम से जानी जाने लगीं।

धर्मप्रवण देश भारत में कला के आध्यात्मिक पक्ष की प्रधानता रही है। भारतीय कलाकार ने बाह्य सौन्दर्य के वश मे रहकर कभी कला निर्मित नही की बल्कि उसने अपनी अन्त: प्रेरणाओं और प्रसुप्त दैवी विश्वासों के बल पर विचारों को रंग , रूप वाणी और व्याप्ति प्रदान की।

वैदिक काल में धर्म कला के साथ ही विकसित हुआ या यो कहे कि कला धर्म के साथ विकसित होती गई। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्रम' में, महाराज भोज के 'समरांगण सूत्रधार' में और सोमेश्वर भूपति के 'मानसोल्लास' में चित्रकला के विधि-विधानों का विस्तार से उल्लेख है।

भारतीय चित्रकला का प्रारब्ध कहे जाने वाले भित्ति चित्रों की परम्परा का सर्वोत्कृष्ट रूप ज़ोगी मारा (300 ई0पू0), अजन्ता (200 ई0 पू0 से 700 ई0 पू0) बाघ (416-486 ई0 के

---

1 भारतीय चित्र कला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स०-7

मध्य) आदि मे स्पष्ट दिखाई देता है। इन चित्रो में आते-आते कला बदल जाता है। बादामी, सित्तनवासल, एलोरा, एलीफेन्टा तक आते-आते का स्वरूप रेखाओं से पुष्ट एवं लयात्मक रेखाओ में कला में बौद्ध विषयों के साथ-साथ शिव पार्वती और विष्णु जैसे आराध्य देव को भी चित्रकारों ने अपनी कला की विषय वस्तु बनाया।

उपर्युक्त कला शैलियां विभिन्न राजवंशों के साथ धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु पुष्पित एवं पल्लवित हुई।

सम्राट अशोक के बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय और तदन्तर हर्षवर्धन को ही दिग्विजयी सम्राट होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हर्ष का शासनकाल 607-648 ई0 था। वह स्वयमेव लेखक था। उसके युग की आँखों देखी चित्रकला समृद्धि का वर्णन उसके दरबारी लेखक (गद्यकार) बाणभट्ट की रचनाओ में देखने को मिलती है।[1]

प्राचीन कला जैसे अजन्ता आदि में शास्त्रीयता है, साथ ही आध्यात्मिकता भी है। ये चित्र आचार्य वात्सायन (200-300ई0)[2] के कामसूत्र में वर्णित चौसठ कलाओं और आलेख्य (चित्रकला) के षडंगों पर आधारित है। महात्मा बुद्ध के इर्द-गिर्द घूमती विषय-वस्तु बौद्ध धर्म की पराकाष्ठा का दिग्दर्शन है।

अजन्ता के जो चित्र फ्रेस्को या टेम्परा तकनीक मे बने है वे रूप और रंग के लयात्मक संगठन है। इनमें लचीलापन सिर्फ रेखाओं के माध्यम से लाया गया हैं।[3]

मध्यकाल में भी चित्रकला में धार्मिक दृष्टिकोण प्रबल था। इस काल में जो रचनायें हुई हैं वे परम्परागत आधार के साथ रहस्यात्मक जीवन को भी इंगित करती हैं। प्राचीन काल की उन्नत शास्त्रीय कला की तुलना में मध्यकाल में चित्रकला में गिरावट भी आई तथा एलोरा, एलीफैन्टा, बादामी आदि मध्यकाल को अन्धकार युग भी कहते हैं। प्राचीन काल में

---

1 भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला पृष्ठ स0 105

2 भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ सं0 88

3 मार्डन इन्डियन पेन्टिंग, पी0 आर0 राचन्द्र राव, पृष्ठ स0 -2

तो भारतीय सस्कृति बाहर गई किन्तु मध्यकाल में इस संस्कृति में गिरावट आई जब बाहरी संस्कृति का आगमन भारत वर्ष में प्रारम्भ हुआ।

मध्यकाल में वृहदीश्वर (तंजौर) के मन्दिरो मे भी भित्तियों पर शैव धर्म से सम्बन्धित चित्र मिलते हैं जो फ्रेस्को सेको पद्धति में बने है किन्तु इनमे अपनी प्रारम्भिक चित्रकला की तुलना मे गिरावट है।

'कालान्तर में भित्ति चित्रो के निर्माण की लोकप्रियता घटने लगी। आठवी शताब्दी के बाद मे तो ये समाप्त प्राय सी हो गयी गई और, इनके स्थान पर लघु चित्रों को वरीयता दी जाने लगी जैसा कि पूरब में बंगाल के पाल स्कूल (9वीं एवं बारहवीं शताब्दी) एव पश्चिम मे गुजरती स्कूल मे (11वीं-15वी शताब्दी) दिखाई देता है।[1] यही कारण है कि 'मध्यकालीन भारतीय चित्रकला को दो वर्गो मे बाटॅकर देखा जाता है-एक भित्ति चित्रण और दूसरा लद्यु चित्रण।[2]

मध्यकाल में चित्रकला में बाहरी आक्रान्ताओं के कारण भी विक्रति आई। 'भित्ति चित्रों से लघु चित्रो तक की कला यात्रा के पीछे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण गजनी का महमूद गजनवी (998-1030 ई0) रहा है।[3] उसने भारत में स्थित मन्दिरो को धवस्त किया और उनकी बहुमुल्य सम्पदा को लूटकर अपने देश गजनी ले गया।

भारत मे कला मन्दिरों से ही निकलती है, इसके पीछे यही मान्यता रही है कि सभी कलाओं का उद्‌भव ये देवालय ही हैं और इसीलिये अधिकांश चित्र ईश्वर के बनाये गये। मुगल सल्तनत के भारत मे स्थापित होते ही यहाँ की कला में परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। इस्लामी और ईरानी संस्कृति से भारतीय कलाओं का परिचय हुआ, जिसमें ईश्वर के चित्र वर्जित रहे है।

---

1 द हेरिटेज आर्फ इन्डियन आर्ट, ए पिक्टोरियल प्रेसेन्टेशन वासुदेव शरण, पृष्ठ स0 32-33

2 द वर्ल्ड आर्फ इन्डियन मिनियेचर, जमीला ब्रजभूषण, पृष्ठ स0-11

3 भारतीय सस्कृति और कला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ सं0-530

मध्यकाल में कला में जो परिवर्तन है उन्हे आधुनिकता की तरफ बढ़ना नही कहा जा सकता। इस काल मे सामाजिक चित्र बहुत कम बने हैं। कला राजाश्रय मे थी, अतः राजाओ महाराजाओं के ही चित्र अधिकांश मिलते है। पाल, अपभ्रंश, जैन आदि की तुलना मे राजस्थानी चित्रो की विषयवस्तु रूढ़िगत धार्मिक परम्पराओ से हटकर है। इसमे वैष्णव भक्ति विषयक चित्रों के साथ-साथ सांसारिक विषयो का स्वचछन्द रूप से चित्रण दिखता है। जैसे जयदेव कृत गीत गोविन्द आदि पर चित्र रचना। यहाँ धर्म से हटकर सांसारिकता की ओर रूझान को हम आधुनिकता की ओर आंशिक प्रयास मान सकते है। (चित्र सं० 15)

मुगल चित्रकला में ईरानी प्रभाव आने से भी भारतीय चित्रकला में परिवर्तन हुआ,इसमे नक्काशी हाशिये और यथार्थ चित्रण को प्राथमिकता दी जाने लगी। (चित्र सं० 5) मुगल चित्रकला मे नवाबी अय्याशी,तड़क भड़क, दिखावा, नज़ाकत, युद्ध के दृश्य, शिकार दृश्यों का प्रमुखता से चित्रण है, जिसका प्रभाव परम्परागत भारतीय चित्रकला पर भी पड़ा।

कालान्तर में अंग्रेजों के भारत आगमन से भी आधुनिकता का प्रश्न उठता है जब पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव भारतीय जनजीवन पर पड़ना प्रारम्भ होता है। एक बात गौर करने की यह भी है कि भारतीय संस्कृति अथवा कला में जब-जब संमिश्रण या समायोजन की बात हुई तो कला ने तरक्की की लेकिन जब कभी किसी शासक या व्यक्ति ने भारतीयता की संस्कृति को समाप्त करने की बात की तो वह स्वयं ही समाप्त हुआ, जैसे औरंगजेब या फिर अंग्रेज शासक।

इतिहास गवाह है कि बाबर , हूमाँयू, अकबर, जहाँगीर इत्यादि के शासनकाल में तो सांस्कृतिक समन्वय का प्रभाव तेजी से प्रसारित हुआ, अतः यह बात दीगर है कि तलवार की नोंक पर सांस्कृतिक परिवर्तन कभी भी स्थापित नहीं किया जा सकता।

मुगल चित्रकला में परिवर्तन जहाँगीर के काल से ही अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ प्रारम्भ होता है। 'अंग्रेजो के आने से हिन्दू-इस्लामी समन्वय की सास्कृतिक धारा बन्द

हो गई किन्तु उनके अन्वेषण और पुनर्मूल्यांकन का नया युग भी शुरू हुआ। पाश्चात्य सस्कृति के सम्पर्क से भारतीयों का संसार की यात्रिक एवं भौतिक प्रगति से परिचय हुआ और इसके दुष्परिणाम भी सामने आये। अंग्रेजों की नयी शिक्षा की व्यवस्था ने विद्यार्थियो को अतीत से काट दिया। अतीत के नाम पर अधकचरी अपंग संस्कृति का जन्म हुआ। 18वी शताब्दी के प्रारम्भ में ही अंग्रेज, पुर्तगालियों के भारत आगमन के साथ पश्चिमी चित्रशैली भी यहाँ विस्तार पाती गई'।1

पश्चिम एव पूर्व के बेमेल सस्करण से उपजी कंपनी शैली ~~(चित्र सं0 ——)~~ को यहाँ काफी प्रचारित किया गया। अंग्रेजी सरकार कुशल भारतीय चित्रकारों से पाश्चात्य नैसर्गिकतावादी शैली के व्यक्तिचित्र, निजी परिवार के चित्र व स्थानीय दृश्य चित्र बनवाने लगे। भारतीय जलरंगों के स्थान पर तैलरंग तथा पेस्टल रंगों का प्रयोग किया जाने लगा।

19वीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजो ने भारत मे कला विद्यालयों क शुरूआत की और राजा रवि वर्मा जैसे भारतीय चित्रकारों को अंग्रेजी पद्धति में प्रशिक्षित किया गया, (चित्र सं0 16) किन्तु, भारतीय कला के पक्षधर और शुभचिन्तक इससे विचलित हुए। उन्होनें भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की रक्षा हेतु पुनर्जागरण की अलख जगाई। फलस्वरूप पुनर्रूत्थान शैली का जन्म हुआ और अवनीन्द्र नाथ टैगोर इसके प्रणेता एवं संस्थापक चित्रकार हुए।

आगे चलकर पुनर्रूत्थान (बंगाल) शैली में भी परिवर्तन हुए और इस चित्रकला शैली से भारतीय कला के पुर्नरूत्थान की बात करने वाले चित्रकारों ने अपनी स्वतंत्रा पहचान के लिए नई सामाजिक प्रतिबद्धता की बात उठाई। उन्होंने चित्रकला में आत्माभिव्यक्ति को सर्वोपरि मानते हुए स्वतंत्र चित्रण को प्राथमिकता दी और प्रयोग की तरफ उन्मुख हुए।

---

1 पैनोरमा आर्फ इन्डियन पेन्टिग, पृष्ठ सं0–30

अन्तर

भारतीय मध्यकालीन चित्रकला से आधुनिक भारतीय चित्रकला तक की यात्रा के दौरान कला में विभिन्न परिवर्तन हुए जिसका प्रमुख कारण बाहरी सस्कृति का भारत वर्ष में आगमन और उसके प्रभाव रहे है। मध्यकालीन एवं आधुनिक चित्रकला के अध्ययन के उपरान्त स्पष्ट है कि इनमे दर्शन, रचना, धार्मिता, रचना प्रक्रिया, वर्णविन्यास, चित्रतल, विषयवस्तु, माध्यम परिप्रेक्ष्य आदि की दृष्टि से 'पर्याप्त अन्तर' है। इस अन्तर को परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि ये काल जनित है। किसी भी परम्परागत चित्रकला और परम्परा से हटकर सक्रिय होती चित्रकला में ऐसा हो जाना नितान्त स्वाभाविक भी है। फिर भी बदलती सामाजिक परिस्थितियों एवं समाज के उत्तरोत्तर विकास के दौर मे आधुनिक एव मध्यकालीन चित्रकला के अन्तर को उपरोक्त आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास है-

दर्शन :- मध्यकालीन चित्रकला के दर्शन को इस तरह से समझा जा सकता है कि परंपरा में समूह चेतना का उत्कर्ष रहता है, जो समुदाय के अपने विश्वासो में सुरक्षित होता है। इसकी मूलभूत अस्पष्टता, स्त्रोत का सुदूर अतीत मे लुप्त होना और अनेक उपशाखाओं मे बँटा व्यापक तंत्र इसे दृढ़ जरुर बनाता है लेकिन सांस्कृतिक साँचे को अदृश्य रूप से जोड़ने वाली शक्ति का काम भी करता है।''

जबकि आधुनिक चित्रकला के दर्शन के पीछे[1] भौतिक-वादी विकास तथा तर्क पर अधिक बल देने वाले नये वातावरण में कलाकार को इस बात का अहसास हो गया है कि इस वातावरण मे अंतः ज्ञान तथा कल्पनात्मक जीवन का उत्साह ठंडा पड़ जाता है और कलाओं में सच्ची रचनात्मकता इसका पहला शिकार होती है। अतः उसने यह जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है कि अंतः ज्ञान तथा गुह्य व कल्पनात्मक जीवन पर स्वयं ध्यान दें। आज हमारे युग में कलाकार की इस भूमिका पर सामाजिक कारणो से बल दिया गया है क्योंकि अब समाज की हालत ऐसी है जिसमें कारीगरी सम्बन्धी अंतर्ज्ञान तथा वास्तविक रचनात्मक

---

1. कला समय और समाज, सपादक-प्रयाग शुक्ल, पृष्ठ स०- 23

प्रक्रिया को स्वीकार नहीं किया जाता।[1] कलाओं में अमानवीयकरण के कारण कलाकार इस बात में विश्वास करने लगा है कि सर्वग्रासी भौतिकवाद तथा कुरुपता के दूषण से कला की रहस्यमयता को सुरक्षित बनाने मे उसकी विशेष भूमिका है।'' आधुनिक चित्रकला में कलाकार पूर्णतया स्वतत्र है। इससन्दर्भ में 'एलियट' (अग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि) का यह कथन बिल्कुल सही है कि' - '' किसी भी कवि का या किसी भी कला के कलाकार का अपने मे कोई सम्पूर्ण अर्थ नही होता। परिपक्व कवि अथवा कलाकार का मस्तिष्क एक परिष्कृत निर्दोष माध्यम होता है जिसमे विविध प्रकार की भावनाएँ नये-नये संयोजनो मे प्रवेश करने के लिए स्वतंत्र होती है।''[2]

रचना धर्मिता :- मध्यकालीन चित्रकला शैलियों का पूजा भाव हमे जड़ आदर्श की ओर ले जाता है। हम बार-बार एक ही चीज को देखना चाहते हैं और दोषो के प्रति ऑखे बद कर लेते है। मध्यकालीन चित्रो में तथ्य से अलग हुई सच्चाई को मोहक, भावभीनी और सब गुणो से पूर्ण (रुमानी) बना दिया गया है जिस कारण तत्कालीन चित्रकारों की चेतना सुप्त प्राय ही थी उनके कार्यो के प्रति शासक वर्ग कही अधिक जागरूक था जबकि आधुनिक चित्रकार अपने चित्रों के प्रति पूर्ण सजग है, इसीलिए वह स्वतंत्र है। आज वह गतिशील, विवेकभरी एवं परिपक्व दृष्टि को अपने साथ रखता है और इस बात का उसे पूरा अहसास है कि वह प्रतियोगिता के दौर में है।

मध्यकालीन चित्रकला मुख्यत: धार्मिक ग्रन्थों पर आधारित थी और विषयवस्तु भी धार्मिक होती थी जैसे- अपभ्रंश शैली में जैन धर्मो से सम्बन्धित चित्र हैं तो पाल मे बौद्ध धर्म से। राजस्थानी शैली में कृष्ण-राधा की भक्ति को आधार मानकर नायक-नायिका का प्रचुर मात्रा में चित्रण है। मुगल शैली में राजदरबार के दृश्यों, पशुपक्षियों एवं राजाओं के शबीह ही अधिकांश निर्मित किए गये हैं। मध्यकालीन चित्रकला का रचनाधर्म इन विषयों से इतर

---

1 कला समय और समाज, सपादक- प्रयाग शुक्ल, पृष्ठ स० - 25

2 वही

कुछ सोच नहीं पाता था क्योंकि चित्रकला राजाश्रय मे थी।[1] जबकि आधुनिक चित्रकला का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि दैनिक जीवन के दृश्यों, नृत्य संगीत के अतिरिक्त चित्रकारों ने आधुनिक जीवन की जटिलताओं को भी प्रस्तुत करने में बराबर से काम किया। 'मदनलाल नागर' का सिटीस्केप नामक चित्र, ए०पी० गज्जर की 'भोपाल गैस त्रासदी' रामेश्वर बरूटा की गोरिल्ला श्रखला के चित्रो से हम मुख नहीं मोड़ सकते। प्रो० रामचन्द्र शुक्ल के राजनीति पर अनेकों व्यंगाचित्र हमे सोचने पर मजबूर करते हैं। आधुनिक चित्रकला मे सामाजिक विसगतियों और व्यक्तिवाद ने चित्रकारों को रूढ़ियों एवं दरबारी जकड़न से हटने की प्रेरणा दी। पचास के दशक में अग्रेजी शासन की गुलामी से उबरे विभाजन की त्रासदी के दर्द को समेटे आजाद भारत में युवा क्रान्तिकारियों एवं सामाजिक कार्य कर्ताओ के साथ-साथ युवा चित्रकारों ने भी अपनी इच्छानुसार विषय चुनकर चित्रण प्रारम्भ किया। अपने भीतर के उमड़ते-घुमड़ते मनोभावो को चित्रफलक पर उतारने की छटपटाहट ने चित्रकारो को अभिव्यंजनात्मक एव वस्तुनिरपेक्ष चित्रनिर्माण के लिए प्रोत्साहित किया।

मध्यकालीन चित्रकला ने शास्त्रीय कलाओ अजंता बाघ आदि से प्रेरणा ग्रहण की किन्तु आधुनिक चित्रकला, लोक कला और आदिम कला से अधिक प्रेरित है। आधुनिक चित्रकला में प्रस्तुति का महत्व है भारत के पिछड़े समझे जाने वाले गाँवों की झोपड़ियों की दीवारों पर भी कला को प्रस्तुत किया जाता है। प्रसिद्ध भारतीय चित्रकार यामिनी राय ने 'कालीघाट' के चित्रों से प्रेरणा ग्रहण करके जो चित्र बनाये वह स्वयं में अद्‌भुत हैं। जिस प्रकार मध्यकालीन चित्रकला शैलियाँ अपने पूर्व की कला शैलियो से और इतिहास से प्रेरित होकर आगे फलती फूलती रहीं लेकिन आधुनिक चित्रकला के साथ ऐसा नहीं है। प्रयोग के इस दौर में वह स्वंय से कहीं ज्यादा प्रेरित है। यूँ भी आधुनिक चित्रकला का जन्म किसी इतिहास से हुआ नहीं माना जा सकता है। और स्वयं आधुनिक चित्रकला का उलझनपूर्ण इतिहास है भी कितना प्राचीन, सिर्फ चार या पाँच दशक पहले ही तो भारतीय आधुनिक

1. कला समय और समाज, सपादक- प्रयाग शुक्ल, पृष्ठ सं० - 25

कला मे क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रारम्भ होते हैं। प्रसिद्ध कवि एवं चित्रकार श्री जगदीश स्वामीनाथन ने कहा भी था— 'इतिहासकार एव कला समीक्षक जरुर कला का जन्म इतिहास से कराना चाहते है, लेकिन कला का जन्प इतिहास से नहीं होता है, वह कलाकार की सृजन शक्ति से होता है।'[1]

रचना प्रक्रिया :- मध्यकालीन चित्रकला के निर्माण काल के दौरान चित्रकारो का पूरा समूह एक ही चित्र पर कार्य करता था। कोई रेखा खींचता, कोई रंग लगाता तो कोई हाशिए बनाता था। किन्तु, आधुनिक चित्रकारों का कार्य भिन्न है। आधुनिक भारतीय चित्रकार की अपनी व्यक्तिगत सोच है। वह अपने चित्र में किसी का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करता। आधुनिक चित्रकार अपनी सम्पूर्ण रचना मे सोचने से लेकर-चित्र के पूर्ण हो जाने तक किसी को भी जल्दी साझीदार नहीं बनाता। यह परिवर्तन बदलते हुए समय एवं व्यक्तिवाद की ही देन है।

वर्णविन्यास :- जहॉ तक दोनों कालो की चित्रकला में प्रयुक्त रंगों की बात है मध्यकाल में सिर्फ वानस्पति रंगो का ही प्रयोग हुआ है। इन रंगों में लाल, पीली एवं सुनहरी छटाओं की बहुलता है। इन रगों को बड़े जतन से निर्मित करके धीरे-धीरे चित्रो पर लगाया जाता था। आधुनिक काल में राजा रवि वर्मा पहले भारतीय थे जिन्होने विदेशों से आयातित तैल माध्यम की शुरूआत की। तब से आज तक आधुनिक भारतीय चित्रकारों का एक बहुसख्यक वर्ग इस माध्यम में इच्छानुसार परिवर्तन के साथ इसका प्रयोग अपनाये हुए है। अक्रेलिक, सिन्थेटिक आदि माध्यम भी खूब प्रचलन में हैं। रंगीन कागज, कपड़े एवं अन्य वस्तुओं के टुकड़े काटकर सीधे-सीधे चित्र सतह पर रंगों के विभिन्न प्रभाव लाने की दृष्टि से भी उपयोग में लाये जा रहे हैं। मध्यकाल में रंगों को चित्रों पर सपाट लगाया जाता था उसके बाद उन पर गहरी हल्की रंगों की छटाओं पर रेखाओं द्वारा चित्रो को सजाया जाता था। किन्तु आज विभिन्न तरह से कैनवस पर तूलिका चलाकर उभार एवं गहराई दिखाने की

---

1 कला चित्रकला, लेखक — विनोद भारद्वाज, पृष्ठ सं०- 18, प्रवीण प्रकाशन, महरौली, दिल्ली

कोशिश कलाकार करता है, ये तूलिका सघात उसकी मानसिक दशा को भी इंगित करते है। मध्यकलीन चित्रकला में रगो का महत्व सजावटी है। उनमे सुनहरे अलकरण और नक्काशी का बाहुल्य है किन्तु आधुनिक चित्रकला मे रगों के सपाट प्रयोग है और उनपर सजावट न होकर सादगी को महत्व दिया गया है। ये साधारणीकरण शायद बदलते तेज रफ्तार समय की जरुरत ही है कि कला के सौन्दर्य का भावोत्कट रस ग्रहण करने के लिए अब लोगो के पास समय की कमी है ऐसे मे कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा चीजे बताने के लिए कला मे कम रेखाओ कम रंगों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। महीन काम के बजाय मोटी लाइनो से रूपाकारों को अंकित किया जाने लगा ताकि वे गहरे तक दर्शक के मन मस्तिष्क पर प्रभाव छोड़े।

चित्र तल :- जहॉ तक चित्र तलों की बात है मध्यकाल में चाहे राजस्थानी शैली हो, मुगल शैली हो या फिर कोई और इन सभी कला शैलियों में एक ही जैसे फलक पर चित्रकारी की गई है। जैसे कागज, कपड़े एवं भित्ति पर मध्यकाल की सभी चित्रकला शैलियो के उदाहरण न्यूनाधिक मात्रा में मिलेंगे। ताडपत्रों का इस्तेमाल भी उपभ्रंश शैली के लघुचित्रो के निर्माण तक खूब हुआ है। मध्यकालीन चित्रकला धरातल या चित्रतल के प्रयोग मे सीमित रही है, जबकि आज चित्रतलों की सीमायें टूट चुकी हैं। नित नवीन करने की होड़ में चित्रकारों ने कपड़े धातु, बोरे, लकड़ी, कागज गत्ते, भित्ति, आदि अनेकों तरह से चित्र सतह तैयार करके चित्रण किया है। मध्यकाल में चिकनी चित्रसतह ही चित्रकारी के योग्य समझी जाती थी किन्तु आज खुरदरी सतह पर भी कोमल संवेदनात्मक विषयों पर आधारित चित्रों का निर्माण करने से चित्रकार हिचकता नहीं। मध्यकाल में चूने-रेत आदि से सतह को चिकना बनाने की परंपरा थी, आज भित्ति पर सीमेन्ट, प्लास्टिक इमल्सन, कांच, मोजेक आदि अनेकों वस्तुओं से दीवारों पर या हार्डबोर्ड पर चित्र सतह खुरदरी, चिकनी या उभार वाली बनाकर चित्रकार चित्र निर्माण में सक्रिय हैं बंगाल शैली के वाश पद्धति के चित्रों के लिए वाट्समैन या कैन्ट पेपर (इग्लैण्ड से आयातित) का इस्तेमाल होता है। आज म्यूरल सीधे सीधे दीवार पर बनाने के अतिरिक्त हार्डबोर्ड या अन्य धातु की चादर पर बनाकर फिर बाद में दीवार पर जड़ दिया जाता है।

1855 के आस-पास से भारत के कला विद्यालयो मे उकेरन, अम्लांकन और शिला लेखन पढाये जाते रहे हैं। ये छापाकला (ग्राफिक्स) की विभिन्न शाखायें हैं। प्रारंभ मे इस तकनीक से लीथो छापाखानो मे राजा रविवर्मा के तैल चित्रो की प्रतियाँ निकाली जाती थी। आधुनिक भारतीय कलाकारों मे श्री गगनेन्द्र नाथ ठाकुर ने छापा तकनीक को मौलिकता के लिए स्वतत्र किया। श्री नन्दलाल बोसु ने सन् 1929 मे रवीन्द्रनाथ टैगोर की बच्चो के लिए लिखी 'सहज पथ' को छापो से चित्रित किया था। श्री विनोद बिहारी मुखर्जी ने छापा तकनीक का सफल उपयोग किया। उनके द्वारा कार्यरत लकड़ी का लयात्मक काठ उकेरन आज भी प्रभावित करता है।[1]

विषय वस्तु- मध्यकालीन चित्रकला में राजाओं महाराजाओ के ठाट-बाट वाले चित्र अधिकांश बनाये जाते थे किन्तु, आधुनिक कालीन चित्रकला में यहाँ बंगाल शैली का उद्धारण लेकर देखना होगा, जो मुगल, राजपूत आदि कलाओं से प्रेरणा लेकर ही प्रारम्भ हुई थी, मे भी राजाओ महाराजाओं के चित्र नहीं बनाये गये हैं। इस संदर्भ में अवनीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा निर्मित, चित्रों का उल्लेख आवश्यक है। अवनीन्द्र बाबू ने 'शाहजहाँ' का चित्र बनाया है, उनकी कला में मुगल कला के अंश भी दिखाई देते है फिर भी इन चित्रों को आधुनिक सदर्भ में ही प्रस्तुत किया गया है। 'शाहजहाँ' के चित्र में उसे ताजमहल को निहारते हुए चित्रित किया गया है जब वह लाल किले में कैद था। यह चित्र शाहजहाँ की दुर्दशा का भाव प्रदर्शित करता है जो अन्तकाल के उसके जीवन की सच्चाई रही थी। चूँकि आधुनिकता में सच को जानने का प्रयास भी प्रमुख होता है इस दृष्टि से अवनी बाबू के इस चित्र की विषय वस्तु आधुनकि ही मानी जायेगी इसमें मध्यकाल का विलासमय जीवन समाप्त हो जाता है।

बगाल शैली में भी मध्यकालीन धार्मिक, पौराणिक विषयवस्तु को निरंतर चित्रकारो द्वारा अपनाया गया फिर भी सामाजिक जीवन को भी चित्रों की विषय वस्तु बनाया गया।

---

1 कला समय समाज - नि० भारतीय छापा कला सपादक - प्रयाग शुक्ल ले०- उमेश वर्मा पृष्ठ स०-44-45

परम्परागत चित्रकला शैलियो में भी कुछ तत्व ऐसे पाये गये है जो आधुनिकता के दृष्टिकोण से भी उपयुक्त साबित हुए जैसे- जैन कला शैली (जो बाद मे राजस्थानी कला में विलीन हो गई थी) [1] इसके चटख रग, मोटी रेखायें आज की आधुनिक चित्रकला का भी आधारभूत तत्व बनी। इनसे प्ररित हो प्रसिद्ध चित्रकार प्रो0 रघुवीर सेन धीर (वाराणसी) ने जैन कला पर शोध करके अपने तरीके से चित्र बनाये। (चित्र सं0 50)

परिप्रेक्ष्य- परिप्रेक्षीय चित्रण मे मध्यकालीन चित्रकारों ने परम्परागत नियमों का पालन किया है। कागडा शैली के 18वीं, शताब्दी में निर्मित अधिकाश चित्रों में परिप्रेक्ष्य को 'बर्ड आई व्यू' (ऊपर से खीचे गये चित्र) के हिसाब से बनाया गया है उदा0 के लिए 'वियोग'- (चित्र सं0 61) नामक चित्र में एक ही फलक पर चार-चार दृश्यों को अकित किया गया है जिसमे अन्त:पुर और बाह्य वातावरण एक ही समय में दिखाये गये हैं।

इसी प्रकार किन्ही-किन्ही चित्रों मे क्षैतिज रेखा के बगैर (चित्र स0 6) आकृतियाँ चित्रित हैं जो आसमान में लटकी सी प्रतीत होती है इन चित्रों के इस भॉति निर्मित होने के पीछे कोई प्रामाणिक तर्क दे पाना मुश्किल होता है जबकि आधुनिक चित्रकार ऐसी आकृतियों या इस तरह का परिप्रेक्षीय विभाजन करता है तो उसके पीछे उसकी तर्क दृष्टि साथ रहती है। जैसे आगरा के चित्रकार अश्वनी शर्मा 'यदि अपने चित्रों में पानी को ऊपर और आसमान को नीचे बनाते है तो अपने इस कृत्य के पीछे के दर्शन और तर्क से दर्शक को सन्तुष्ट भी करते हैं।

मध्यकालीन चित्रकला और आधुनिक चित्रकला में समकालीनता का भी अन्तर स्पष्ट देखना होगा। मध्यकालीन चित्रकला अपने समय के अनुकूल धार्मिक पौराणिक ही रही और कहीं कहीं रूढ़िगत भी होकर रह गई। आधुनिक चित्रकला में समसामयिक विषयो

---

1 Jain Miniatures are of exceetingly stylised forms, of Curiously angular or attenuated sapes on background of red blue and gold organised into patterns of great vitality

morden Indian painting page-3

पर अधिकांश चित्रण हुआ है साथ ही आधुनिक्र चित्रकला मे परिवर्तन को सहज ही स्वीकारा गया है।

आधुनिकता के सदर्भ मे यही कहना होगा कि जब तक अभिव्यक्ति की स्वतत्रता की बात है तब तक आधुनिकता है। यदि इस बीच कोई दूसरा दर्शन कला पर लागू होगा तो उसकी बात प्रारम्भ होगी। आज चित्रकला में भी अन्य क्षेत्रो की भॅति अभिव्यक्ति की स्वतत्रता प्रत्येक कलाकार को है इस दृष्टि से आज के चित्र आधुनिक और समसामयिक दोनो है।

यहॉ यह भी देखना होगा कि यदि कोई चित्रकार मध्यकालीन मूल्यों के आधार पर रंग, विषय वस्तु, तकनीकी आदि मे जरा भी परिवर्तन के बगैर रचना करता है तो ऐसे चित्र कदापि आधुनिक चित्रकला की श्रेणी में नहीं आयेंगे।

अध्याय-4

उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के प्रमुख आधुनिक चित्रकार एवं उनके चित्रों का विश्लेषण

कला के उद्‌भव और विकास की अनन्त गाथा है, मानव जीवन के अभ्युदय एवं विकास के साथ इसका जन्म हुआ और यह आगे बढ़ी।

भारतीय चित्रकला के आधुनिक युग का सूत्रपात लगभग बीसवीं शताब्दी के आरंभ के साथ हुआ। इतने अल्प समय मे उसने जो प्रगति की है उसका श्रेय वर्तमान पीढ़ी के उन सभी कलाकारों को प्राप्त है जिन्होंने परिस्थितियों की चिन्ता किये बिना अपनी साधना को अविरत रूप में बनाये रखा। यद्यपि आधुनिक चित्रकला के तीन प्रमुख स्कूल माने जाते है- कलकत्ता, बम्बई और दिल्ली, फिर भी इनके आधार पर चित्रकारों का वर्ग-विभाजन न करते हुए, प्रवृत्तियों के आधार पर वर्ग विभाजन अधिक सही प्रतीत होता है।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत कला की वे प्रवृत्तियॉ हैं, जिन्हें टैगोर परिवार ने रचा और कालान्तर में ये 'बंगाल स्कूल' के नाम से देश भर में विख्यात हुई। बंगाल स्कूल की परम्परा से निकले हुए कुछ कलाकारों ने अपना विकास दूसरी ही दिशा में किया। बंगाल स्कूल की परम्परा का अपना विशिष्ट स्थान है। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर इसके संस्थापक चित्रकार हैं इनके साथ गगनेन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस, शैलोज मुखर्जी, धनराज भगत एवं देवी प्रसाद राय चौधरी इस परम्परा के पोषक एवं समर्थक चित्रकार रहे हैं।

आधुनिक भारतीय चित्रकला के लिए बंगाल स्कूल या बंगाल शैली का बड़ा महत्त्व है। यह परम्परागत भारतीय चित्रकला का पुनर्जागरण था। हैवेल साहब के अनुसार— "इस फैलती हुई मानसिक और शासन-सम्बन्धी अव्यवस्था के पीछे भारत में अब भी प्राचीन संस्कृति पर आधारित कला की एक जीवित और मौलिक परम्परा है,जो यूरोप की आधुनिक अकादमियों और कला-संस्थाओं के संचित ज्ञान की अपेक्षा अधिक संपन्न और शक्तिशाली

है। यह परम्परा केवल उस आध्यात्मिक प्रबोध की प्रतीक्षा कर रही है जिससे कि उसकी पुरानी सृजनशील प्रवृत्तियॉ जागृत हो उठें।[1]

19 वीं शताब्दी मे भारतीय विद्यार्थियों को यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षित करने के लिए कला विद्यालयों की स्थापना हुई जहॉ नैसर्गिकता वादी पद्धति से चित्रकला सिखाई जाती थी, किन्तु यह पाश्चात्य पद्धति भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति एवं जीवन दर्शन के प्रतिकूल थी। 1896 मे ई० बी० हैवेल मद्रास कला-विद्यालय से स्थानान्तरित होकर कलकत्ता आये। यहॉ इन्होने अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के सहयोग से एक नवीन विचारधारा को भारतीय चित्रकला क्षेत्र मे जन्म दिया। इन दोनो कलाचार्यो के अनुसार भारतीय विद्यार्थियो को पाश्चात्य कला का अंधानुकरण करने के बजाय अपनी परम्परागत प्राचीन शैलियों जैसे अजंता, राजपूत, मुगल आदि को आदर्श मानकर उनका अध्ययन करके समकालीन विषयों का चित्रण करना अधिक समीचीन है।[2]

फलस्वरूप जापानी तकनीक एवं भारतीय परम्परागत चित्रकला शैलियों के रंग एवं रेखा विधान के मिश्रण से बंगाल चित्र शैली का उद्भव हुआ।

अवनीन्द्र नाथ टैगोर

जन्म	:	7 अगस्त, 1871 जोरासांको
शिक्षा	:	संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता
कला शिक्षा	:	अंग्रेज एवं इटालियन शिक्षकों से निजी तौर पर
संग्रह	:	कलाभवन शान्तिनिकेतन,
	:	श्री चित्रालयम् त्रिवेन्द्रम
	:	जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी, मैसूर
	:	भारत कला भवन, बनारस
	:	लाहौर म्यूजियम

---

1 भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ स० - 255

2 आधुनिक चित्रकला का इतिहास, र० वि० साखलकर पृष्ठ स- 343

: व्यक्तिगत सग्रहों मे

शिक्षण : शान्तिनिकेतन

मृत्यु : 5 दिसम्बर, 1951

अवनीन्द्र नाथ ठाकुर - अवनी बाबू का जन्म 1871 ई० में जोरासांको के विख्यात ठाकुर परिवार मे हुआ था। इटैलियन चित्रकार गिलहार्डी से इन्होने कला शिक्षा प्राप्त की। चित्रकला क्षेत्र में प्रवेश करने पर श्री ठाकुर के पास दो विकल्प थे- एक राजा रवि वर्मा का, अर्थात परम्परा और दूसरा उनके स्वतंत्र व्यक्तित्व का जिसके मूल मे हैवेल साहब के विचारों का प्रभाव था। हैवेल ने भारत के नये कला उत्थान को कला की जीवित एवं मौलिक परम्परा के रूप मे स्वीकार किया। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने अपने स्वतत्र व्यक्तिव से ही सामने आना उचित समझा और तभी उन्हे आधुनिक चित्रकला का प्रर्वतक होने का यश प्राप्त हुआ।

इनके प्रसिद्ध चित्रों मे 'भारत माता' बुद्ध जन्म, शाहजहॉ की मृत्यु प्रमुख है,जिनमे अजंता, मुगल आदि भारतीय कला शैलियों की पर्याप्त प्रेरणा स्पष्ट है। इनके चित्रों मे सहजता, मौलिकता एवं प्रभावोत्पादकता का आगमन नये कला प्रयोगों के निर्माण में कृतसंकल्प होते ही होना शुरू हो जाता है। इनकी कलाकृतियों में लोक कला का स्वाद और धार्मिक विश्वासों की स्वीकृति भी है, जो इनकी कृतियों का सर्वश्रेष्ठ गुण है। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के बाद इनके शिष्यों ने चित्रकला के क्षेत्र में नयी आस्था, नये विश्वास और नयी निष्ठा को उजागर किया।[1] इनके सुयोग्य शिष्यों में नन्द लाल बोस, समरेन्द्रनाथ गुप्त, सुरेन्द्र नाथ गांगुली, के वेंकटप्पा, हकीम मुहम्मद समीउज्जमा, शारदाचरण उकील, वीरेश्वर सेन, शैलेन्द्र नाथ डे, आदि के साथ असीत कुमार हल्दार एव क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, ने उत्तर प्रदेश में क्रमश: लखनऊ एवं इलाहाबाद में आधुनिक भारतीय कला के नये युग का सूत्रपात किया। जिसमें प्राचीन कला के नवीनीकरण का ध्येय प्रमुख था।

---

1 भारतीय चित्रकला, वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ सं०- 257

श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार के शिष्यों में डी० पी० धुलिया, शम्भूनाथ मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने क्रमशः गोरखपुर, इलाहाबाद एव वाराणसी में कला का उत्थान किया। देहरादून एव लखनऊ में आधुनिक चित्रकला की प्रगति आचार्य नन्दलाल बोस के शिष्यों विनोद बिहारी मुखर्जी एव सुधीर रजन खस्तगीर के द्वारा हुई।

श्री असीत बाबू की छत्र-छाया में ललित मोहन सेन, मदनलाल नागर जैसे चित्रकारो का कार्य चरम विकास पर पहुँचा। ललित मोहन सेन के वक्त श्री रनवीर सिंह बिष्ट ने चित्रकला को विशाल कैनवस प्रदान किया। इसी प्रकार लखनऊ मे श्री बी० एन० आर्य ने आगे से आगे आधुनिक चित्रनिर्माण करके उत्तर प्रदेश में आधुनिक चित्रकला के नये आकारों को गढा।

इलाहाबाद मे श्री जगदीश गुप्त ने बंगाल शैली के चित्रकारों द्वारा प्रचलित वाश विधा में चित्र निर्माण के साथ-साथ प्रयोग धर्मी कला में भी सिद्ध हस्तता प्राप्त की।

ये सभी कलाकार कलागुरू अवनीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा प्रतिपादित बंगाल शैली की वाश विधा को अपनाते ज़रूर हैं किन्तु प्रयोग की बेचैनी के साथ। जिसे अवनी बाबू के भी चित्रों मे अनुभव किया जा सकता है।

इस प्रकार कलाभवन शान्ति निकेतन के चार कलाकारों ने उत्तर प्रदेशमेंबगाल चित्रशैली केप्रचार प्रसार से शुरूआत करके आधुनिकता के लिए पर्याप्त अवसर निकाले साथ ही अपने जैसे अन्य चित्रकारो को प्रदेश में ही प्रशिक्षित किया—

श्री ललित मोहन सेन ने लखनऊ में अपने अध्यापन कार्यकाल में वाश तकनीक में परिवर्तन किया जिसका पर्याप्त प्रभाव बिष्ट, आर्या आदि के चित्रों पर स्पष्ट परिलक्षित है।

इस अध्याय में चयनित चित्रकार, कला शिक्षक के साथ साथ उत्कृष्ट चित्रकार है। श्री जगदीश गुप्त एक कवि चित्रकार रहे हैं। साथ ही इनका आध्यापन कार्य हिन्दी विषय में रहा है।

एक बात मुख्य यह भी है कि आप चित्रकारों ने वाश शैली को त्याग कर अलग दिशा में क्यों कार्य किया। सम्भवतः बंगाल शैली भारत में आधुनिक काल में पनपी किन्तु

इसमे चिभकारों को एक ही तरीके से चित्र बनाने में मुक्ति का आनन्द नहीं मिल पाता था और आधुनिक चित्रकला का प्राण तत्व मुक्ति ही है। सम्पूर्ण आधुनिक चित्रकला जगत में मुक्त होने का ही प्रयास सर्वत्र दिखता है।

इस अध्याय में चयनित चित्रकारों की खोज का आधार भी यही है कि उन्होंने बंगाल शैली से अलग आत्म अनुभव एव आत्माभिव्यक्ति को सर्वोपरि रखते हुए जब चित्र निर्माण किया तभी से आधुनिकता की ओर प्रयास प्रारम्भ हुआ।

यहाँ मजुमदार साहब अपवाद हैं- वे स्वंय को एक दास शिल्पी मानते थे किन्तु उनके चित्रों मे अनायास कुछ ऐसे तत्त्व आ गये हैं जो इन्हें सर्वथा अलग व्यक्तित्व प्रदान करते है, साथ ही अन्य आधुनिक चित्रकारों के गुरू होने से भी इनका महत्व बहुत बढ जाता है।

प्रस्तुत अध्याय मे उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के जिन चित्रकारों और चित्रों की चर्चा है उन्हें उनके कार्यो के अनुसार तीन श्रेणियों मे रखकर बात प्रारम्भ की गई है।

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत उन चित्रकारों को लिया गया है जिन्होंने बंगाल स्कूल की वाश विधा के अतिरिक्त अन्य कोई चित्रण विधि नहीं अपनाई साथ ही विषय भी परम्परागत पौराणिक, आख्यानमूलक लिए हैं और शैली में भी अजता मुगल, राजपूत, राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों से ही अधिक प्रेरित दिखते हैं। पुनर्जागरण काल की कला में अपने विशिष्ट योगदान के कारण इनकी चर्चा के बगैर उत्तर प्रदेश में आधुनिक कला की बात बेमानी होगी। ऐसे चित्रकारों को परम्परागत बंगाल शैली के अन्तर्गत मानकर अध्ययन प्रारम्भ करना उचित जान पड़ता है। चूँकि आधुनिकता की पहली शर्त परम्परा से हटकर मुक्त कार्य करना है अतः इस दृष्टि से परम्परागत चित्रकारों के चित्रों में आंशिक परिवर्तन स्पष्ट दिखता है जिसे इन चित्रकारों के चित्रों के विश्लेषण में उद्धृत किया गया है।

क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, शैलेन्द्र नाथ डे, हरिहर लाल मेढ़, सुखबीर सिंहल आदि इसके प्रमुख चित्रकार हैं इनमें से शैलेन्द्र नाथ डे का ज्यादा वक्त जयपुर में ही बीती किन्तु

अपने जीवन के अन्तिम समय में वे इलाहाबाद रहे और चित्रकला पर पुस्तक लिखकर उन्होंने यथासम्भव प्रदेश में कला के प्रसार प्रचार में सहयोग दिया।

दूसरी श्रेणी मे परम्परागत एवं परिवर्तित दोनों तरह का कार्य चित्रकारो ने किया इनमे प्रमुख हैं— असीत कुमार हल्दार, वीरेश्वर सेन, विश्वनाथ मुखर्जी, बी० एन० आर्या, बी० एन० जिज्जा, नित्यानन्द महापात्र आदि।

तीसरी श्रेणी में जिन चित्रकारों को रखा है उन्होंने कला शिक्षा का प्रारम्भ परम्परागत वाश विधा से किया और साथ ही साथ टेम्परा ऑयल आदि माध्यमो में भी कार्य किया। कुछ चित्रकारों ने यूरोपीय यथार्थ वादी, प्रभाववादी आदि चित्रो से भी प्रेरणा ली, किन्तु बावजूद इसके उनके चित्र पूर्णतया यूरोपीय न होकर प्रयोग धर्मी हो जाते है। किन्तु फिर भी ये प्रयोग परम्परा को छोड़कर अपनाये जा रहे थे और तत्कालीन परिस्थितियो मे साहसिक भी थे अत: ये आधुनिक समकालीन कला के आधार पर भी बने है। ऐसे चित्रकारों में—श्री ललित मोहन सेन, विनोद बिहारी मुखर्जी (उत्तर प्रदेश मे अल्प काल तक ही रहे) सुधीर खास्तगीर, डी० पी० धुलिया मदन लाल नागर, राम चन्द्र शुक्ल, रनवीर सिंह बिष्ट, रघुवीर सेन धीर, आदि प्रमुख हैं।

उपरोक्त तीनों श्रेणियों के चित्रकारों के अतिरिक्त भी अनेकों चित्रकार हैं जिन्होंने लखनऊ में कला शिक्षा प्राप्त की किन्तु उनका विस्तार से उल्लेख कर पाने में असमर्थता है क्योंकि या तो कालान्तर में वे मूर्तिकार हो गये या फिर उन्होंने प्रदेश से बाहर अपनी सेवायें दीं।

उल्लिखित चित्रकारों का क्रम वरिष्ठता के आधार पर निम्नवत है,

असीत कुमार हल्दार

क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार

शैलेन्द्र नाथ डे

वीरेश्वर सेन

ललित मोहन सेन

विनोद बिहारी मुखर्जी

सुधीर रजन खस्तागीर

प्रणय रंजन राय

हरिहर लाल मेढ़

बृजमोहन नाथ जिज्जा

सुखबीर सिंहल

विश्वनाथ मुखर्जी

द्वारिका प्रसाद धुलिया

मदन लाल नागर

रामचन्द्र शुक्ल

असद अली

जगदीश गुप्त

रनवीर सिंह बिष्ट

नित्यानन्द महापात्र

बद्रीनाथ आर्य

रघुवीर सेन धीर

राम कुमार विश्वकर्मा

किसी भी रचना का महत्व इस बात से नहीं आंका जाना चाहिए कि वह कितने में बिक रही है या विदेशी कलाकारों की तुलना में कितना प्रसिद्ध है। क्योंकि जिस तरह वान गॉग का सच उसके जीवन काल की त्रासदियों एवं उन त्रासदियों से उपजी रचना में है न कि इस बात में कि आज उसके चित्र करोंड़ों डॉलर में बिक रहे हैं। उसी तरह से हमारे यहाँ भी कलाकार हैं जिन्हें उनके जीते जी वह सम्मान एवं पहचान नहीं मिली और शायद मरने के बाद भी . ..... क्योंकि हमारे यहाँ चित्र बिकने बिकाने की बात तो बहुत पीछे छूट जाती है असल बात तो चित्रों को पहचानने एवं उसे सम्मान देने की है। आज भारतवर्ष में बहुत से ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने स्वतः स्फूर्त भारतीय सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित होकर, अपने अतीत से प्रेरणा लेकर आत्मिक अनुभूति से अभिव्यक्तिपरक चित्रों का निर्माण किया, किन्तु

विदेशो, विदेशी चित्रो की नकल एवं विदेशी आंदोलनो से स्वयं को बचाये रखा। और हमारे यहॉ कला सम्बन्धी खास तौर पर आधुनिक कला सम्बन्धी भ्रान्तिवश इन कलाकारो की चित्रकृतियों को आधुनिक भा० चित्रकला में गिना ही नही गया। बहुत दुःखद है यह सब और अब समय आ गया है कि हमे कलाकारों के प्रति उपेक्षात्मक रवैये से उबर जाना चाहिए। आज हम 21वीं शताब्दी के दरवाजे पर दस्तक दे चुके हैं और ऐसे में पिछले 50 वर्षों की अपने देश एवं प्रदेश की चित्रकला का पुनरावलोकन करने की जरूरत है वरना बहुत से चित्रकारो की कलाकृतियॉ बराबर विलीन भी हो सकती हैं और उनकी अनेक विशेषताएँ जो आज के दौर में प्रासंगिक है दबी ही रह जायेंगी। विद्वानों का भी ऐसा मानना है कि "किसी कलाकृति के निर्माण के सौ पचास वर्षो के भीतर उसका महत्व पहचाना जाना जरूरी है।" इसीलिए किसी भी समय और समाज में ऐसे कुछ पारखियो की जरूरत बराबर होती है जो व्यवसायिकता के दबावों एवं काल की प्रचलित अनावश्यक मान्यताओं के खिलाफ जाकर भी किसी रचना एवं रचनाकार को बल दे सके।

भारतीय सन्दर्भ में किसी रचना या रचनाकार को बल देने की बात करना खास तौर पर हम जैसे विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए हॉथ बाहर की बात किन्तु कुछ तथ्यो को उद्घाटित करके कुछ प्रश्न सामने लाकर यदि सही दिशा मे कुछ खोज प्रारम्भ हो पाये तो बहुत कुछ सार्थक होगा।

बात उत्तर प्रदेश में आधुनिक कला की हो तो बगाल स्कूल के कतिपय कलाकारों को इस सन्दर्भ में पुनः देखना आवश्यक है। क्योंकि ये ही पारदर्शी कलाकार तो रहे है जिन्होंने अपने चित्रों के झीनेपन के माध्यम से हमें मौका दिया कि हम उनके कार्यों के भीतर तक झॉक सकें जहाँ प्रयोग की बेचैनी लिए वह माता स्वरूप संस्कृति से लाड़ करता है। शिशु समान यही कलाकार लोक कलाओं को खिलौने के रूप में अपनी तूलिका की सहेली बनाकर खेलता है और मजे की बात यह कि वह वर्तमान सामाजिक परिवेश से, जन समुदाय से विमुख भी नहीं होता। परम्परागत बंगाल शैली को पूजा एवं साधना के साथ लेकर चलता हुआ जब वह बी० एन० आर्या के रूप में साँवरी जैसी रचना बनाता है तो

उसी के साथ आगे चलकर वह कॉरीडार्स भी अपने एव अपने समाज के लिए निर्मित करता है जहॉ कोई स्त्री चरित्र नहीं है पर अतीत की सॉवरी हर छिद्र में से झाँकती प्रतीत होती है जो दिखती भी नही पर महसूसी जा सकती है। हल्दार की उमा (वाश पद्धति) जगई मधई का उद्धार करते करते इटर्नल फ्लेम (Eternal Flame) में आकृतियों के जाल से मुक्त होकर हमारा चिर शाश्वत शून्य से साक्षात्कार तब भी कराती थी आज भी कराती है। मदनलाल नागर प्रशिक्षण के दौरान वाश शैली के चित्र बनाते तो जरुर हैं किन्तु अपने जन्मस्थल एव प्रारम्भिक मकान तक जाने वाली चक्करदार गलियो को भूलते नहीं हैं और जब इन सँकरी गलियो को सिटीस्केप मे लेकर आते हैं तो उनके अन्वेषी दिमाग से मार्गदर्शित होकर उनके रंग और तूलिका 170×115 सेमी० के कैनवस पर एक विराट आधुनिक संसार की रचना कर देते है, जिसकी विराटता से घबरा कर ऑखे बंद कर लेने की अपेक्षा पूरे आत्म विश्वास के साथ उन सँकरी किन्तु विराट जगत की विराट शख्सियत (मदनलाल नागर) तक ले जाने वाली गलियों में प्रवेश कर लेने की जरूरत हैं। जहाँ से उत्तर प्रदेश का आधुनिक कला जगत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय आधुनिक कला जगत भी समृद्ध होता है।

असित कुमार हल्दार

जन्म	:	10 सितम्बर 1890
शिक्षा	:	कलकत्ता स्कूल ऑफ आर्ट
गुरू	:	अवनीन्द्र नाथ टैगोर
मुख्य कार्य	:	जोगीमारा गुफा चित्रों की अनुकृति 1914
	:	बाघ भित्ति चित्रों की अनुकृति 1917-1921
संग्रह	:	ब्रोस्टन म्यूज़ियम, लन्दन
	:	विक्टोरिया एण्ड अलबर्ट म्यूज़ियम, लन्दन
	:	इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद
	:	इन्डियन म्यूज़ियम कलकत्ता
	:	श्री चित्रालयम्, त्रिवेन्द्रम
	:	रामास्वामी मुदालियर संग्रह, मद्रास

सम्मानित पद	: अध्यक्ष, कलाभवन, शान्तिनिकेतन 1912-15-,1920-23
	: जयपुर स्कूल ऑफ आर्ट 1923-1924
	: प्राचार्य, कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ 1925-45
विदेश गमन	: लन्दन, 1923
देहावसान	: 13 फरवरी 1964, लखनऊ

असीत कुमार हल्दार :-

"अपनी आनन्दानुभूति में जब कलाकार डूब जाता है तो अनायास उसमें आन्तरिक परिवर्तन होने लगता है। उसका सौन्दर्य बोध अधिक गहन हो जाता है, उसका हृदय अधिक संवेदनशील और भावनाएँ अधिक पावन, अर्थात् सृजन द्वारा जहाँ वह संसार को अपने आनन्द का दान करता है वहाँ दूसरी ओर सृजन प्रक्रिया द्वारा उसका आत्मविकास भी होता है।[1]

असीत कुमार हल्दार ऐसे ही स्वयं सिद्ध कलाकार थे। इनका जन्म कलकत्ता के एक पुरोगामी परिवार में सन् 1890 में हुआ था। हल्दार मोशाय ने अपनी लगन तथा अनथक साधना से स्वयं में अनेक कलाओं का विकास किया। वे एक कल्पनाशील भावप्रवण चित्रकार होने के साथ-साथ अच्छे शिल्पकार कला, समालोचक, कवि, विचारक एवं दक्ष शिक्षक भी थे।

चित्रकला में पश्चिमी अंधानुकरण की परिपाटी को तोड़कर भारतीय चेतना का संचार करने वाले अप्रतिम कलागुरु अवनीन्द्र नाथ ठाकुर की शिष्य परम्परा में असीत कुमार हल्दार का नाम गर्व तथा गौरव के साथ लिया जाता है। वे बाल्यकाल से ही अवनी बाबू के निर्देशन में कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पहुँच गये थे।

असीत कुमार हल्दार के पिता श्री राखाल दास हल्दार जो प्राचीन भारतीय परम्परा, पुराण एवं इतिहास के पक्षधर थे, चाहते थे कि उनका पुत्र श्रेष्ठ भारतीय वातावरण मे

---

1 कला (शांति की खोज) ले० उर्मिला जैन, पृष्ठ स० 87 वर्ष- 1967

सस्कारित हो। अतः उन्होने अपने पुत्र को अवनीन्द्र नाथ के स्नेह संरक्षण में कला शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

अवनी बाबू के यहाँ इन्हे नन्दलाल बोस सुरेन्द्रनाथ गांगुली, शारदा चरण उकील जैसे प्रतिभावान शिक्षार्थियों का साथ मिला, जिन्होने चित्रकला के अभ्यास को अपने जीवन का उद्देश्य बनाया था।

कला के प्रति इनका रुझान बढ़ाने में बंगाल के पटुओं की भी प्रेरणा रही है। वर्ष 1923 में विलायत से लौटकर इन्होंने राजस्थान एवं लखनऊ कला विद्यालय में अध्यक्ष पद पर कार्य किया। लखनऊ कला विद्यालय के पहले भारतीय प्रधानाचार्य (1925–45) होने का गौरव इन्हें ही प्राप्त है। प्रारम्भ में इन्होंने म्यूरल में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। कुमारिल स्वामी के शब्दो में — "असीत हल्दार के चित्रों में पार्श्व से ऊपर की ओर उठने वाली धूमिल सी रेखाये और कोमल मृदु रंग कविता की तरह फैल जाते है। रेखाओं और रंग विधान में सादगी, सरलता और चारू भव्यता है। अपनी विशिष्ट शैली से हटकर उन्होंने भावात्मक विषयो को भी भौतिकवादी पद्धति से निरुपित किया।"[1] रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक बार हल्दार को पत्र में लिखा था—" तुम केवल चित्रकार ही नही हो कवि भी हो। यही कारण है कि तूलि से रसधारा झरती है"[2] हल्दार लोकप्रिय कलाकार थे, कवि, गीतकार और निबन्धकार भी थे और इन्होंने अनेक पुस्तके भी लिखीं। 13 फरवरी वर्ष 1964 मे इनका निधन लखनऊ में हुआ।

श्री हल्दार के अनुसार एक अच्छा कलाकार कला की ही शैली से सन्तुष्ट नही होता वरन वह सर्वदा अपनी कला से सतत नये-नये माध्यमों की अभिव्यंजना अथवा नई-नई अभिव्यंजनाओं में नये नये माध्यमों का समावेश करना चाहता है। कला के क्षेत्र में वही कलाकार जागृति उत्पन्न कर सकते हैं जिनमें स्वयं अभिव्यंजना के क्षेत्र के विस्तार की

---

1 आधुनिक कला कोश, ले० वि० भारद्वाज, पृष्ठ स०— 484

2 वही

इच्छा हो, जिनसे शिष्यो को प्रेरणा प्राप्त हो तथा जो मात्र, अनुकरण पर ही अवलम्बित न हो।"[1]

असीत कुमार ने जीवन तथा प्रकृति से भी बहुत कुछ सीखा था। अतः उन्हे अपनी कला को मौलिक गुणो से सजाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। कला क्षेत्र में उन्होने अनेक प्रयोग किये। तैलरंग, जलरंग आदि विभिन्न माध्यमों से चित्र बनाकर उन्होंने अपने लिये उपयुक्त माध्यम की तलाश जारी रखी।

उन्होंने जो भी चित्रांकन किया उसे अपनी ही कमनीय कल्पना से सजाया। यद्यपि वे रूप प्रदान कला के समर्थक थे तथापि उन पर किसी नई पुरानी चित्रशैली की नकल का आरोप नही लगाया जा सकता।

हल्दार मोशाय ने अपने चित्रों के लिए विषयों का चुनाव भारतीय इतिहास, पुराण तथा समकालीन सामाजिक जीवन से किया। जिन प्रसंगों ने उनके कलाकार ह्रदय को छुआ, उन्हीं पर वे चित्र बनाने बैठ गये। उनकी कला संवेदना का यह एक उल्लेखनीय पहलू है कि मात्र बारह वर्ष की आयु मे ही उन्होंने महाभारत के प्रसंग "द्रोणाचार्य द्वारा अर्जुन को धनुर्विद्या का दान" पर सुन्दर चित्र का सृजन किया । बाद में ते वो पौराणिक तथा ऐतिहासिक चित्रों में बड़ी लगन के साथ जुट गये। अशोक वन में सीता, रामलीला, कृष्ण और यशोदा यशोदा नन्दन, दमयंती, ध्रुव आदि अनेक चित्र उन्होंने बनाये। भगवान बुद्ध के जीवन प्रसंग को लेकर उन्होंने कोई तीस चित्रों की एक श्रृंखला बनाई। ये सभी चित्र उनकी कल्पना शीतलता, श्रेष्ठ रेखांकन क्षमता तथा प्रभावशाली रंग योजना के प्रतीक है। विभिन्न भावों के अनुरूप चित्र में रेखाओं तथा रंगों का चयन करने में असीत कुमार अत्यन्त दक्ष थे। उनके सभी चित्रों में हमे भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग का परिचय मिलता है।

यह सही है कि उनकी कला रुपवादी सज्जा से युक्त थी, किन्तु उन्होंने पूर्व अथवा पश्चिम कहीं की भी कला से सीधे प्रभावित होकर अपने चित्रों की रचना नही की। अपने

---

1 ललित कला की धारा, ले० असीत कुमार हल्दार, पृष्ठ स०-09

चित्रो मे सदैव उन्होंने कवि सुलभ कल्पना से काम लिया और उसे मौलिक गुणों से परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया।

हल्दार मोशाय के चित्रों को प्रकाशन तथा प्रचार भी मिला। अनेक ग्रन्थो मे उनके चित्र सम्मिलित किये गये जिनमे आनन्द कुमार स्वामी तथा सिस्टर निवेदिता द्वारा लिखित 'मिथ्स ऑफ हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट' प्रमुख हैं।

कला शिक्षण में इनकी गहरी दिलचस्पी थी। राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट्स मे उन्होंने अनेक वर्षो तक अध्यापन कार्य किया। प्राचार्य पद पर रहकर उक्त कला शालाओ के विकास में भी पर्याप्त योगदान दिया। इलाहाबाद के सग्रहालय में हलदार की प्रतिमा को स्थान देकर उत्तर प्रदेश सरकार ने उन्हें विशेष सम्मान प्रदान किया है।

हल्दार मोशाय संस्कृत भाषा के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने कविताओं तथा गीत रचना के साथ अनेक मंच नाटकों की रचना भी की। कला तथा दर्शन पर कई समालोचनात्मक निबन्ध लिखे। 'मेघदूत' तथा ऋतु संहार का उन्होंने बागला में अनुवाद किया तथा सस्कृत में अनेक श्लोको की रचना की।[1]

'कला में भावाभिव्यंजना' विषय पर अपने वक्तव्य में श्री 'गोपाल मधुकर चतुर्वेदी' ने असीत बाबू को आत्मलीन कलाकार कहा है। उन्होंने यह भी कहा कि हल्दार मोशाय की कृतियॉ देखने में सुन्दर नही कही जा सकतीं और यह सत्य है भी क्योंकि उनकी ये निर्दोष कृतियॉ उनकी अनुभूति की गहनता पर आधारित होती हैं, उनमें बाह्य सौन्दर्य को महत्व नही दिया गया है। सृष्टा कलाकार तो ऋषियों की भांति अपने समक्ष प्रकट सौन्दर्य का आनन्दोपभोग करता है और उसी की गहन अनुभूति को कृति का रूप देकर विश्व को सौप देता है। हल्दार मोशाय ने स्वान्त: सुखाय सृष्टि की है किन्तु उनकी कृतियों में लयात्मक ध्वनि, रेखा, रंग, आयतन, दिक्, प्रकाश और छाया का घुमाव व कोणो के द्वारा विन्यास होता है। उनकी कृतियाँ उनके अन्तर्तम की प्रेरणा और सदेच्छाओं के आधार पर रूपायित

---

1 आधुनिक चित्रकला के आधार स्तम्भ, ले०– प्रेमचन्द्र गोस्वामी पृष्ठ स० 27

हुई है, इसीलिए वे श्रेष्ठ हैं। हल्दार मोशाय स्वयं कहते हैं—" कला प्रेरणा, किसी विशेष युग व सिद्धान्त से सीमित नहीं है, कला प्रगतिशील तथा उत्पादक अन्तः प्रेरणा है और मानव-जाति की उत्पत्ति के समय से अभिव्यक्ति खोजने वाली आदिम प्रेरणाओ में से एक है।"[1]

हल्दार मोशाय ने जो कुछ कहा उसे किया भी और जिया भी। उनके प्रारम्भिक चित्रों में जो बुनाई सच्चाई दिखायी पड़ती है वही अन्त तक दिखाई पडती है। हॉ उनके प्रारम्भिक कार्यो मे और आगे के कार्यो में इतना ही फर्क दिखाई देता है कि पहले वे परम्परा को लेकर चलने वाले पुनर्रूत्थानवादी कलाकार थे बाद में वे भारतीय लोक कला से प्रभावित आदर्शवादी कलाकार सिद्ध हुए। वे ऐसे पथ प्रदर्शक कलाकार थे जिन्होंने भारतीय कला को नये आयाम प्रदान किये। उन्होंने आगाह भी किया कि पाश्चात्य देशों की आधुनिक कला का अनुकरण करने के लिए जानबूझकर कोई कलात्मक आन्दोलन आरम्भ करने की आवश्यकता नही है, बल्कि कला द्वारा आत्माभिव्यंजना तथा कल्पना की आन्तर्सारगर्भिता का फिर पता लगाना आवश्यक है। जो कि पूर्वीय तथा पाश्चात्य देशो की पुरानी रीतियो से उत्कृष्ठ हो सके और इस संत्रस्त विश्व में एक आत्मिक अनुरूपता व शांति की स्थापना कर सके।[2] श्री गोपाल मधुकर चतुर्वेदी के अनुसार— "हल्दार मोशाय सत्य ही सिद्ध कलाकार थे, अभिव्यंजना में सशक्त मौलिक और शुद्ध भारतीय थे।" [3]

श्री असीत कुमार हल्दार के चित्रों में रंग चटख होते हुए भी आंखों मे चुभते नही है, ये चटकीलापन चित्र में सुनहरे रंगों के प्रयोग से आया है।

प्रारम्भ में इन्होने वाश शैली के या टेम्परा के जो चित्र बनाये हैं वे आकृति प्रधान है किन्तु आगे चलकर ये आकृतियाँ कम सजावटी और सरल होते होते कहीं कहीं किन्ही चित्रों में सिर्फ प्रतीक है। 'वेलोसिटी' या 'इन्टर्नल फ्लेम' जैसे चित्रो में रगों के धुमावदार गुबार से ही चित्र की संप्रेषणीयता को बल मिलता है।

---

1 क्रियेटिविटी एण्ड कन्टेम्पोरेरी आर्ट इन इण्डिया, पृष्ठ सं०-48

2 क्रियेटिविटी एण्ड कन्टेम्पोरेरी आर्ट इन इण्डिया, पृष्ठ स०-48

3 वही

'जगई-मघई' नामक चित्र में अजंता शैली के समान आकृतियाँ हैं किन्तु फिर भी रगो का सपाट प्रयोग इन्हें मौलिकता प्रदान करता है।

प्रख्यात विद्वान वाचस्पति गैरोला के अनुसार—"इनकी कलाकृतियों मे पुनरुत्थान संघर्ष और परम्परा का समन्वय है।"[1] अनेक उच्च कोटि के चित्रों का निर्माण करने के अतिरिक्त हल्दार मोशाय ने अजन्ता, बाघ तथा जोगीमारा (1910-14 के मध्य) आदि के गुफाचित्रों की प्रतिकृतियॉ उतारीं। उन्होंने लकड़ी, रेशम तथा अन्य माध्यमों पर भी सफल प्रयोग किये हैं। इनके प्रकृति चित्र बड़े ही आकर्षक हैं। उनका रग विधान प्राचीन भारतीय शैली का है, विशेषत: राजपूत और मुगल शैली का है।

यूँ तो इनके चित्रों का विषय प्राय: पौराणिक हुआ करता है, किन्तु 'लोहे का व्यापारी' जैसे चित्रों का निर्माण कर उन्होंने पौराणिक परिवेश में आधुनिक जीवन की यथार्थता को भी अत्यन्त कौशल के साथ व्यक्त किया है।

बगाल स्कूल के यशस्वी चित्रकारो मे से एक श्री असीत बाबू ने निंरतर अनेक वर्षो तक भारतीय कला की सेवा की, जिससे प्रेरित हो देश के विभिन्न भागो में अनेक कलाकारों द्वारा सृजन हो रहा है।

क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार

जन्म	:	1891 पश्चिम बगाल
शिक्षा	:	शान्तिनिकेतन, 1909
कलागुरू	:	अवनीन्द्र नाथ टैगोर
उत्तर प्रदेश आगमन	:	1942
शिक्षण	:	इन्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट कलकत्ता
	:	इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
संग्रह	:	इन्डियन म्यूजियम, कलकत्ता

---

1 भारतीय चित्रकला, पृष्ठ स०-262

: श्री चित्रालयम्, त्रिवेन्द्रम

: भारत कला भवन, बनारस

: आशुतोष म्यूजियम, कलकत्ता

: कस्तूर भाई लाल भाई संग्रह

मृत्यु : 9 फरवरी, 1975

क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार :-

आचार्य क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार एक युग विशेष के चित्रकार रहे हैं। बंगाल मे कला के पुनर्जागरण मे जिन कलाकारों या कलाचार्यो का विशेष योग रहा है उनमे मजुमदार साहब का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। उनकी गति मन्द थी किन्तु कला क्षेत्र मे वे गम्भीर विश्लेषण के बाद आगे बढ़े। रचना प्रक्रिया एवं तकनीकी दृष्टि से उनके चित्रो मे विविधता है।

आधुनिक चित्रशैली की पुरानी पीढ़ी के कलाकारों में श्री मजुमदार का नाम उल्लेखनीय है। इनकी कला मे धार्मिक विचारों की प्रमुखता है, विशेषत: बंगाल के वैष्णव सत चैतन्य महाप्रभु की भावमयी लीलाओं का प्रदर्शन। उनके चित्रो की आकृतियों और भंगिमाओ में व्यजनावृत्ति की नवीन प्रभावोत्पादकता है। उनके चित्रों में रंगों की सूक्ष्मता और रागात्मकता है। 'चैतन्य का गृहत्याग' शीर्षक का चित्र रचनात्मक दृष्टि से अपनी परम्परा का श्रेष्ठ चित्र है उसकी रंग योजना और मुखमुद्रा द्वारा उदास मोहक और वैराग्य के गम्भीर वातावरण का समुचित भाव दर्शाया गया है।

मजुमदार साहब ने कुछ आलंकारिक ढंग के चित्र भी बनाये हैं। 'यमुना और शकुन्तला' शीर्षक चित्र इसी कोटि के हैं। इस प्रकार के चित्रों में आलंकारिक सरसता के साथ साथ गीतात्मक रूझान भी है। पौराणिक प्रतिमाओं को लेकर बनाये गये, श्री मजुमदार के चित्रों में भावोत्पन्नता और मर्यादा का समन्वय दर्शनीय है। कलाचार्य मजुमदार की शैली के सुनिश्चित आधार है, जिसमें परम्परा का पालन और शास्त्रीय दृष्टि का निर्वाह देखने को

मिलता है। उनकी कला के उन्मेष और उसकी प्रौढ़ावस्था मे निरतर गतिशीलता है। उनकी कला साधना की यह एक विशेषता ही कही जायेगी।[1]

श्री मजुमदार ने एक 'कवि हृदय कलाकार' के रूप में भी विशेष ख्याति अर्जित की। जया अप्पासामी के अनुसार, " क्षितीन्द्र नाथ बंगाल स्कूल में एक बड़े चित्रकार थे—भले ही वे बहुत गव्यात्मक या ग्रहणशील नही थे। परम्परागत शिल्पियों की तरह उन्होंने भक्तिमार्ग चुना। प्रेम की एक मीठी उदासी उनकी कला मे है।"[2] जिसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इनके द्वारा बनाये गीत गोविन्द पर आधारित चित्रो में हैं।

श्री क्षितीन्द्र बाबू का जन्म 1891 ई० में पश्चिम बगाल के मुर्शिदाबाद जिले मे निमतीता नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता श्री केदार नाथ मजुमदार जगताई में सब रजिस्ट्रार थे। मात्र एक वर्ष की शैशवावस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। बचपन में प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ चित्रकला में विशेष रूचि होने के कारण चौदह वर्ष की आयु में इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और चित्रकला मे अपना मन लगाया। सन् 1909 में ये कलकत्ता कला विद्यालय मे प्रविष्ट हो गये और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का शिष्यत्व प्राप्त किया। वर्ष 1909-10 में रॉयल कालेज ऑफ आर्ट्स लन्दन के अध्यक्ष श्री रोथेन्स्टीन भारत भ्रमण करते हुए कलकत्ता कला-विद्यालय भी गये। रोथेन्स्टीन महोदय विद्यार्थी मजुमदार के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने दस रूपये प्रतिदिन देकर उनके तीन स्केच बनाये और अन्तिम दिन मजुमदार का "राधा का अभिसार" चित्र एक सौ रुपये में क्रय कर लिया। श्री रोथेन्स्टीन को छात्र क्षितीन्द्र के मुख पर गौतम बुद्ध जैसी शान्ति का अनुभव होता था। श्री मजुमदार की रुचि चैतन्य विषयक चित्र बनाने में थी। श्री मजुमदार कीर्तन के सुन्दर पद भी गाते थे। छः वर्ष तक अध्ययन करने के उपरान्त क्षितीन्द्र बाबू इण्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट कलकत्ता में शिक्षक के पद पर नियुक्त हो गये तथा कुछ समय पश्चात् प्रधान शिक्षक बना दिए गये। अवनीन्द्र नाथ टैगोर इन्हे

---

1. भारतीय कला, ले० वाचस्पति गैरौला, पृष्ठ स०- 263

2 आ० कला कोश, वि० भारद्वाज, पृष्ठ स०

'चैतन्य-सिद्ध कलाकार कहते थे। क्षितीन्द्र द्वारा अंकित चित्र वायसराय लार्ड हार्डिन्ज, लार्ड रोनाल्डशे आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने खरीदे।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डा० अमरनाथ झा जब इग्लैण्ड गये तो वहाँ उन्होंने बंगाल के भूतपूर्व अंग्रेज गर्वनर सर रोनाल्डशे सग्रह मे क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार के कुछ चित्र देखे। डा० झा उन चित्रो को देख अत्यन्त प्रभावित हुए। भारत लौटने पर डा० अमरनाथ झा ने श्री मजुमदार को आमंत्रित कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में चित्रकला की शिक्षा का सूत्रपात किया। 1 सितम्बर 1942 को वे इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए। इण्डियन प्रेस इलाहाबाद के मालिक श्री हरिकेशव घोष ने क्षितीन्द्रनाथ से गीत गोविन्द तथा चैतन्य के जीवन से सम्बन्धित चित्र बनाने का आग्रह किया। इनमें से कुछ चित्र इण्डियन प्रेस द्वारा ''चित्रे-गीत-गोविन्द'' नामक चित्रावली के रूप में प्रकाशित भी किये गये इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ 1949, 1963 तथा 1964 में आयोजित की गई। बंगाल काग्रेस कमेटी ने 1963 मे उन्हें अशोक स्तम्भ के पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया।

वर्ष 1964 तक श्री मजुमदार इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षक रहे और अवकाश ग्रहण करने के पश्चात अन्तिम सांस तक इलाहाबाद मे ही रहे। दिनांक 09-02-1975 को इनका देहावसान हो गया।

श्री मजुमदार की कृतियाँ भावों से परिपूर्ण हैं। जिनमें राधा-कृष्ण की भक्ति की ही विभिन्न मानसिक अवस्थाओं का अंकन किया है और जो प्राय: चैतन्य के विचारों पर आधारित है। मुख्यत: इनकी कला आकृति-रचना से ही प्रेरित है। तकनीकी प्रयोगों की अपेक्षा वे भावानुभूति की गहराई पर अधिक बल देते थे। वे अपने संपूर्ण जीवन काल में एक सीधे सच्चे मार्ग पर चलते रहे।

श्री क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार अपने गुरू श्री अवनी बाबू के प्रति पूर्णत: समर्पित होने के बावजूद भी कभी भी उनकी चित्रशैली की नकल नहीं कर सके बल्कि उन्होंने सर्वथा अपनी एक मौलिक शैली की उद्भावना की। उनके चित्रों की आकृतियाँ बंगाल के लोक जीवन से प्रेरित हैं। इन्हीं के द्वारा उन्होंने रामायण तथा महाभारत जैसे महाकाव्यों के पीछे छिपी मूल भावना को व्यंजना प्रदान की है। उनके व्यक्तित्व का सच्चा प्रतिबिम्ब, 'राधा' के रूप में

मिलता है। उन्होंने अन्य नारी पात्रों में भी राधा की ही झाकी देखी है जो उनके 'रासलीला' नामक चित्र से पूर्ण स्पष्ट है। उनके चित्रों में मानवाकृतियों के साथ वृक्षों लताओ तथा कुटियों का बड़ा ही संगतिपूर्ण संयोजन हुआ है। चमकदार, कोमल तथा पारदर्शी रगो और विशेष रूप से मुक्ता की आभा के समान श्वेत रंग के प्रयोग से वे चित्रो में सगीतमय वातावरण का सृजन कर देते हैं। इनके रेखांकन भी अद्वितीय है। मजुमदार के चित्रों का सयोजन प्राय: ऊर्ध्व और असम्मात्रिक है। सरल पृष्ठभूमि के आगे आकृतियाँ प्राय: सम्मुख स्थितियों में दिखाई गई है, जो कोमल भावपूर्ण तथा लम्बी है। केश तथा वस्त्र काल्पनिक और सुन्दर फहरानयुक्त है — साथ ही इनमें बहुत विवरण नही है।[1]

जया अप्पा सामी के अनुसार "श्री मजुमदार प्राय: किसी घटना की मन: स्थिति का अंकन करते हैं। उनके विषय चयन तथा प्रस्तुति में संगीतात्मकता रहती है, सन्त कवियो के गीतों के समान।"[2]

इनके रंगों का संयोजन अत्यन्त सहज होता था और सवेगों की तीव्रता उनके किसी रंग में नही थी। हल्का पीला, हरा, लाल और गेरूआ उनके प्रिय रंग थे। उनके रग तथा रेखाएँ एक अन्तिरिक लय से बंधी थीं उनके चित्रोत्कर्ष को स्वीकार करते हुए उनके गुरू अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा था– "क्षितीन्द्र हमारा शिष्य है, लेकिन अपनी रेखाओ और रंगो के संयोजन में इतना कोमल, इतना सजग है कि हमसे भी आगे बढ़ गया है।"[3]

क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार के चित्र भी परम्परागत सांचे में ढले प्रतीत होते है। उन्हें सबसे ज्यादा सफलता तब मिली जब वे स्वयं को बंगाल के चैतन्य के रूप में व्याख्यायित करते हुए चित्र रचना करते है। उन्होंने पौराणिक देवी देवताओं को एक नया रूप देकर उन्हें लोगो के करीब तक पहुँचाया।[4] श्री मजुमदार चित्रकला में स्वच्छन्दता के विरोधी थे और तथाकथित तत्कालीन आधुनिक कला भी उन्हें कभी रास नहीं आयी किन्तु फिर भी उन्होंने किसी

---

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला, ले० डा० गिर्राज किशोर अग्रवाल, पृष्ठ स०- 68

2 वही पृष्ठ स०-69

3 स्वतत्र भारत, 27 जून 1994, उपहार, पृष्ठ स०-3

4 पोर्टफोलियो ऑफ कन्टेम्पोरेरी पेन्टिग्स, ललित कला अकादमी दिल्ली, भूमिका से

परम्परागत शैली का अनुकरण कभी नही किया। प्रेरणा की दृष्टि से अवश्य वे भारत की शास्त्रीय कलाओं से प्रभावित थे।

इनके द्वारा निर्मित चित्रो के सन्दर्भ मे श्री अघेन्द्र कुमार गंगोपाध्याय ने कहा है कि— ''इनके चित्र सभी श्रेणी के रूप रसिकों का मन अवश्य ही जीत लेगें। कारण 'गीत गोविन्द' की पदावली को चाक्षुष रूप देने मे इस प्रतिभाशाली चित्रकार ने ऐसे रेखावर्ण की सुमधुर आगिक सृष्टि की है, जिसके माध्यम से - उपयुक्त परिवेश में आपात रमणीय 'कामुकता' वर्जित करके — एक शुचिस्मित (पवित्रता पूर्ण) सुरूचिपूर्ण भाषा में एक पवित्र निर्मल रस में स्नात् होकर 'गीतगोविन्द' ने सम्पूर्ण नवीन कलेवर धारण किया है, जिसमें 'कामगन्ध' का जरा भी भान नहीं होता।''[1]

'चित्रे गीत गोविन्द' नामक पुस्तक (चित्रावली) में मुखपृष्ठ मिलकार 17 चित्र है। मुखपृष्ठ में श्रीकृष्ण को बांसुरी लिए हुए पत्थरों पर शान्त विचार युक्त मुद्रा में बैठे दिखाया है। इसमें पीले, लाल नीले एव हरे रंगों का प्रयोग बहुत ही कोमलता से हल्की आभा के साथ किया गया है।

चित्रावली के भीतर प्रथम चित्र 'जयदेव व पद्मावती का है। कहा जाता है कि जब जयदेव श्री राधाकृष्ण के मान के विषय में लिख रहे थे उसी प्रसंग को यहाँ श्री मजुमदार ने भावपूर्ण अभिव्यक्ति दी है। इस चित्र मे कवि बने भगवान की मुखमुद्रा पूरे चित्र का आकर्षण है। वाश शैली मे बना ये चित्र भगवान के दुपट्टे के फोल्ड और जाघों में ज्यामितीय प्रभाव लिए हुए हैं जो आधुनिकता का संकेत है।

दूसरा चित्र कृष्ण और राधा का है, तीसरा वसन्त ऋतु में विरहणी गोपियों के साथ कृष्ण का है, चौथा रासलीला का है, पॉचवा राधा और उसकी सखी का, छठा मदनवाण से जर्जरित मधूसूदन श्रीकृष्ण का है इस चित्र में वृक्ष के द्वारा विरह की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है, सातवाँ चित्र प्रेमोन्मत्त कृष्ण से राधा की सखी के वार्तालाप का है, आठवाँ चित्र सखी

---

1 चित्रे गीत गोविन्द', ले० श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, पृष्ठ स०– भूमिका से–

और राधा का है। नवे चित्र मे सखी विरहणी राधा की दयनीय दशा कृष्ण को बता रही है, दसवें चित्र मे कृष्ण का इन्तजार करती राधा का चित्रण है, ग्यारहवे चित्र में दूसरे दिन प्रात: काल कृष्ण राधा के पास आकर पिछली रात न मिलने के लिए क्षमा याचना करते चित्रित है। 'कलहान्तरिता' नामक बारहवें चित्र में दु:खी राधा को समझाती सखी के साथ दरवाजे की ओट में छिपकर बातें सुनते श्री कृष्ण का अत्यन्त भावपूर्ण चित्रण हुआ है। तेरहवॉ चित्र श्रीमती राधा के मान भञ्जन का है।— इस चित्र मे राधा के चरणों पर गिरकर श्रीकृष्ण भगवान उनसे अभिमान त्याग कर प्रेम की बात करने को कह रहे हैं। मानमनुहार के इस चित्र मे श्री मजुमदार ने वृक्ष को भी रक्तिम वर्ण दिखाकर प्रेम की सफल अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। चौदहवॉ चित्र 'सानन्द गोविन्द' का है— इसमे कृष्ण राधा के प्रति समर्पित दिखाये गये हैं। पन्द्रहवें चित्र मे राधा कृष्ण के विलास का चित्रण है। सोलहवॉ चित्र श्रीमती राधा के ललाट पर श्री कृष्ण द्वारा तिलक रचना का है।

अतिरिक्त इसके इलाहाबाद संग्रहालय में इनके 'समर्पण' एवं 'मीराबाई' नामक चित्रों में भी प्रेम और भक्ति का अनोखा मेल देखा जा सकता है।

श्री मजुमदार के चित्रो की सादगी हॉथ-पैरों का, वृक्षों का और कहीं-कहीं सम्पूर्ण आकृतियो का अतियथार्थवादी अंकन इनके भीतर की मौलिकता से उपजी आधुनिकता का द्योतक है। भले ही इन्होंने धार्मिक या पौराणिक पात्रों को विषय रूप में क्यों न चुना हो किन्तु संप्रेषणीयता की बात आने पर ये चित्र अत्यन्त करीबी तरह से स्वीकारे जाते है। मजुमदार साहब ने आधुनिकता के नाम पर चल रहे भ्रमित अमूर्तन से चित्रकला को दूर रखा जिस कारण इन्हें प्रारम्भ में आधुनिक चित्रकार मानने में कुछ लोगों को आपत्ति हुई किन्तु आज इनके चित्रों का पुनर्मूल्यांकन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि आधुनिकता के बीज तो इनमें बोये जा चुके हैं।

श्री मजुमदार ने बंगाल शैली के वस्त्रविन्यास में परिवर्तन किया, परम्परागत मुगल एवं राजस्थानी चित्रों की भाँति वस्त्र न बनाकर बंगाल में पहनी जाने वाली धोती आदि अपने चित्रित पात्रों को पहनाकर एवं मुखाकृति में परिवर्तन किया।

इस प्रकार से परम्परा मे परिवर्तन द्वारा इनके चित्रों को आधुनिकता की ओर अग्रसर माने तो गलत न होगा।

शैलेन्द्र नाथ डे

जन्म	-	7 जुलाई, 1891
शिक्षा	-	शान्ति निकेतन
गुरू	-	अवनीन्द्र नाथ टैगोर
शिक्षण	-	बनारस कला भवन
		इन्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट कलकक्ता
		जयपुर स्कूल ऑफ आर्ट, जयपुर
सम्मानित पद	-	अध्यक्ष राजस्थान ऑफ ला संगठन, जयपुर
संग्रह	-	भारत कला भवन, वाराणसी
		जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी, मैसूर

शैलेन्द्र नाथ डे :-

अल्प समय ही उत्तर प्रदेश में रहे शैलेन्द्र नाथ डे के चित्रों में बंगाल शैली का प्रवाह कम होता प्रतीत होता है। इनके चित्रों में राजपूत एवं मुगल चित्रों के तत्वों को आसानी से देखा जा सकता है। जैसे, यशोदा कृष्ण नामक चित्रों में। बाद के चित्रों में शरीरिक लय और सजावटी पन दोनो ही प्रकट होते है। शैलेन्द्रनाथ डे के प्रारम्भिक चित्र तो भारतीय पराकथाओं के आधार पर ही बने है। मेघदूत पर आधारित 'यक्ष 'पत्नी' और 'बनवासी यक्ष' चित्रों में ही प्राकृतिक अलंकरण इन्हें परम्परावादी बंगाल शैली के साथ जोड़े हुए है। फिर भी मानव आकृतियों को अलंकरण विहीन चित्रित करके इन्होंने अपने चित्रों में परम्परा से थोड़ा हटकर कार्य किया। नवजागरण काल की कला के प्रारम्भिक चित्रकार के रूप में और अवनी बाबू के शिष्य के रूप में, उनके द्वारा प्रतिपादित बंगाल शैली के प्रचार प्रसार में शैलेंन्द्रनाथ डे के अप्रतिम योगदान को सदैव याद रखा जायेगा।

शान्तितनिकेतन से निकलकर जयपुर (राजस्थान) मे शैलेन्द्र नाथ डे ने अपनी सेवाये दी और वहाॅ से अवकाश ग्रहण, करके ये इलाहाबाद में रहे, जहाॅ इन्होने 'भारतीय चित्रकला पद्धति' नामक पुस्तक का तीसरा संस्करण कला प्रेमियो के समक्ष प्रस्तुत किया जो वर्ष 1957 में राम नारायण लाल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया। यह पुस्तक श्री डे ने चालीस के दशक में ही लिखी थी जिसकी प्रस्तावना में श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहा था,'' मेरे लिए यह प्रथम अवसर है जबकि मैने चित्रकला विषय पर इस प्रकार की सरल हिन्दी मे लिखी हुई पुस्तक देखी है। मैने बगला भाषा में भी इस प्रकार की पुस्तक नहीं देखी''

शैलेन्द्र नाथ डे के अनुसार-''नाना प्रकार के चित्रो की टेकनीक समझने से ही चित्रकला मे सफलता नहीं प्राप्त होती अपितु चित्रो के वास्तविक भाव प्रकाशन पर ही सफलता निर्भर है। भारतीय चित्रकला मे यथार्थ भारतीय भावों का सन्निवेश कराना ही दक्ष कलाकार का मुख्य कार्य है। जो कलाकार अपने चित्रों में रेखा और रंगों द्वारा जितना ही भाव प्रदर्शित करेंगे वे उतना ही गौरव और ख्याति प्राप्त कर सकेंगे।[1]

वर्ष 1957 में जब बंगाल शैली के तमाम चित्रकार पाश्चात्य आधुनिक कला से प्रेरणा लेकर या प्रयोगवादी कार्य कर रहे थे, तब भी श्री डे चित्रकला मे भावो को प्रमुखता से अंगीकार करने की बात कर रहे थे। शैलेन्द्र नाथ डे भारतीय चित्रकला के सदैव पक्षधर रहे और भारतीयता से जुड़कर प्रयोग या परिवर्तन को भी स्वीकारने की बात की। इस दृष्टि से उन्हें आधुनिक युग का आधुनिक चित्रकार कहा जा सकता है भले ही उनके चित्र परम्परागत चित्रण के ही निकट क्यों न हों।

वीरेश्वर सेन

जन्म	:	15 नवम्बर 1897, कलकत्ता
मृत्यु	:	10 सितम्बर 1974
शिक्षा	:	कलकत्ता यूनीवर्सिटी (1921)

---

1 भारतीय चित्रकला पद्धति , शैलेन्द्र नाथ डे, पृष्ठ स0-7

शिक्षण	:	प्रोफेसर (अंग्रेजी) बिहार नेशनल कालेज, पटना 1923-1925
	:	कला विद्यालय लखनऊ - 1926-1952
	:	निदेशक, डिजाइन रिसर्च सेन्टर - 1953-55
	:	निदेशक, सेन्ट्रल डिजाइन सेंटर लखनऊ - 1956-1958
संग्रह	:	जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी, मैसूर
	:	श्री चित्रालयम्, त्रिवेन्द्रम
	:	राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ
	:	राष्ट्रीय आधुनिक कला सग्रहालय, नई दिल्ली
विशेषता	:	अत्यन्त छोटे आकार के चित्रों का सृजन

वीरेश्वर सेन :-

कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ में भारतीय शिक्षकों की पहली पीढी मे श्री हल्दार के साथ श्री वीरेश्वर सेन का नाम अत्यन्त आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। श्री सेन चित्रकार होने के साथ साथ बुद्धिजीवी भी माने जाते रहे हैं ।

वीरेश्वर सेन की कला प्रतिभा पॉच वर्ष की अल्पायु से ही दीवारों पर खिंचती रेखाओं में प्रकट होने लगी थी और इन्होने इडियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट, कलकत्ता में कला शिक्षा प्राप्त की। यहाँ सेन साहब ने जापानी शैली का भी अध्ययन किया और कालान्तर में अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति को ही महत्व दिया। श्री सेन ने वाश शैली के अत्यन्त विशालकाय चित्र भी बनाये और लघु चित्र भी किन्तु लघु चित्रों के माध्यम से ही ये विशेष पहचाने गये ।

आपने प्रकृति चित्रण में तो अपनी सशक्त पहचान बनाई और इनमें भी हिमालय का दृश्य चित्रण और यहाँ का जन जीवन आपको विशेष प्रभावित करता रहा। इस तरह के चित्रों को निकोलस रोरिक ने भी अपनी कला का आधार बनाया किन्तु रोरिक के चित्र जहाँ

टेम्परा पद्धति मे निर्मित कठोर, जीवन से वैराग्य की प्रेरणा देते हैं वहां श्री सेन के जलरगीय हिमालय चित्र जीवन मे भीतर तक प्रवेश करने की इच्छा उत्पन्न करते हैं । साथ ही ये हिमालय चित्र बगाल शैली की वाश तकनीक से हटकर बने है जिनसे उत्तर प्रदेश मे चित्रकारो को मुक्त होकर कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। इनसे प्रभावित होकर ही इनके अनुगामी विश्वनाथ मुखर्जी, बी0 एन0 आर्या आदि चित्रकारो ने वाश तकनीक के विषयो मे परिवर्तन करके उत्तर प्रदेश में आधुनिक एवं समकालीन कला हेतु रास्ता तैयार किया।

''भारतीय कला के पुनर्जागरण क्रम में भी श्री सेन के विशुद्ध दृष्टिकोणों को काफी स्वस्थ एव चेतना के विकास मे महत्वपूर्ण माना गया''[1] इनके चित्रों के विषय रामायण, महाभारत, कालिदास के मेघदूत, जन सामान्य के दैनिक जीवन एव राजा महाराजाओ से सम्बन्धित विषयो पर आधारित रहे हैं किन्तु प्रकृति चित्रण में इन्हे खास दिलचस्पी थी। इन्होंने वाश, जलरग एव टेम्परा को ही माध्यम के रूप में सदैव प्राथमिकता दी और तैल रग में न के बराबर काम किया।

''सेन साहब का अन्तिम चित्र लघु चित्र ही था जिसका शीर्षक था - प्रकाश तुम मुझे अपनी मूर्ति दिखाओ'' इसमें एक सन्यासी खामोशी की कामना करता है।''[2]

इनका चित्र ''पिलग्रिम्स टू अमरनाथ'' जो कि जलरंग में निर्मित है राज्य ललित कला अकादमी में सुरक्षित है। आचार्य ललित मोहन सेन के पूर्व सैंरा चित्रों के प्रणेता के रूप में श्री वीरेश्वर सेन का नाम उभर कर आता है । इनका विशिष्ट योगदान लघु चित्रण के माध्यम से दृश्य चित्रकारी को महत्व दिलाना है।

''सेन जी ने प्रकृति के विस्तार व मौलिकता को कागज के छोटे से फ्रेम में कैद किया। विजिटिंग कार्ड और पोस्टकार्ड आकार में चित्रण करते हुए उसके डिटेलिंग का पूरा ध्यान रखा। स्वाभाविक चित्रण करते हुए परिप्रेक्ष्य, अग्रभूमि आदि को समुचित महत्व दिया।

---

1. कला त्रैमासिक, जनवरी 1975 पृष्ठ स0 19

2 वही

प्राकृतिक दृश्यों मे मानवाकृतियों का प्रयोग भी इस तरह किया है कि सयोजन मे आकारो के सामजस्य मे कोई प्रतिकूल प्रभाव न उत्पन्न हो।"[1]

ललित मोहन सेन

जन्म	:	1900 शान्तिपुर, पश्चिम बंगाल
शिक्षा	:	1912–1917 ललित कला में डिप्लोमा, लखनऊ।
कलागुरू	:	नेथेनियल हर्ड, अग्रेज शिक्षक, प्रथम प्राचार्य
शिक्षण	:	1918 से राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ।
उपलब्धि	:	1923 में भारत सरकार की ओर से वृति
	:	1924 मे रॉयल कॉलेज ऑफ आर्ट्स लन्दन में उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति।
	:	1928 लन्दन के इण्डिया हाउस की भित्ति पर कार्य।
विशेषज्ञता	:	मुखाकृति चित्रण, तैल रंगों में भूखण्ड चित्रण, काष्ठ इन्ग्रेविंग।
सम्मान	:	1926 में चित्रकला एवं उड इन्ग्रेविंग पर रायल कॉलेज ऑफ आर्ट्स की एसोसिएटशिप से सम्मानित किया गया।
सम्मानित पद	:	1926 से अधीक्षक ड्राइंग टीचर्स क्लास, लखनऊ 1942 में अधीक्षक, शिल्पकला विभाग, लखनऊ 1945–1954 तक प्राचार्य कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ
देहावसान	:	2 अक्टूबर, 1954 लखनऊ

---

1 कला दीर्घा, उत्कर्ष प्रतिष्ठान, लखनऊ, पृष्ठ सं0 72

ललित मोहन सेन : -

उत्तर प्रदेश के आधुनिक चित्रकारों की पहली पीढी के महत्वपूर्ण चित्रकार आचार्य ललित मोहन सेन का जन्म आज से 100 वर्ष पूर्व 1900 में शान्तिपुर, जिला नदिया, पश्चिम बंगाल में हुआ था।

यह उत्तर प्रदेश का सौभाग्य था कि 11 वर्ष की छोटी सी ही उम्र में सेन साहब लखनऊ आ गये, और यहाँ ही क्वींस कालेज में दाखिला लिया। स्कूली शिक्षा मे इनका मन कम लगता था। प्रारम्भ से ही कला के प्रति रुचि रही, फलस्वरूप इन्होंने 'राजकीय कला एवं शिल्प विद्यालय' लखनऊ में सन् 1912 में ललित कला में डिप्लोमा हेतु प्रवेश लिया और वर्ष 1917 में इन्होंने कला शिक्षा पूर्ण की।

जिस वक्त सेन साहब कला विद्यालय में अध्ययनरत थे उस वक्त ये विद्यालय अग्रेजो के आदेशानुसार चलता था, फिर भी भारतीय छात्रों मे देश प्रेम की भावना बलवती थी। विद्यार्थी जीवन काल से ही सेन साहब की कला मे मौलिक प्रतिभा एव व्यक्तित्व मे स्वाभिमान दिखने लगा था।[1]

मूल रूप से ललित कला के विद्यार्थी होते हुए भी वे शिल्प और प्रिन्ट मेकिंग मे भी रूचि रखते थे। मूर्तिकार और छायाकार होने के साथ ही एक सफल शिक्षाविद् भी थे। इनकी बहुमुखी प्रतिभा के कारण ही इनकी नियुक्ति वर्ष 1918 मे राजकीय कला एव शिल्प विद्यालय लखनऊ में कला अध्यापक के पद पर हो गई। सेन साहब की लगन, व्यापक दृष्टिकोण एवं कला परख के कारण शुरू से ही इन्हे लोकप्रियता हासिल थी। 1923 मे इन्हें तत्कालीन भारत सरकार की ओर से वृत्ति प्रदान की गयी और इसकेबाद 1924 में रॉयल, कालेज ऑफ आर्ट्स, लन्दन, में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति दी गई, वहाँ इन्हें रेखाओ के 'आचार्य रोथेस्टीन' के ऐतिहासिक विद्यार्थियों में गिना जाता था। इस प्रशिक्षण के दौरान सेन साहब ने मुखाकृति चित्रण, तैल रंगों मे भूखण्ड चित्रण, काष्ठ इनग्रेविंग आदि मे विशेष तकनीकी ज्ञान प्राप्त किया। लन्दन मे रहते हुए ये ब्रिटिश यथार्थ वादी चित्रणो से

---

1 आचार्य ललित मोहन सेन (मोनोग्राफ) पृष्ठ स० 2

काफी प्रभावित हुए थे। मुखाकृतियो में छाया प्रकाश की परिपक्वता हेतु यर्थाथवादी चित्रणो एवं लन्दन की प्रचलित मान्यताओ का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन किया था फिर भी विषय, शैली और संरचना की दृष्टि से इनके भारतीयपन पर किसी भी तरह का प्रभाव नही पडा। वर्ष 1926 में सेन साहब को चित्रकला एवं उड इन्ग्रविग में 'रॉयल् कालेज आफ आर्ट्स की एसोशिएटशिप से सम्मानित किया गया।

लन्दन से लौटने के तुरन्त बाद ही वर्ष 1926 में इन्हे ड्राइंग टीचर्स ट्रेनिग क्लास का अधीक्षक नियुक्त किया गया। अध्यापक के नाते वह कला के व्याकरण और मौलिक दोनो ही पक्षों को समान महत्व देते थे। वे कला की दृष्टि से जितने सहज थे अनुशासन की दृष्टि से उतने ही कठोर थे।

अब तक इनके रग चयन मे सरलता और सजीवता दिखाई देने लगी थी। मानवता एवं भावुकता से लबरेज सेन साहब का मन इनकी कला मे भी झॅकता है। इनकी कला प्रक्रिया जितनी स्पष्टता एव तीव्रता से प्रकाश मे आयी वैसा बहुत कम ही कलाकारो की आ पाती है। यह वह समय था जब बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और शान्ति निकेतन के आगे लखनऊ के कलाकारों को कम महत्व दिया जाता था। किन्तु श्री सेन ने अपनी प्रतिभा के बल पर न सिर्फ अपना बल्कि उत्तर प्रदेश का भी सिर गर्व से ऊँचा किया, जब वर्ष 1928 मे भारत के चार श्रेष्ठ कलाकारों :— सुधांशु चौधरी, रणदा उकील, धीरेन्द्र कृष्ण देव वर्मन के साथ इन्हें भी लन्दन के इण्डिया हाउस की भित्तियों पर चित्र अंकन का कार्य सौंपा गया। इस घटना के बाद से ही लखनऊ कलाविद्यालय निरंतर प्रकाश में आता गया और यहॉ भी भित्ति चित्रों को काफी महत्व दिया जाने लगा।

सेन साहब अध्यापक होने के साथ साथ छात्रों की प्रगति को भी देखा करते थे कठोरता के पार्श्व मे वे उदारता और स्नेह की मूर्ति थे। वे सीखो और सिखाओ की धारणा मे विश्वास रखते थे।

ये कला को मानव पक्ष का यथार्थ और संवेदनशीलता को उसका मूल लक्षण मानते थे। वे स्वय को कलाकार से पहले भारतीय कहने में गर्व का अनुभव करते थे। यद्यपि विश्व की तत्कालीन सृजनशील परिस्थितियों तथा नयी मान्यताओं से वे अनभिज्ञ नहीं थे, परन्तु

उनके भीतर भारतीयता के प्रति विश्वास और दृढ संकल्प था। भारतीय आधुनिक कला के सन्दर्भ मे उनकी कला उस पीढ़ी की अगुवाई करती है, जहॉ यथार्थ के निर्वाह के साथ उसमें मौलिकता के समावेश को विशेष महत्व दिया जाता है। उनकी कला में आज भी वह प्रतिनिधित्व है जो यथार्थ को लेकर नये प्रयोगों की संभावनाओ के लिए प्रेरित करता है। सेन साहब भूत या भविष्य से ज्यादा वर्तमान पक्ष को महत्त्व देना पसन्द करते थे।

इनकी रचना प्रक्रिया इनके अपने मानस छवि या वैयक्तिक अनुभूतियों की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। ये सारी की सारी अभिव्यक्तिया समाज तथा सामान्य लोगों की आकृतियों एवं उनके वातावरण से सम्बन्धित है क्योंकि वे अपनी संरचनाओं मे सौन्दर्य से ज्यादा तकनीक एव भावात्मकता को महत्व दिया करते थे।

भारतीय समसामयिक कला के इतिहास को दोहराते या नये सिरे से शुरू करते समय यह मानकर चलना अनिवार्य होता है कि सेन साहब ने कला के शास्त्रीय और व्यवहारिक दोनो ही पक्षों को लेकर जिन आयामो की प्रस्तुति की है वे प्रयोग और निजत्व की दृष्टि से सदा प्रगति पसन्द शुद्ध भारतीय कलाकार की कृतियाँ मानी जाती रहेंगी।[1]

सेन साहब उडकट, लिनोकट, ड्राइ प्वाइन्ट एचिंग आदि की सशक्त और बारीक लाइनों के लिए भारत में इस विधा के प्रारम्भिक कलाकारों में से प्रमुख थे। भारतीय कलाकारों में सेन साहब रचना की दृष्टि से अमृता शेरगिल की भावुक आकृतियों से मोहित थे। सेन साहब बंगाल स्कूल के यथार्थवाद एवं वाश अथवा टेम्परा विधि से उस तरह से प्रभावित नहीं थे जैसा कि अन्य समकालीन कलाकार थे। ठाकुर शैली के छायावाद ने भी उन्हे प्रभावित नही किया। सेन साहब कला का मूल्यांकन पुरानी परिपाटी या बाह्य रुप की प्रतिष्ठा से अतिरिक्त का किंया करते थे किन्तु विषयों के विकृतीकरण या अमूर्तता में उनका विश्वास नहीं था। वे तो भारतीय आधुनिक कला मे सहजता एव भावात्मकता के पक्षधर थे।

---

1 मोनोग्राफ आ०ल०मो०सेन, संपादक-एन खन्ना, जगदीश गुप्त, पृष्ठ स० - 1

सेन साहब ने जलरंग, तैलरग, काली स्याही, ग्वाश टेम्परा, पेस्टल, क्रेआन, पेन्सिल एव वाश सभी' विधाओं मे कार्य किया है। मुखाकृति एवं प्रकृति चित्रण हेतु वातावरण और अनुभूति के अनुसार माध्यम का चयन करते थे।

सेन साहब यूँ तो बगाल शैली से ज्यादा प्रभावित न थे फिर भी खाली समय मे उनका स्केचिग के लिए बाहर जाना, लहराते खेतो, चिन्तन शील चेहरो इत्यादि को देखकर फौरन रूपांकन करने लग जाना बंगाल शैली के चित्रकारों की भी विशेषता रही है। उनके द्वारा निर्मित कुछेक वाश विधा के चित्र, उन्हे बंगाल शैली से पूर्णतया अलग नहीं कर पाते।

सेन साहब जिन्दगी के तजुर्बो को हासिल करने के लिए यायावरी प्रवृत्ति की अनिवार्यता पर अक्सर जोर देते थे। स्वयं उन्होंने भी बर्मा तिब्बत, आदि का भ्रमण अपनी इसी घुमक्कडी प्रवृत्ति के चलते किया था। नैसर्गिक सौन्दर्य के लिए बद्रीनाथ, केदारनाथ, मनाली, कुल्लू आदि स्थलों पर जाकर कार्य किया।

सेन साहब कला के लिए समर्पित रचनाकार थे, जिस कारण न उनमें दिखाया था और न प्रचार के लिए अधीरता। प्राय: वह अपने चित्रों मे हस्ताक्षर भी नही किया करते थे, किन्तु उनकी कार्यशैली स्वयं मे उनका हस्ताक्षर थी। वे रंगों का चयन एवं उसका इस्तेमाल मौलिकता से करते थे। उनके रंगों में विषयगत भावना और गम्भीर चिन्तन दिखलाई पडता है।

सेन साहब कला और शिल्प दोनों को ही सृजन के लिए एक दूसरे का पूरक मानते थे और यह वह धारण है जिसे आज के समकालीन कलाकार पूरे तौर पर स्वीकार कर रहे हैं। कला एवं शिल्प दोनो मे निपुण सेन साहब को 1942 में लखनऊ कला विद्यालय के शिल्पकला विभाग का अधीक्षक बनाया गया और 1945 में कला एवं शिल्प विद्यालय, लखनऊ का प्रधानाचार्य नियुक्त किया गया।

सेन साहब आधुनिकता के विरोधी नही थे, परन्तु विद्यार्थियों के लिए कला व्याकरण एवं नियमों के अध्ययन के बाद ही समसामयिकता या आधुनिकता के पक्षपाती थे। सेन साहब ने परम्परागत शैलियों के साथ ही नये संदर्भो का भी स्वागत किया। 1947 में भारत के

आजाद होने के बाद विद्यालय परम्परा की लीक से हटकर स्वतंत्र दृष्टिकोण को अपनाने लगा था। यहाँ रचना विधान परम्परा से बहुत जुडा हुआ नहीं था, फिर भी मुक्त कला में सौन्दर्य बोध की नई दृष्टि के लिए भारतीय परम्पराओ का सम्मान दिखलाई पड़ता था।

सेन साहब आजीवन अविवाहित रहे। विद्यार्थियों का समूह इनका कुटुम्ब था और कला जीवन सगिनी। इनके साथ चलते हुए 2 अक्टूबर 1954 को सेन साहब ने अपनी जीवन यात्रा को विराम देकर सदा के लिए यह नश्वर शरीर त्याग दिया।

सेन साहब द्वारा निर्मित वाश एवं टेम्परा चित्र तत्कालीन बंगाल शैली से बहुत भिन्न मालूम पडते हैं। उदा० के लिए **'स्नान गृह में'** नामक चित्र जो वाशविधा मे बना है, को देखें तो उस चित्र की चटख एव सपाट रग योजना एक दम अलग मालूम पड़ती है। और यह चित्र देखने में वाश के बजाय अमृता शेरगिल के चित्रो से मेल खाता ज़्यादा प्रतीत होता है।

इसी प्रकार इनके द्वारा टेम्परा पद्धति में निर्मित चित्र **पनघट से वापसी** भी है। इस चित्र में भी रंग अपनी स्वाभाविक चमक के साथ लगये गये हैं, हाँ पृष्ठभूमि में प्रकृति के चित्रण मे छाया प्रकाश का आभास है। सेन साहब का एक चित्र **'पनिहारिन'** जो कि मोनोक्रोम में बना है इसमे सेन साहब सीधे-सीधे बगाल शैली की महीन रेखाओं से जुडते प्रतीत होते हैं, जैसाकि उनके अन्य समकालीनों के साथ देखा गया है।

इनके चित्रों में मानवाकृतियाँ प्रमुख है। साथ ही **'गली का मोड़'** एवं **'ग्राम दृश्य'** जो कि लिनोकट मे है बहुत ही प्रभावशाली बने हैं। पेंसिल-पेन से बनाये चित्रो मे अभिव्यजना ही प्रमुख है उस वक्त मोहकता का विचार कम किया गया है। जैसे-**पतझड़, चिन्तन, बालिका** आदि चित्रों में।

विनोद बिहारी मुखर्जी

जन्म	:	1904 बेहला (बंगाल)
शिक्षा	:	1917 शान्तिनिकेतन आगमन
	:	1919 कला भवन में प्रवेश
गुरू	:	नन्द लाल बोस

शिक्षण	:	1925 से 1949 तक शान्तिनिकेतन में
विदेश गमन	:	1937–38 जापान
आजीविका	:	1949–50 नेपाल के सरकारी संग्रहालय में क्यूरेटर एवं शिक्षा विभाग में सलाहकार।
	:	1951–52 राजस्थान के वनस्थली विद्यापीठ मे कार्य
	:	1952 – 54 तक मसूरी, उत्तर प्रदेश (अब उतराचल में) अध्यापन
	:	1954 में पटना बिहार मे
	:	1958 में बंगाल वापसी
प्रदर्शनी	:	1921, इन्डियन सोसाइटी ऑफ ओरियन्टल आर्ट, कलकत्ता।
मुख्य कार्य	:	1946–47 में कलाभवन एवं हिन्दी भवन की छत एव भित्ति पर म्युरल निर्माण (शान्तिनिकेतन)
सम्मानित पद	:	1970 फेलो ललित कला अकादमी नई दिल्ली
संग्रह	:	मार्डन आर्ट गैलरी दिल्ली
	:	कलकत्ता
	:	वाराणसी

विनोद बिहारी मुखर्जी :-

'मनुष्य अपनी आत्मा के संस्कार के लिए कला सृजन करता है।'[1] विनोद बिहारी मुखर्जी की कला भी आत्म मथन एवं भावनोद्वेग का ही परिणाम है । यूँ आचार्य नन्दलाल बोस के शिष्य श्री विनोद बिहारी मुखर्जी कलागत नियमों की परिधि में काम करने वाले चित्रकार एवं कला शिक्षक थे । साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरूचि के धनी विनोद

1 आत्मानम् सस्कृरूते., , ऐतरेय ब्राहमण ।

बिहारी अपनी कला मे सम्पूर्ण अनुशासन से कार्य करते थे । बगाल के लोक जीवन मे उनकी विशेष रूचि थी और पर्याप्त संख्या में उन्होने इस विषय पर चित्रांकन किया।[1]

श्री मुखर्जी का जीवन परिचय संक्षेप मे कुछ यूँ है कि बंगाल के बेहला मे 1904 मे इनका जन्म हुआ था, जहाँ अनेकों स्थानीय विद्यालय में इनकी शिक्षा हुई । बीमारी के कारण इन्हे अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ी । 1917 में ये शान्ति निकेतन आ गये । यहाॅ के कला भवन में 1919 में नन्द लाल बोस के प्रतिभाशाली विद्यार्थियो में से एक श्री मुखर्जी ने शान्तिनिकेतन में 1925 से शिक्षण कार्य प्रारम्भ किया । इसके साथ ही इन्होने यहाॅ के पुस्तकालयाध्यक्ष एवं सग्रहालय के क्यूरेटर का कार्य भार भी सम्भाला । इनका पढ़ाने का तरीका बहुत स्वतत्र था और ये प्रत्येक विद्यार्थी की व्यक्तिगत कार्य क्षमता को पहचान कर उसे शिक्षित करते थे । मुख्य रूप से इन्होंने टेम्परा में कार्य किया लेकिन तैल चित्रण में भी इनकी रूचि थी । खासतौर से म्यूरल बनाने मे ये बहुत रूचि लिया करते थे जिसमे इन्होने बहुत सी तकनीक का प्रयोग किया है। 1937-38 मे ये जापान गये जहाँ ये सेशु (Sesshu), सोतात्सु Sotatsu) इत्यादि कलाकारों से बहुत प्रभावित हुए । 1949 तक इन्होने कला भवन मे अध्यापन जारी रखा। इसके बाद वे नेपाल के सरकारी संग्रहालय के क्यूरेटर (Curator) हो कर नेपाल चले गये । यहाँ ये शिक्षा विभाग में सलाहकार भी हो गये । 1951-52 में इन्होंने राजस्थान के वनस्थली पिद्यापीठ में कार्य किया । 1952 में ये मसूरी उत्तर प्रदेश मे सेट्ल हो गये। यहाॅ पर इन्होने आर्ट ट्रेनिंग सेन्टर और बच्चों का स्कूल चलाना प्रारम्भ किया। 1954 मे इन्होंने पटना मे पटना आर्ट कालेज को मान्यता दिलाने हेतु वहाॅ कार्य प्रारम्भ किया । 1958 में इन्होंने पुनः कला भवन शन्ति निक्तन में कार्य प्रारम्भ किया । इनके चित्रो की प्रदर्शनी 1921 से लगना प्रारम्भ हुई जब इन्हें इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट की सामूहिक प्रदशँनी मे पहचाना गया । इनके चित्रों की प्रदर्शनी कलकत्ता, मुम्बई, मसूरी और टोकियो में लगी । शान्ति निकेतन की कला भवन की छत एवं शान्ति निकेतन के

---

1 आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, डा0 प्रेमचन्द गोस्वामी, पृष्ठ स0 108

हिन्दी भवन की दीवार पर बनाये गये म्यूरल इनके बडे कामो में गिने जाते हैं, जो काफी महत्वपूर्ण भी है।[1]

सीधे-सीधे शायद ही कोई यह स्वीकारेगा कि श्री विनोद बिहारी मुखर्जी ने उत्तर प्रदेश में चित्रकला में आधुनिकता की शुरूआत मे कोई योगदान दिया है। किन्तु उनके सपूर्ण कला जीवन काल का अवलोकन करें तो साफ पता चलता है कि उनके चित्रो मे जर्मन-अभिव्यंजना वाद का भारतीय संकलन सबसे ज्यादा सशक्त तरीके से उभर कर आया है वह उनके वाराणसी प्रवास के दौरान नबाये गये बनारस घाट के रेखांकन हैं। उपरोक्त जर्मन अभिव्यजनावाद कहने का यह तात्पर्य कदापि नही है कि पाश्चात्य अभिव्यंजनावाद कोई श्रेष्ठतर आंदोलन है बल्कि कहने का आशय यह है कि बगाल शैली से हटकर आधुनिक चित्रो मे बनारस घाट के चित्र अभिव्यक्ति के विचार से सशक्त है। इनका अभिव्यंजना वाद इनके जीवन की विसगतियो एवं एकाकीपन से जन्मा नितान्त वैयक्तिक है ।

अतिरिक्त इसके 1952 में जब ये मसूरी आये थे तो करीब दो वर्षो के निवास के दौरान उनकी अभिरूचि कलात्मक शिल्प निर्माण में भी रही । यहॉ आकर श्री मुखर्जी ने डिजाइन के क्षेत्र में जो कार्य किया उसके लिए उत्तर प्रदेश का कला जगत हमेशा इनका ऋणी रहेगा । इस क्षेत्र में इन्होंने यहॉ के वस्त्र निर्माताओं, परिधान शिल्पियों तथा आलेखन का कार्य करने वालो के लिए ब्लाक तैयार किए साथ ही कुछ प्रचलित अभिप्रायो एव पैटर्नो का सयोजन किया।

मसूरी मे ही श्री मुखर्जी ने मन को छू लेने वाले पहाड़ों, वृक्षों, पहाड़ों पर बसी बस्तियो, मजदूरो, कुलियो तथा कामगारो के अत्यन्त रोचक चित्र बनाये ।

यूँ इनके जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य शान्ति निकेतन के हिन्दी भवन मे निर्मित मध्यकालीन हिन्दी संतों पर आधारित भित्ति चित्र जिसे इन्होंने वर्ष 1946-47 में पूर्ण किया था है । इन चित्रो की प्रेरणा का आधार हिमालय की कन्दराओं में तपस्यारत मुनिगण

---

1 मोनोग्राफ - विनोद बिहारी मुखर्जी, सपादक - जया अप्पासामी, - बायोग्राफिकल नोट से

एवं बनारस के घाटों गलियों में घूमने वाले फक्कड साधू ही रहे है । प्रसिद्ध साहित्य एव कला समीक्षक श्री रणजीत साहा ने हिन्दी भवन के फ्रेस्को के विषय में कहा है, 'शैव, वैष्णव उपासक, रामानन्द, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, हनुमान गाथा का प्रसग, गुरू गोविन्द सिंह और भक्त चैतन्य के जीवन प्रसग को भी यथास्थान, सतुलित एवं समंजित ढग से निरूपित किया गया है । हिमालय एवं गंगा की इस तपोभूमि को सदियों से सीचनेवाली आस्था और मनीषा इस भित्ति चित्र में मूर्तिमान हो उठी है।[1] इस श्रृखला चित्र के द्वारा विनोद बाबू ने सिद्ध कर दिया कि वे स्थान काल और पात्र को विपुल विस्तार देते हुए भी सबको कैसे किसी रंग सूत्र मे गूँथ सकते हैं । क्षैतिज एव समरैखिक दृष्टि का अद्‌भुत सामजस्य नीचे खडे दर्शको को मन्त्रमुग्ध एवं विस्मित कर देता है कि अपनी सीमित दृष्टि परिधि [2] के बावजूद विनोद बाबू ने कैसे इस परिकल्पना को साकार किया।

विनोद बाबू की रचना और अन्तर्दृष्टि एक कार्ड आकार के कागज से लेकर कुछ और बड़े और मझोले और फिर विशाल दीवारों पर जैसे एक सी सहजता और अनिवार्यता से घटित हुई है और ध्यान देने की बात है कि वह ऐसे विशालदर्शी रूपों को लघु आकार में या लघु आकार के रूपों को विशालदर्शी फलको (मसलन शान्ति निकेतन के भित्ति चित्रों) में बदलकर नही करती। वह हर बार रचनात्मक संयम और धीरज से प्रेरित हैं। विनोद बाबू की कला मे सुलेख का उपयोग एक और अध्ययन है सुलेख का सा सौन्दर्य और गुंफन उनके अकन की एक अन्य विशिष्टता, गरिमा और निजता है। उनके काष्ठ छापों, कोलाजों आदि की रचना धर्मिता उन्हें एक वैविध्यपूर्ण और खोजी कलाकार सिद्ध करती है।

विनोद बाबू ने भारतीय कला परम्परा के अनुरूप, समकालीन और आधुनिक चित्रभाषा मे एक संक्षिप्त सहजता और सौम्यता की खोज की।[3] अपने सघन शुद्ध और मृदु

---

1 समकालीन कला, अक 17, मई 1996, पृष्ठ स0 23

2 विनोद बाबू को एक आँख से बचपन से कुछ नहीं दीखता था और दूसरी से भी बहुत कम दिखता था, इसलिए सीमित दृष्टि परिधि कहा है ।

3 आधुनिक कला कोश, वि0 भारद्वाज पृष्ठ स0 161

चित्रकला सम्बन्धी आदोलनों से परिचित होने के बावजूद उनकी कृतियाँ उनके अप्रतिम व्यक्तित्व की साक्षी बनी रही हैं।[1]

विनोद बाबू ने पौराणिक या आख्यानमूलक चित्रो के अंकन के प्रति कभी भी अपनी दिलचस्पी नहीं दिखाई। वे कल्पना लोक, रंगों की विलासिता अथवा कथाओं पर आधारित इलस्ट्रेशन करने वाले कलाकार नहीं थे। उनका अपना अलग ही संसार था, जो उनके लिए विशिष्ट था, संवेदनाओ से लबरेज था। ऐसे जगत में वह एकाकी, विचरण किया करते थे। इसी जगत में उन्होंने जो अनुभव किया, उसी को आकार देने का प्रयत्न किया। इसके अतिरिक्त अवनीन्द्र नाथ टैगोर, नन्दलाल बसु और असीत कुमार हल्दार के चित्रों के प्रशंसक और उनसे प्रभावित होते हुए भी विनोद बिहारी उनकी चित्रशैली से न तो आक्रान्त हुए और न ही उनकी अनुकृति की।

शान्ति निकेतन के अन्य समकालीन छात्रो के मुकाबले विनोद बिहारी आरम्भ से ही अपने ढग से सारा कार्य किया करते थे और इस बात की बिल्कुल परवाह नहीं करते थे कि उनके कार्य की कोई सराहना कर रहा है अथवा नहीं।

श्री विनोद बिहारी मुखर्जी, अपने शुरूआती दौर से ही अन्तर्मुखी थे और आत्मविश्वास इनकी रग रग में था। वे अपनी स्वतंत्रता के प्रति भी पूर्णतया सजग थे तभी तो उन्होंने प्राचीन कथाओ एवं पौराणिक चित्रण से स्वयं को मुक्त कर रोजमर्रा की जिन्दगी को विषय रूप में चुना।

विनोद बिहारी के चित्रों का जिक्र करते हुए डा0 राजेन्द्र बाजपेयी ने अपनी पुस्तक 'मार्डन आर्ट और भारतीय चित्रकार' में कहा है कि 'विनोद बिहारी के चित्रों पर आप निगाह डालें तो आपको एलग्रीको और बाइजेन्टाइन शैली के चित्रों की याद ताजा हो जायेगी।' किन्तु इससे भी अधिक यदि सीधे सीधे शब्दों में कहें तो श्री विनोद बिहारी के चित्र जर्मन अभिव्यंजनावाद के अधिक निकट है, जिसकी तुलना गोथिक कला की गूढ

---

1 समकालीन कला, अक 17, पृष्ठ स0 23

भावनात्मकता से की जा सकती है। अभिव्यंजनावाद में कलाकार जिस प्रकार मानव शरीर एव वस्तु के नैसर्गिक रूप को अपनी भावनाओं के अनुकूल विकृत या ऐठनदार रूप मे बनाते है और जिनमें प्राय: भावनाओं के पोषक रंगों का ही प्रयोग होता है, आकर्षक रगो या लुभावने पन का जरा भी विचार नहीं होता। अकन पद्धति का आधार भी सहज प्रवृत्ति एव भावनोद्वेग ही होते हैं। उसी प्रकार श्री मुखर्जी के चित्रों मे भी लम्बे मुँह वाली अनुपातहीन आकृतियाँ ही चित्रित हैं। इनमें बाह्य नैसर्गिकता का अल्पाश भी नही दिखता, ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार ने सहज रूप से अपने आपको अभिव्यक्त किया है। इस दृष्टि से इन्हें हम आत्मनिष्ठ अभिव्यजनावादी कलाकार कह सकते है। इसकी पुष्टि इनके चित्र पुल, वृक्षप्रेमी, जंगल आदि से हो जाती है। इसी प्रकार इनके रेखांकन एवं लकड़ी के छापाचित्र, प्रसिद्ध अभिव्यंजनावादी जर्मन चित्रकार एडवर्ड मुख के चित्रों से साम्य रखते है।

बाद के इनके चित्रों मे चीन जापान की चित्रकला के गहरे अध्ययन का प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है। 1926 की जापान यात्रा ने इन्हे यहॉ की 'तोसा' शैली के प्रति बहुत सजग कर दिया, साथ ही वे इसके प्रशंसक भी थे। इस शैली की प्रमुख विशेषताएं हैं चित्र धरातल का स्पष्ट विभाजन, तीखे रंगो मे आपूर्ति क्षेत्रो का विन्यास आकारो का शैलीगत परिष्कार और रेखाओं की मितव्ययिता आदि। ये सभी गुण सत्रहवीं शताब्दी के जापानी चित्रकार, अभिकल्पक तथा कुशल कारीगर 'तवारया सोतात्सु' के चित्रों में पाये जाते हैं। जब श्री मुखर्जी को हम जार्ज स्यूरा या सोतात्सु के समक्ष रखते हैं तो पाते हैं कि इनकी कला मे सादृश्यो, रूपको तथा सुबोधगम्यता के मामले में प्रचुर अलंकरण है अब के इनके चित्रों की विशेषताओं मे चित्राकाश के आरेखीय अविभाजन और जानबूझकर कम एव हल्के रगों के आघात लगाकर रूप रेखा को उभारना प्रमुख है। नेपाल की धर्मिक यात्रा तथा मंदिर का घंटा नामक चित्रों में ये गुण विद्यमान है। साथ ही इनमें प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा बुनियादी आकारो को रेखाओ की मदद से साकार किया गया है। इस समय तक आते आते इनके चित्रों का धुमैला परिवेश खुले वातावरण में साँस लेता प्रतीत होता है।

यूँ तो श्री मुखर्जी ने छोटे आकार के अनेक चित्र बनाये किन्तु भित्ति चित्रण में इनका मन अधिक रमता था। ऐसे चित्रों में 1940 में निर्मित टेंपरा कलाकृति 'छत' एवं 1947 में

निर्मित फ्रेस्को बूनों शैली में बनी हिन्दी संतों पर आधारित कलाकृति विशेष उल्लेखनीय है। ये चित्र मध्यकालीन कवियों के प्रति उनके स्नेह के सूचक है। इन चित्रों की रंगयोजना एव अकन पद्धति भी कुछ ऐसी है कि आरम्भिक भारतीय चित्रकला एवं पाषाण उत्कीर्णन की याद ताजा हो जाती है।

मध्यकाल के बाद से पाण्डुलिपि सुलेखन एवं मुगल खत्ताती की कला लगभग समाप्त ही हो गई थी किन्तु श्री विनोद बिहारी मुखर्जी का ध्यान सुलेख की कलात्मकता की तरफ गया और इन्होंने बंगला के प्रवाहपूर्ण सुलेख को नयी आकृतियाँ प्रदान की एवं विभिन्न उद्योगो के लिए अभिप्राय भी बनाये (मसूरी मे)। जहाँ उनके अतिरिक्त शायद ही किसी बंगाल स्कूल के कलाकार का ध्यान पहुँचा हो।

विभिन्न देशो के भ्रमण और वहाँ की कला शैलियों से परिचित श्री विनोद बिहारी को ठाकुर शैली (बंगाल शैली) की सीमाओं का आभास हो गया था और वे यूरोप के नित नये उदित हो रहे कलावादों से भी अनभिज्ञ न थे। अत: इन्होने अपने अलग मार्ग का विकास किया। यही कारण था कि वे अपने शिष्यों को ठाकुर शैली का परिश्रमपूर्ण अभ्यास कराने के बजाय उन्हें अपने व्यक्तित्व के अनुकूल मार्गो पर बढने मे सहायता करते थे।

1970 में ये ललित कला अकादमी के फेलो निर्वाचित हुए। श्री मुखर्जी ने भारत के कोने कोने की यात्रा की और सम्पूर्ण भारत की कला स्थितियों से गहरा सम्पर्क स्थापित किया और उन्हे समृद्ध किया।

श्री मुखर्जी ने कला सम्बन्धी लेखन भी किया है और सौन्दर्य विषयक सिद्धान्तो की दृष्टि से उपयोगी एव महत्वपूर्ण 'आधुनिक शिल्प शिक्षा' और 'चित्रकार' नामक दो पुस्तकों की रचना भी की है।

इनकी कृतियाँ राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय, रवीन्द्रभारती तथा अनेक निजी व सार्वजनिक संग्रहों में सुरक्षित हैं। इनके अधिकतर चित्र जंगल, वृक्ष एवं प्राकृतिक वातावरण

के इर्द-गिर्द ही घूमते है। यहाँ तक कि इनके भित्ति चित्रणों में भी वृक्षों की भरमार है। वृक्ष प्रेमी चित्र को देखकर लगता है उन्होने स्वयं को ही चित्रित किया है। इस चित्र को उनका सेल्फ पोट्रेट भी कहे तो गलत न होगा, कारण चित्रित व्यक्ति के कधे पर पडी शाल एव अन्य पहनावे श्री मुखर्जी की भी पहचान रहे हैं। अपना सम्पूर्ण जीवन कला को समर्पित कर देने वाले श्री विनोद बिहारी मुखर्जी का योगदान भारतीय कला जगत में बहुत ही महत्वपूर्ण है। उन्होने कला को बंगाल शैली की भावुकता से बाहर निकाला और साहित्यिक विषयों की एक रसता को हटाकर कला के विशुद्ध चित्रात्मक तत्वों रेखा, रूप, रग, टेक्श्चर आदि पर बल दिया।

भारतीय आधुनिक कला को विकासोन्मुख करने वाले श्री मुखर्जी ने अतीत को एकदम अनदेखा कभी नही किया बल्कि उसके आवश्यक पक्षों को समय-समय पर नये सन्दर्भो मे प्रस्तुत किया है। उदा० के लिए मध्यकालीन हिन्दी संतों का चित्र या 'प्रोसेशन' नामक चित्र में कुछ ऐसा ही प्रयास है। इनका चित्र 'सूरजमुखी' जो कि भारतीय स्वतंत्रता की 50 वी० वर्षगाँठ पर दिल्ली की एक प्रदर्शनी में प्रदर्शित किया गया था का रेखीय प्रभाव पूर्णतया भारतीय है इस चित्र की तुलना वॉनगाग के 'सनफ्लावर' से करना अज्ञानता होगी आधुनिक चित्रकला के विकास पर जो प्रदर्शनी आयोजित की गई थी उसमें आर० शिवकुमार द्वारा आयोजित 100 चित्रों मे सर्वोत्तम प्रदर्शन शान्तिनिकेतन में कलाकारों का ही रहा है।[1]

सुधीर रंजन ख़ास्तगीर

जन्म	:	24 सितम्बर 1907 कलकत्ता
शिक्षा	:	1925 - 30 तक कला भवन शान्तिनिकेतन
कलागुरू	:	नन्दलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी
शिक्षण	:	1933-1936 सिंधिया कालेज ग्वालियर

---

1 फ्रटलाइन, सितम्बर 19, 1997 पृष्ठ स -

सम्मानित पद	:	1936 - 1955 इन स्कूल देहरादून उ० प्र०
	:	1956 - प्रधानाचार्य, कला एव शिल्प विद्यालय, लखनऊ
सम्मान	:	1957 पद्मश्री
		1937 यूरोप भ्रमण
चित्रसंग्रह	:	इलाहाबाद म्यूजियम इलाहाबाद
	:	राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ
	:	मार्डन आर्ट गैलरी दिल्ली
देहावसान	:	2 मई 1974 - शान्तिनिकेतन
चित्र विशेषता	:	लयात्मकता, तूलिकाघात एवं टेक्श्चर का मौलिक प्रयोग।

सुधीर रंजन ख़ास्तगीर

जिनके लिए चित्रण करने का आनन्द ही पूरे जीवन काल में सर्वोपरि रहा तथा जो अपने बाल्यकाल से ही प्रकृति की गोद में तरह-तरह की संगीतमय दिनचर्याओं से गुजरा करते थे तथा बॉसुरी बजाना जिनका सुकून था ऐसे शान्त प्रकृति, जीवन को पूरी जीवतता से जीने की चाह रखने वाले श्री सुधीर रंजन ख़ास्तगीर को उत्तर प्रदेश के आधुनिक चित्रकारों में देखकर उत्तर प्रदेश गर्वान्वित है।

जिस वक्त बंगाल स्कूल के चित्रकार भारतीय पौराणिक विषयों एवं वाश शैली मे कार्य करना ही श्रेष्ठ समझते थे सुधीर रंजन ख़ास्तगीर ने भारतीय जन जातियों, सामान्य जिन्दगियों एवं भारतीय नृत्य संगीत से प्रेरित चित्रों का निर्माण किया। शायद इसके पीछे संगत का असर था कि जब वर्ष 1925 में इन्होंने कला भवन, शान्ति निकेतन में प्रवेश लिया तो श्री नन्दलाल बोस, उस वक्त कला भवन के अध्यक्ष थे श्री विनोद बिहारी ने उसी समय वहाँ अध्यापक की हैसियत से कार्य प्रारम्भ किया था और श्री राम किंकर बैज कृतियो की एक विशाल खोज की ओर तल्लीनता से अग्रसर थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि रवीन्द्र नाथ

टैगोर की काव्यात्मक तथा रचनात्मक प्रतिभाएँ चरम उत्कर्ष पर थी। इन सबके साथ एव नन्दलाल बोस की शिक्षा के अन्तर्गत रहते हुए श्री खस्तागीर ने जीवन की हकीकतों को नये अंदाज से देखा। अपनी आन्तरिक प्रेरणा एवं आधुनिक विचारो के चलते सामान्य जीवन दर्शन से जुड़े चित्रों का ही निर्माण करते हुए आधुनिक चित्रकारों के लिए मजबूत जमीन तैयार की। श्री सुधीर रजन खास्तगीर एक कुशल चित्रकार के साथ-साथ कवि भी थे और इन सबसे बढ़कर गम्भीर और बेहतरीन कला शिक्षक जो कला शिक्षा के विस्तार एवं विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहा करते थे। उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों में कला शिक्षा के प्रारम्भ होने का काफी श्रेय इन्हें ही जाता है। श्री खास्तगीर ने बिना सोचे समझे विदेशी आधुनिक चित्रकृतियों की नक़ल कभी नही की (हालाँकि उनके बंगाल शैली से हटकर जो चित्र बनें हैं उनमें फ्रेन्च चित्रकार विन्सेट वानगॉ की झलक है परन्तु इस बात को आगे स्पष्ट किया गया है। श्री खास्तागीर को अपने देश, यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा और विरासत पर गर्व था। वह इसका अहसास लोगों को भी कराना चाहते थे। सम्भवतः यही कारण था कि उन्होने एक बार कहा था—"हम भारतीय है। हमारा ज्ञान, हमारी पुस्तकें, हमारी परम्परा सभी उच्चकोटि के है यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि इन भावों से भरी बातों को समझे जो हमारे समाज एवं सभ्यता मे है। समझने की शक्ति हमारे रक्त में विद्यमान हैं।[1]"

चित्रकला एवं मूर्तिकला दोनों में ही इन्होंने नये प्रयोग किए और समकालीन भारतीय कला को ऊँचाई प्रदान की, इसीलिए कला आंदोलन को आगे बढ़ाने में उनकी अन्यतम भूमिका मानी जाती है। परम्परा से थोड़ा भिन्न समकालीन कला के वाहक होते हुए भी कुछ पुराने मूल्यों में उनका अटूट विश्वास था जैसे गुरू शिष्य परम्परा। इस बात को उनके इस कथन से समझा जा सकता है—" एक कलाकार में जितने भी गुण होने चाहिए उनमें सबसे मुख्य यह है कि वह अपनी इन्द्रियों और मानसिक शक्तियों को जागृत रखे, प्रकृति और ससार के साथ घनिष्टता स्थापित करें। हृदय तक पहुँचने के लिए यह बहुत आवश्यक है। इस

---

1 'राष्ट्रीय सहारा', 14 फरवरी 1997, पृष्ठ स. 7

प्रकार की शिक्षा मुझे मास्टर जी (नन्दलाल बसु) से मिली जिसके ऊपर मुझे गर्व है।''[1] मैंने उन्ही की शिक्षा को आधार बनाकर अपने कार्य को प्रारम्भ किया था।

उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य दोनो की कला शैलियो का गम्भीरता से अध्ययन किया था परन्तु पाश्चात्य कला शैलियाँ उन्हें विशेष प्रभावित न कर सकी। इस सन्दर्भ में भी उनका दृष्टिकोण एकदम स्पष्ट था— ''हमें अपनी राष्ट्रीय परम्पराओं और सास्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही चलना चाहिए। यदि हम आज के पश्चिम भौतिकवाद से प्रभावित हो गये तो हमारी कला की सजीवता मौलिकता और दिव्यता समाप्त हो जायेगी. .''[2] यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग ने देशों की सीमायें तोड़ डाली है भावों विचारों एवं अभिव्यक्ति आदि मे एक रूपता सी आ गई हैं परन्तु जब तक किसी देश-विशेष की कोई अपनी वस्तु नहीं होगी तब तक उसका महत्व नहीं होगा यह भी सत्य है।

श्री सुधीर रजन खास्तगीर का जन्म 24 सितम्बर 1907 को कलकत्ता मे हुआ था। इनके पिता श्री सत्यरजन खास्तगीर छाताग्राम (चट्टगाँव) के निवासी थे। इनकी मॉ उस ब्रह्म समाज की अनुयायी थी जिसका आधार शिक्षा और संस्कृति था। अत: जाहिर है कि बचपन से ही उन्होंने श्री खास्तगीर को सूक्ष्म जीवन मूल्यों से अवगत कराया होगा तथा पंच तंत्र, कथा सारित्सागर आदि से इनके बाल पन को मानसिक ख़ुराक भी दी होगी। श्री खास्तगीर ने कभी भी भारतीय महाकाव्यो एवं पुराणों पर आधारित चित्र नहीं बनाये जैसा कि तत्कालीन बंगाल शैली के कलाकार किया करते थे इसके पीछे यही तर्क समझ में आता है कि इन पर अपनी माँ का बहुत प्रभाव था जो पक्की ब्रह्मसमाजी थीं, और ब्रह्मसमाज में पुराणो महाकाव्यों के स्थान पर उपेन्द्रकिशोर राय चौधरी की कथायें या पंच-तंत्र की कथायें कहीं अधिक रुचि से ग्रहण की जाती रही हैं।

श्री खास्तगीर 1925 मे कला शिक्षा ग्रहण करने के विचार से शान्ति निकेतन के कला भवन में आये। पॉच वर्ष शिक्षा लेने के बाद 1930 में ये दक्षिण भारत की यात्रा पर

---

1 मोनोग्राफ, सुधीर ख़ास्तगीर

2 वही

गये। 1933 से 1936 तक इन्होंने सिधिया कालेज ग्वालियर में शिक्षण कार्य किया। कला अध्यापन करते हुए सिंधिया कालेज के अग्रेजी वातावरण में वह स्वयं को रोक कर नही रख पाये और 1936 में ये दून स्कूल देहरादून (उत्तर प्रदेश) मे कला शिक्षक की हैसियत से आ गये और 1937 में एक वर्ष का अवकाश लेकर यूरोप यात्रा पर चले गये। इंग्लैण्ड मे इन्होने कांस्य ढलाई का काम सीखा, फिर दून स्कूल देहरादून में लौट कर अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। दून स्कूल मे इन्होने सीमेण्ट तथा प्लास्टर मे मूर्तियों एवं मॉडल बनाना प्रारम्भ किया तथा इस कार्य से इन्हें देहरादून एवं मंसूरी मे बहुत यश प्राप्त हुआ। दून स्कूल मे 1955 तक कार्य करने के पश्चात् वर्ष 1956 में ये राजकीय कला तथा शिल्प महाविद्यालय लखनऊ के प्रधानाचार्य पद के लिए उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ससम्मान आमंत्रित किये गये। लखनऊ में श्री ख़ास्तगीर के अधीन रहकर श्री मदनलाल नागर, श्री रनवीर सिंह विष्ट तथा श्री अवतार सिह पॅवार ने अप्रतिम कार्य किया और ख्याति अर्जित की। आधुनिक कलाकृतियो का निर्माण करते हुए वर्ष 1957 में श्री खास्तगीर को पद्मश्री से भी अलंकृत किया गया। श्री दिनकर कौशिक के शब्दों में '' वे कला आन्दोलन के एक प्रिय नेता के रूप मे आये और कला समुदाय के लिए उन्होंने भारत सरकार से कई कमीशन भी प्राप्त करवाये।''[1] वर्ष 1956 मे लखनऊ कला विद्यालय मे श्री ख़ास्तगीर के प्रधानाचार्य पद पर पदार्पण के बाद से विद्यालय ने बहुत तरक्की की और श्री खास्तगीर ने कितनी मुस्तैदी एवं समर्पण भावना से यहॉ का कार्य भार सभाला यह तो वर्ष 1957 में प्रकाशित गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट (Government College of Art and Craft) के उस वार्षिक पत्रिका (Annual) से लग जाता है जो 19 वर्षो बाद श्री खास्तगीर की प्रिसीपलशिप मे फिर से प्रारम्भ किया गया। इसमें कला विद्यालय की तमाम उपलब्धियों का जिक्र उसके इतिहास के साथ प्रकाशित है। इस प्रकार उत्तर प्रदेश में चित्रकला श्री खास्तगीर के प्रयासों से विकास मार्ग पर चल रही थी तभी 1960 मे गोमती नदी में आई बाढ़ ने सब कुछ तहस - नहस कर दिया। नदी के किनारे बसे कला विद्यालय को कुछ ज्यादा ही खामियाजा भुगतना पड़ा। श्री ख़ास्तागीर के लिए

---

1 कला त्रैमासिक, राज्य ललित कला अकादमी, उ० प्र० अक - 7 पृष्ठ संख्या -13

इससे बढ़कर पीड़ा दायी और क्या हो सकता था फिर भी उन्होंने शान्त चित्त होकर पीड़ा के तूफान को भीतर ही भीतर घोंट कर विद्यालय के संग्रहालय की बहुमूल्य वस्तुओ को सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाया। इस आपा धापी में वे अपनी एवं अपने साथियो की कलाकृतियों एवं अपने सामानों की सुरक्षा नहीं कर पाये और बाद में गहरे मनोवैज्ञानिक तनाव में रहने लगे जिससे वह आजीवन फिर उबर न सके।

1961 के बाद से वह अकेले ज्यादा रहने लगे और बाहरी खासकर नये लोगो से संवाद शून्य होते चले गये। इसके बाद में पुन: शान्ति निकेतन आ गये और यहीं पलाश नाम का निवास बनाकर रहने लगे जहाँ 27 मई 1974 मे इनका निधन हो गया।

भले ही आज श्री खास्तगीर को एक महान कला शिक्षक के रूप में ज्यादा याद किया जाता हो किन्तु प्रारम्भ से ही जब वे दून स्कूल मे पढ़ा रहे थे तो अपने स्वय के कार्य के प्रति और कलाकृति निर्माण के प्रति भी बहुत सजग थे। उन्हें शायद इस तथ्य का बहुत पहले ही आभास हो गया था कि सिर्फ शिक्षक के रूप मे रहकर वे कभी सन्तुष्ट नही रह पायेंगे यही कारण था कि वे अपने विद्यार्थियों को कभी भी बॉध कर नहीं रखते थे सबको मुक्त रूप से कार्य करने देते थे।

श्री सुधार रंजन खास्तगीर के चित्रो में जिन्दगी के उल्लास एवं हर्ष के पहलू पर ज़्यादा जोर है। उनके चित्रो में तूलिका घातों का प्रयोग लयात्मक ढंग से किया गया है साथ ही अपूर्व गतिशीलता भी दृष्टिगोचर होती है इनकी कला में जीवन का यथार्थ है किन्तु उस यथार्थ मे निराशा या अकर्मण्यता के लिए कहीं कोई स्थान नही है। जैसे 'तूफान मे यात्रा' नामक चित्र में लय और गति के साथ आकृतियों के मनोभाव ऐसे हैं जैसे वो तूफान का डटकर मुकाबला करने को पूरी तरह तत्पर हैं। ख़ास्तगीर के चित्रों के विषय श्रमिकों एवं जनसाधारण से ही जुडे रहे हैं जैसे 'पुजारन', विश्राम, सान्थाल प्रेमी, हेल्पिंग हैण्ड (मदद के लिए हॉथ) इत्यादि। नृत्य सगीत और भारतीय संस्कृति पर आधारित इनके आधुनिक चित्रों में- दीप नृत्य, संगीत प्रेमी, पुजारन आदि प्रमुख हैं। इनके प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति में जीवन की समस्त सम्भावनाओं को दर्शाने वाले चित्रों में ''जंगल में हिरन'' ''पेड़ों पर तोते'' के साथ ही पुजारन एवं सांथाल प्रेमी जिनमें वृक्षों की भरमार है, प्रमुख हैं।

उपरोक्त समस्त चित्रों मे ब्रश स्ट्रोक्स की लयात्मकता एवं गति स्पष्ट परिलक्षित है साथ ही रग भी अपनी पूरी शुद्धता एवं चमक के साथ है।

"सुधीर रंजन खास्तगीर को चटक रंगों का चचल कलाकार" कहते हुए कुछ कला आलोचकों ने कहा कि वे बहुत तेजी से चित्र बनाते है उनमें फिनिशिंग टच नही होता अपितु विकल चित्रकार की चंचलता उनमें स्पष्ट रूप से दिखाई देती है उनमे एकात्मकता एव एकरूपता नहीं होती, रूप सौन्दर्य - चित्रण से अकन में वे बिल्कुल सफल नहीं हो पाये है आदि आदि।" वस्तुत: श्री खास्तगीर आत्मा और भावना के चित्रकार हैं। वह आन्तरिक सौन्दर्य को शाश्वत मानते थे। इसीलिए उनके रेखाचित्रो तैलचित्रों, लीनोकट, मृण्मूर्तियो, प्रस्तर, प्रतिमाओ, भित्ति -चित्रों और अन्य कलात्मक रूपों में अन्तर्मन की झांकियां और भाव जगत की गहराइयां ही मिलती हैं। वे अच्छी और बुरी सभी प्रकार की कलाओं (सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टिकोण से) के लिए समय को ही सबसे बडी कसौटी मानते थे।"[1]

श्री दिनकर कौशिक के अनुसार उनकी योरोपीय यात्रा ने वैनगां के चित्रों से उनका साक्षात्कार कराया होगा और उन्होंने चित्रों की सहज स्फूर्ति और हिसात्मकता को पकड़ने की कोशिश की होगी। लेकिन खास्तगीर के लिए यह एक शैलीगत विशेषता थी और बैनगां के आन्तरिक विस्फोट का प्रतीक नहीं था। खास्तगीर के विषय थे हर्षोन्मत्त नर्तक, सांथाल प्रेमी, पलाश के फूल तथा अमलताश के वृक्ष। वैनगां की जूते की जोड़ी, आलू बटोरने वाले आदि कृतियां या आत्म चित्र उनके विषय नहीं थे।"[2]

यहॉ कौशिक ने खास्तगीर के चित्रों की तुलना बैंनगां के चित्रों से करके आशा और निराशा के आधार पर भेद किया है। इस सन्दर्भ में एक बात कहना अभीष्ट है कि जहाँ एक ओर वैनगा अपने निजी दु:खों से उबर नहीं पाये ते और इसी आत्मकेन्द्रण का परिणाम

---

1 अखिलेश निगम, 'लखनऊ कला जगत के निर्माता खास्तागीर' प्रकाशित, राष्ट्रीय सहारा दिनांक 14 फवरी 1997, शुक्रवार कालम तीन पेज नं० 7

2 कला त्रैमासिक अंक 7, पृष्ठ 12

उनके चित्र थे वही दूसरी ओर खास्तगीर के निजी जीवन में झॉके तो पता चलेगा कि उन्हे भी दु:ख कम नही थे। असमय पत्नी के देहात एवं 1961 मे गोमती की बाढ़ ने उन्हें तोड कर रख दिया था बावजूद इसके उनके चित्रों में जीवन से निराश खास्तगीर नही है बल्कि समष्टि से स्वयं को जोड़कर सब मे स्वयं को भूलकर पूरी तरह रचना में विलीन होने वाले खास्तगीर हैं। भारतीय दर्शन आशावादी रहा है सो हम कह सकते हैं कि सुधीर रजन खास्तगीर के चित्र भले ही कहीं कहीं पाश्चात्य आधुनिक चित्रकार वैनगा से तकनीकी शैलीगत साम्य रखते हो किन्तु भारतीय दर्शन, भारतीय जनजीवन एव स्वत: स्फूर्त प्रेरणा के आधार पर निर्मित होने के कारण ये पूर्णत: भारतीय है और आधुनिक भी। शायद गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टौगोर के व्यक्तित्व एव कृतित्व से प्रभावित होने के कारण ख़स्तागीर में यह समझ आप से आप आती चली गई। ख़ास्तागीर वैनगां की भॉति आत्म चित्रों के मोह से तो बचे रहे किन्तु 'रवीन्द्र नाथ टैगोर' के शबीह चित्र और मूर्ति मे बनाने के मोह से वे स्वय को रोक नहीं पाये।

खास्तागीर के टेम्परा, जलरंग एवं कुछ तैल चित्रों मे बंगाल स्कूल या पुनर्जागरण कालीन चित्रों की पूरी छाप है किन्तु फिर भी उनमें लय एवं गति ख़ास्तगीर के बाद के चित्रों से साम्य रखती है। उदाहरण हेतु इनके चित्र 'लेटी हुई स्त्री' को लिया जा सकता है। इस चित्र में बंगाल शैली की महीन लाइनें तो नहीं है फिर भी मुखाकृति विज्ञान प्राचीन परम्परागत अजंता शैली से मेल खाता है। इसमें वस्त्र एवं पृष्ठभूमि में ब्रश स्ट्रोक्स के अपने निजी गुण के कारण यह चित्र पूर्णतया परम्परा गत नहीं होने से दोनों शैलियों के बीच का सेतु चित्र कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'किशोरी लडकी' नामक चित्र भी परम्परागत बंगाल स्कूल की छाप से बचा नहीं है। 'माँ एवं शिशु' ये चित्र हैं तो बहुत प्रसिद्ध किन्तु तैल माध्यम में बना होने के बाद भी पूरी तरह बंगाल स्कूल का चित्र लगता है। इसमें चिकनी सपाट रग योजना एव महीन पतली रेखाओं से साक्षात्कार है जो वाश शैली की प्रमुख विशेषता है।

श्री खास्तगीर के चित्र सृजन में प्रयोजन जैसी कोई बात नही दिखती बल्कि रंग माध्यम तथा शरीर की आन्तरिक उत्तेजनाओ की क्रीड़ा से अपने आप कलाकृति आकार ग्रहण करती है। इनके चित्र जैसे - जैसे पूर्णता की ओर अग्रसर होते है वैसे-वैसे भावावेग द्वारा शरीर की आन्तरिक लय व्यक्त होने लगती है। इनके चित्रों में गति के साथ सृजन की सहजता अभिव्यक्त होती है। आकृतियुक्त यथार्थ के करीब होते हुए भी इनके चित्रो की शैली इनकी अपनी कल्पना शक्ति से भरी हुई है बावजूद इसके इनके चित्रों में अतिकल्पना अथवा फैंटेसी के कहीं भी दर्शन नहीं होते। इनके चित्रों को देखकर ऐसा लगता है कि किसी भी क्षण जब इनका मन तरल और संवेदनशील बना इन्होंने ऑखें मूँदकर एकाग्रता बढ़ाई और कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री खास्तागीर के चित्रों में स्पेस या अन्तराल का पूरा-पूरा उपयोग किया गया है जो चित्र की भावना एवं विषयों के अनुकूल है साथ ही आकृतियो या रूपाकारों से भरा होने के बाद भी चित्र बोझिल नही लगते यह इनके चित्रों की बहुत बड़ी विशेषता है। आकृति एवं अन्तराल में अद्‌भुत सामञ्जस्य बिठाकर ही उन्होंने चित्रनिर्मिति की है। इनके चित्रों में स्पर्श सवेदना के लिए बनावट या टेक्श्चर का विचार प्रमुखता के साथ किया गया है। चाहे 'तूफान में यात्रा' नामक चित्र हो या 'विश्राम', दीप नृत्य, पुजारिन, सांथाल प्रेमी या फिर संगीत प्रेमी सभी में तूलिका का प्रत्येक आघात अत्यन्त गतिमान लय के साथ इस प्रकार लगाया गया है कि इसकी बुनावट से साहस प्रदर्शित होता है। साथ ही रग लगाने की इस शैली से इनके नृत्य से सम्बन्धित चित्रों में एक तरह के खिलाड़ीपन की भावाभिव्यक्ति भी प्रदर्शित होती है। सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व जो इनके चित्रो में प्रमुखता से उभर कर आया है वह है इन चित्रों की शुद्धता। अपने समकालीनों के विपरीत श्री ख़ास्तगीर ने साहित्य से अपने चित्रों को अप्रभावित रखा। इनके चित्र इलस्ट्रेशन भी नहीं है न ही इनमे रंग ,रेखा, आकार गुलामों की भॉति प्रयुक्त हुए हैं। श्री ख़ास्तगीर के चित्रों का अवलोकन करने के बाद यह स्पष्ट है कि इनमें आकार, रेखा बिंदु, बुनावट तथा रंग की अपनी भाषा है और इस आधार पर इनके चित्र उसी प्रकार से शुद्ध हैं जैसे भारतीय शास्त्रीय संगीत। सशक्त भावाभिव्यक्ति एवं उपरोक्त गुणों के आधार पर ये कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश में आधुनिक चित्र निर्माण के शुरूआती चित्रों में श्री ख़ास्तगीर एक महत्वपूर्ण नाम हैं। इनके चित्र अपनी शर्तों पर आधुनिक हैं यह और भी महत्वपूर्ण है।

प्रणय रंजन राय

जन्म	-	16 जनवरी, 1909
शिक्षा	-	कला विद्यालय, लखनऊ
गुरू	-	असीत कुमार हल्दार
प्रदर्शनी	-	मुम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर, मैसूर आदि
सग्रह	-	जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी, मैसूर

प्रणय रंजन राय :-

लखनऊ कला विद्यालय से शिक्षित श्री प्रणय रजन राय के चित्रों की विषय वस्तु पुराकथाओं एव सामाजिक जीवन से ली गई है।

चित्रों का नियोजन और शैली परम्परागत मध्यकालीन चित्रकला से ही प्रेरित है जैसे- 'स्नेह स्निग्ध संगीत' और 'आलस्य के क्षण' चित्रों में मुगल कला की भाँति यथार्थवादी अंकन भी है। किन्तु 'गुजरता बसंत' नामक चित्र बंगाल शैली के चित्रो के अधिक निकट है जिसमें परम्परागत वेशभूषा से अलग पहनावे में एक स्त्री का अत्यन्त महत्वपूर्ण चित्रण है। श्री राय के चित्र परम्परागत चित्रों से वेशभूषा एवं अलंकरण की दृष्टि से भिन्न है। अतिरिक्त इसके " इनके चित्र लखनऊ स्कूल की वाश शैली के अत्यन्त सुन्दर और प्रसिद्ध चित्र है"।[1]

हरिहर लाल मेढ़

जन्म	-	14 जून, 1909 वाराणसी
शिक्षा	-	ललित कला में डिप्लोमा, 1931 लखनऊ कला विद्यालय
शिक्षण	-	वर्ष 1936 से लखनऊ कला विद्यालय में, अध्यक्ष ललित कला विभाग
सम्मानित पद	-	प्राचार्य कला एंव शिल्प विद्यालय लखनऊ-

1 समकालीन कला, सन्दर्भ तथा स्थिति, पृष्ठ स0-54

1954-56 तक, 1963-64 तक

उपलब्धि	वर्ष 1931 में डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात भारत सरकार द्वारा छात्र वृत्ति पर कला आचार्य असीत कुमार हल्दार एवं नन्दलाल बोस के नेतृत्व में भारतीय कला शैलियों एवं मण्डपो का अध्ययन।
सग्रह -	राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ
प्रदर्शन -	देश-विदेश की अनेकों कला प्रदर्शनियो में।
प्रसिद्ध चित्र-	मेघदूत श्रंखला के वाश चित्र।
देहावसान-	25 अगस्त, 1974

हरिहरलाल मेढ़ (1909-1974) :-

लखनऊ स्थित कला एवं शिल्प महाविद्यालय के छात्र, शिक्षक एवं प्राचार्य रहे चुके श्री हरिहर लाल मेढ बंगाल शैली की वाश विधा के मूर्धन्य चित्रकार हैं। यूँ तो आपने अनेकों चित्र बनाये हैं किन्तु मेघदूत श्रृंखला के चित्रों मे इनकी विशिष्ट प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

इनकी रचनायें शैली के निर्वाह, यथार्थ आकृतियों, विषयगत वातावरण एवं सरलता और सादगी की दृष्टि से काफी लोकप्रिय मानी जाती है। मेघदूत के साथ ही आपने भारतीय जन-जीवन , तीज-त्यौहार तथा ऋतुओं की अभिव्यक्ति की हैं। ''[1]

श्री एन. खन्ना के अनुसार- मेढ़ की ''शैलियों ने मूल रूप से हिन्दू कला की बोधगम्यता स्वीकार की''[2]

''श्री मेढ़ ने मेघदूत के नायक यक्ष को आदर्श एवं प्रकृति प्रबन्ध का नायक माना। पुनर्मिलन की प्रत्याशा, मेघ का गर्जन और गर्जन के समय जीव-जन्तुओं की व्याकुलता, विप्रलम्भ-श्रंगार, विरह की कातरता ,अंगड़ाना और करतालिका पर मयूर के नृत्य आदि की

---

1 कला त्रैमासिक जनवरी 1975, पृष्ठ सं0-18

2 कला त्रैमासिक, जनवरी 1975, पृष्ठ स0-18

रचना आपकी ख्याति के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण योगदान है जिसके आधार पर श्री मेढ के निज के योगदान का दावा किया जाना किसी भी दृष्टि से अतिश्योक्ति नही मानी जायेगी''[1]

वर्ष 1964 तक लखनऊ कला महाविद्यालय में कार्यरत रहने के पश्चात प्राचार्य के पद से अवकाश ग्रहण किया और अपने जीवन के अन्तिम समय तक लखनऊ में ही कला जगत को समृद्ध करते रहे। इनकी सहृदयता एव विद्यार्थियो को दिए गये अपनत्व ने सदा आपको संरक्षक की संज्ञा प्रदान की।[2]

श्री मेढ़ प्राकृतिक सौन्दर्य एवं छविचित्रों के अध्यापन के लिए प्रख्यात थे। बगाल शैली की वाश विधा के चित्रो में प्राकृतिक दृश्यों को यथार्थ रूप में चित्रित कर श्री मेढ़ ने अपनी अलग पहचान बनाई। इनके चित्रो में उर्ध्वाकार चित्र तल का अधिक इस्तेमाल है, चाहे वह वीणा बजाती स्त्री(यक्षिणी) हो या संदेश भेजता यक्ष, ये आकृतियाँ यथार्थ के निकट एव सम्पूर्ण चित्र में एकमात्र आकृतियॉ हैं, इसी प्रकार एक अन्य चित्र सयोजन है जिसमें पूजा की थाल सामने रखे तीन स्त्रियाँ चित्रित है। श्री मेढ़ के चित्रों की आकृतियाँ खुले आकाश के नीचे ही अधिकांश चित्रित है। इनमें नारी आकृतियों के केश खुले हैं वे नाम मात्र के आभूषण और एक ही वस्त्र पहिने चित्रित की गई हैं। श्री मेढ़ के चित्रों की एक अन्य विशेषता उनके चटख रंग भी है जिसमें लाल, हरा और नीला मुख्यत: प्रयुक्त हैं। ये रंग प्रेम के हैं और बंगाल स्कूल की धूमिल रंग योजना से अलग होते हुए मालूम पड़ते हैं। हालॉकि यह परिवर्तन बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर ही समझ में आता है किन्तु इस परिवर्तन की शुरूआत श्री मेढ़ के चित्रों में चालीस के दशक के प्रारम्भ से ही दिखाई देने लगी थी। उसके बाद पचास के दशक में उन्होने 'रास्ते के झोपड़े' और 'इन्द्रधनुष' (38×28) जैसे चित्र बनाये जो प्राकृतिक यथार्थवादी चित्रों की श्रेणी में आते है। श्री मेढ के चित्रों में पर्सपेक्टिव का इस्तेमाल आंशिक ही है यह क्तिु चित्र विषय के सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

---

1. कला त्रैमासिक, जनवरी 1975, पृष्ठ सं0-19
2 कला त्रैमासिक-जनवरी 1975, पृष्ठ स0-19

बृज मोहन नाथ जिज्जा

जन्म	–	1910– वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
प्रारम्भिक शिक्षा	–	वाराणसी
कला शिक्षा	–	लखनऊ आर्ट कालेज
कला गुरू	–	श्री वीरेश्वर सेन
यादगार वक्त	–	वर्ष 1936 से 1938 तक श्री ललित मोहन सेन के साथ उनके लखनऊ स्थित आवास में साथ रहने का अवसर।
सम्मानित पद	–	भारत सरकार द्वारा स्थापित पब्लिकेशन डिवीजन मे कलाकार, वर्ष 1948
कला हेतु प्रेरणा	–	एन0सी0 मेहता एवं समरेन्द्रनाथ गुप्ता से निरंतर
सम्मान	–	अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, पटना 1944 एवं अन्य अनेको
संग्रह	–	म्यूनिसिपल आर्ट गैलरी, लखनऊ
	:	इलाहाबाद म्यज़ियम
	:	मैसूर आर्ट गैलरी
	:	चण्डीगढ़ म्यूजियम
	:	डा0 आर0 के0 मुखर्जी आर्ट गैलरी, लखनऊ
	:	आल इंडिया फाइन आर्ट एण्ड क्राफ्ट सोसायटी नई दिल्ली
	:	व्यक्ति गत संग्रहो में[1]

1 उपरोक्त बायोग्राफिकल नोट का आधार – कला त्रैमासिक अक पाँच, 1977, पृष्ठ स०– 8,9,10

बृजमोहन नाथ जिज्जा :-

लखनऊ कला महाविद्यालय के प्रतिभाशाली छात्र श्री बृजमोहन नाथ जिज्जा का जन्म वाराणसी में वर्ष 1910 में हुआ था। कला की प्रारम्भिक शिक्षा बनारस में ली और लखनऊ में आकर विधिवत कला शिक्षा पाई। यहाँ विद्यार्थी काल से ही इन्हे अनेको पुरस्कार इनकी कृतियों पर मिलते रहे जिसने जिज्जा बाबू की कला यात्रा को मजबूती प्रदान की। तीस के दशक में फाइनल परीक्षा सर्वोच्च स्थान पर रहते हुए उत्तीर्ण की और लखनऊ में ही अलग कमरा लेकर स्वतंत्र रूप से चित्र निर्माण प्रारम्भ किया। इन्होंने लाहौर, बम्बई, मैसूर, देहली आदि स्थानों पर हर साल बड़े पैमाने पर कला प्रदर्शनियों के जो अयोजन हुआ करते थे उनमें, धारावाहिक रूप से अपने चित्र भेजने प्रारम्भ किये। जिज्जा बाबू की कला प्रतिभा को उपरोक्त सभी स्थानों पर सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्ष 1944 में अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी पटना में इनके चित्र को पुरस्कार मिला।

वर्ष 1944 से 1948 तक जिज्जा बाबू लखनऊ स्थित ललित मोहन सेन की कोठी पर उन्हीं के साथ रहे और उसी के बाद वर्ष 1948 में ये दिल्ली आ गये, यहाँ इन्हें पब्लिकेशन डिवीजन में कलाकार का पद प्राप्त हुआ।

इनके चित्र यूरोप, मिश्र, टर्की, ईरान, अफगानिस्तान, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया आदि स्थानों पर आइफेक्स द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों के माध्यम से प्रदर्शित होते रहे हैं। इनका वाश विधा का चित्र 'आरती' परम्परागत भारतीय कला के काफी निकट है परन्तु 'अल्मोड़ा बाजार' नामक चित्र दृश्य चित्रों के यथार्थवादी प्रभाव लिए हुए है।

जिज्जा बाबू ने उत्तर प्रदेश मे शिक्षा प्राप्त करने के बाद करीब दस वर्षो तक स्वतत्र होकर कार्य किया और अपने समकालीनो एव आगे आने वाले कलाकारों के लिए प्रेरणाश्रोत का कार्य किया इस दृष्टि से उत्तर प्रदेश का कला जगत इनका आभारी है। इन्होंने अपने कलाकार जीवन के माध्यम से ये भी स्पष्ट किया कि उत्तर प्रदेश मे जन्मा एवं शिक्षित चित्रकार भारतीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत के लिए भी कितना महत्वपूर्ण हो सकता है।

सुखबीर सिंहल

जन्म	:	14 जुलाई, 1913, मुजफ्फर नगर (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा	:	कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ
गुरू	:	असीत कुमार हल्दार
शिक्षण एवं कलाकर्म	:	दिल्ली गमन – 1936
	:	इलाहाबाद में कलाभारती सस्था की स्थापना 1938
अभिप्रेरक	:	इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला शिक्षा का प्रारम्भ
सम्मानित पद	:	उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के संस्थापक सदस्य–1936
	:	ऑल इंडिया आर्ट फेडरेशन के संस्थापक पदाधिकारी 1948
सम्मान	:	आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसाइटी नई दिल्ली द्वारा लकड़ी पर बनाये जलचित्र पर 1939
	:	वाश चित्रों पर 1941
	:	दशहरा कला प्रदर्शनी मैसूर – 1947
प्रदर्शनी	:	राष्ट्रीय ललित कला अकादमी नई दिल्ली 1955
भेंट	:	शान्ति निकेतन में नन्दलाल बोस से भेंट एवं अवनी बाबू का आशीर्वाद प्राप्त किया 1951
सम्मानित पद	:	प्राचार्य, कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ (1967-1968)
विशेषज्ञता	:	परम्परागत वाश तकनीक
परिवर्तन	:	सैंरा चित्रों के माध्यम से यथार्थवादी अंकन

श्री सुखबीर सिंहल :-

लखनऊ कला महाविद्यालय से ललित कला में डिप्लोमा प्राप्त श्री सुखबीर सिंहल आज भी अपने वाश चित्रों के साथ बगैर किसी परिवर्तन के जीने वाले एक मात्र चित्रकार हैं। अपने अत्यन्त साफ और महीन कार्यो की भाँति श्री सिंहल स्वय भी बहुत नियमित एव कार्य के प्रति प्रारम्भ से ही समर्पित रहे हैं।

श्री सिंहल का जन्म 14 जुलाई, 1913[1] को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिले मे हुआ था। इन्होंने कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ से ललित कला में डिप्लोमा किया और असीत कुमार हल्दार के निर्देशन में तत्कालीन आधुनिक भारतीय चित्रकला यानि बंगाल शैली की वाश तकनीक में विशेष योग्यता हासिल की । वर्ष 1936 में ये दिल्ली गये किन्तु जल्द ही वापस आकर वर्ष 1938 मे इलाहाबाद के सिविल लाइन एव दरभंगा इलाके मे 'कला भारती' नामक संस्था की स्थापना की और कला प्रेमियों को कला शिक्षा से परिचित कराया। यह वह समय था जब इलाहाबाद में चित्रकला शिक्षा का माहौल नगण्य था। आज के सुप्रसिद्ध आधुनिक समीक्षावादी चित्रकार प्रो० रामचन्द्र शुक्ल ने प्रारम्भ मे श्री सिंहल से ही कला शिक्षा प्राप्त की। श्री सिंहल का बहुत भारी योगदान रहा है इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला शिक्षा प्रारम्भ कराने में क्योंकि सर्वप्रथम श्री सिंहल ने ही वर्ष 1941 मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डा० अमरनाथ झा को प्रेरित किया कि वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला शिक्षा प्रारम्भ करायें इसी के बाद शान्तिनिकेतन से श्री मजुमदार वर्ष 1942 में इस कार्य हेतु बुलाये गये।

श्री सुखबीर सिंहल ने देश एवं प्रदेश के विभिन्न सम्मानित पदों पर रहते हुए निरंतर कला की सेवा की है और आज भी लखनऊ में कैसर बाग में रहते हुए अपनी संस्था कला-भारती द्वारा कला के प्रचार प्रसार एवं शिक्षण का कार्य जारी रखा हुआ है।

---

1 पत्रकार सदन, अप्रैल जून - 2000, पृष्ठ स०- 45

श्री सिंहल यूँ तो कला में प्रयोग के पक्षधर हैं और परिवर्तन को भी सही मानते है किन्तु आधुनिक चित्रकला की आड़ मे कला के साथ खिलवाड़ को सर्वथा अनुचित समझते हें। श्री सिंहल ने असीत बाबू से शिक्षा अवश्य प्राप्त की किन्तु वे देवी प्रसाद राय चौधरी के वाश चित्रों को जब तब देखा करते हैं और इनसे निरंतर प्रेरणा भी लेते रहते हैं। इन्होंने परम्परागत अजंता, राजस्थानी एवं लघुचित्रों से भी बहुत कुछ सीखा है। श्री एन खन्ना के अनुसार-"श्री सिंहल की सोच अब भी भारतीय संस्कृति और भारतीय चित्र परम्परा के प्रति प्रतिबद्ध है।"[1]

इस आधार पर भी श्री सिहल को बंगाल स्कूल की वाश पद्धति का परम्परावादी चित्रकार कहना ही अभीष्ट लगता है।

श्री सिंहल के प्रसिद्ध चित्रों में — 'कृष्ण-अर्जुन', 'गुरूदेर्णाचार्य', 'सरिता', 'अभिसारिका', 'बारात देखती महिलाएँ', 'राम सीता, लक्ष्मण को विदा देते दशरथ', अर्जुन विवाह, दरिया मिलन, रात-दिन, गांधी जीवन, मजदूर आदि हैं। इनमें से कई तो श्रृखला चित्र हैं।

इन चित्रो के अतिरिक्त श्री सिंहल ने 'भारतीय चित्रकला पद्धति' पर दो ग्रन्थ लिखे, जो प्रकाशित हो चुके हैं तथा अन्य कला सम्बन्धी ग्रन्थ प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

श्री सिंहल के ऊपर उल्लिखित चित्र पौराणिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक दर्शन के चित्र हैं इन्हें शास्त्रीय ढंग से ही बनाया गया है। गति, लय, कोमलता, और रेखायें पूरी पूर्णता के साथ भारतीय पम्परा का अनुसरण, करती प्रतीत होती है, मुख्य रूप से अजंता का। फिर भी श्री सिंहल ने इन विषयों से हटकर कुछ यथार्थवादी सैरा चित्र भी बनाये हैं जिनमें पहाड़ी जीवन शैली के प्रतीक लकड़ी के मकान आदि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने लकडी पर जलरंग चित्र बनाकर अपने प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व का भी परिचय दिया है। जिस पर वर्ष 1939 में इन्हें आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट सोसाइटी, नई दिल्ली ने सम्मानित भी किया

---

1 पत्रकार सदन, अप्रैल-जून 2000, पृष्ठ स०-45

गया है। श्री सिंहल ने धार्मिक चित्र अवश्य बनाये है किन्तु वे स्वयं को न धार्मिक मानते है न ही धर्म के ज्ञानी, धर्म के प्रति आस्था वे अवश्य रखते हैं। इनके अनुसार—"कलाकार के मन को जो अच्छा लगे उसकी अभिव्यक्ति ही उसकी ईमानदारी और उसका धर्म होती है। मेरे अदर न वाहवाही की तमन्ना है, ना आसमान छूने की लालसा। मेरे लिए कला न व्यवसाय है और ना ही प्रचार का माध्यम। मैं बदलती स्थिति से समझौता करने को मौका परस्ती समझता हूँ। बस यही कुछ ऐसे कारण है जहाँ समर्पण नही कर सका और एकाग्र साधना करता रहा।"[1]

आज की दुनिया से स्वयं को अलग करते हुए वे कहते हैं— "कला कारोबार नहीं है, जिसे फैशन में बदलना होता है। जब परिवर्तन प्रगति का दूत बनकर आता है तो अक्सर सघर्ष का जन्म होता है, मैंने भी परिवर्तन व सघर्ष के रूप देखे है। आखिरकार जो सघर्ष अनुभूति से अकुरित होता है, विचारों से प्रकट होता है, उसका सम्प्रेषण स्वयं में अपनी राह खोज लेता है।[2]

श्री सुखबीर सिंहल के वाश चित्र वृहत आकार के हैं तथा भीड वाले चित्रो मे आकृतियों की विविधता इनके चित्रो को अपने अन्य समकालीनों से पृथक पहचान दिलाती है।

विश्वनाथ मुखर्जी

जन्म	:	1921, बनारस (उत्तर प्रदेश)
शिक्षा	:	कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ 1939-45
गुरू	:	असीत कुमार हल्दार, ललित मोहन सेन, हिरण्यमय राय चौधरी, वीरेश्वर सेन
शिक्षण	:	मार्डन स्कूल दिल्ली - 1945
प्रदर्शनी	:	यूनेस्को, पेरिस, लन्दन, काबुल और टोकियो

1 पत्रकार सदन, अप्रैल-जून - 2000, पृष्ठ स०-46

2 वही

संग्रह	:	भारत सरकार
	:	राज्य सरकार हैदराबाद
	:	राज्य सरकार मध्य प्रदेश
	:	राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ
	:	काबुल, टोकियो, लंदन, पेरिस, कैरो, इस्तानबूल, अंकारा, बगदाद, अफ्रीकी देश, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, रूस, फिलीपीन्स, मलेशिया, हालैण्ड, बेल्जियम।
फेलोशिप	:	एनसिएंट मानूमेंट्स सोसाइटी, इंग्लैण्ड
विदेश गमन	:	1951 रॉयल सोसाइटी ऑफ फाइन आर्ट, लन्दन
सम्मानित पद	:	प्रधानाचार्य, गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ फाइन आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर, हैदराबाद (1953–1959:
	:	डिप्टी डायरेक्टर विजुअल पब्लिसिटी (1959–67)
	:	प्रिंसीपल कॉलेज ऑफ आर्ट, नई दिल्ली (1967–72–74)
प्रसिद्ध चित्र	:	मून ऑन कंक्रीट, (वाश), राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ।

विश्वनाथ मुखर्जी :-

श्री विश्वनाथ मुखर्जी का जन्म वाराणसी में वर्ष 1921 में हुआ था। कला प्रशिक्षण इन्होंने कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ से वर्ष 1939 – 45 तक निरंतर प्राप्त किया। जिसके अन्तर्गत ललित कला में डिप्लोमा एवं आर्ट मास्टर ट्रेनिंग के कार्यक्रम प्रमुख रहे। प्रशिक्षण पूर्ण कर लेने के बाद वर्ष 1945 में ही इन्होंने दिल्ली के मार्डन स्कूल में कला शिक्षण का कार्य प्रारम्भ किया। ये चित्रकार होने के साथ-साथ मूर्तिकार, छापा कलाकार एव कुशल एडवर्टाइजिंग आर्ट डिजाइनर थे।

श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने बंगाल स्कूल के दिग्गज कलाकारों से कला शिक्षा प्राप्त की जिसमें असीत कुमार हल्दार ललित मोहन सेन, हिरण्यमय राय चौधरी और वीरेश्वर सेन प्रमुख थे। इन कला गुरुओं से इन्होंने परंपरा एवं सस्कार रूप में जो कुछ सीखा उसे समकालीन कला जगत में नये तरीके से 'मून आन कंक्रीट' जैसे अविस्मरणीय चित्रों के रूप मे प्रस्तुत किया। इस चित्र को जलरंग की वाश विधा में ही बनाया गया है किन्तु यह चित्र विषयवस्तु, प्रस्तुतिकरण, एवं सोच के स्तर से बंगाल स्कूल से सर्वथा भिन्न है। वाश विधा मे निर्मित होने के बाद भी इस चित्र में टेक्श्चर की विशेषता इसे एकदम नवीन रूप प्रदान करती है। यहाॅ इस चित्र में विश्वनाथ मुखर्जी का 'चाॅद' बंगाल शैली के परम्परागत चाॅद की भाॅति रूमानी न होकर रेत की इमारतों में धॅसता हुआ प्रतीत होता है।

इसी प्रकार का टेक्श्चर वाला चित्र 'रीडिंग' भी है किन्तु 'रीडिंग' में एक स्त्री को पुस्तक पढ़ते हुए रेखाओं मे दिखाया गया है। यह चित्र बंगाल शैली के रेखांकनों की परम्परा के साथ परिवर्तन का संकेत भी देता है। इसे वर्ष 1946 मे बनाया गया है।

श्री मुखर्जी ने दृश्य चित्र भी बनाये हैं। माध्यम रूप में इन्होंने तैल, टेम्प्रा, वाश मे मुख्यता: कार्य किया है। जलरंग को हल्का- हल्का लगाकर रेखाओं के साथ नवीन प्रभावों में कलर स्केच भी बनाये हैं।

पुनर्जागरण अभियान की मूल भावना से प्रभावित चित्र 'सीताज फायर आरडियल' है,

श्री विश्वनाथ मुखर्जी ने उत्तर प्रदेश से कला के बीज धारण किये और सम्पूर्ण भारत में उसका पल्लवित रूप प्रस्तुत किया। ये हैदराबाद के गवर्नन्ट कालेज ऑफ फाइन आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर के प्रधानाचार्य के रूप में वर्ष 1953-1959 तक कार्यरत रहे, इसके पश्चात वर्ष 1959 - 1967 तक, मिनिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग भारत सरकार में एडवर्टाइजिंग एण्ड, विजुअल पाब्लिसिटी के निदेशक पद पर रहे। वर्ष 1967 - 72, 74 में नई दिल्ली के कला विद्यालय में प्राचार्य रहे साथ ही दिल्ली प्रशासन के अनेक शिक्षा सम्बन्धी शासकीय पदों पर भी रहे। इनके चित्र देश एवं विदेश में संग्रहीत है। जबलपुर के कला निकेतन में इनके चित्रो की गैलरी बनी है।

श्री मुखर्जी के चित्रो के विषय में ठीक ही प्रतीत होता है—''अंतरात्माभिव्यक्ति व मानवीय अनुभवो की खोज में एक अनवरत् प्रयोगवाद जो केवल विचारों के खुलेपन, मन की उदारता, तकनीकी परिपक्वता व समृद्ध रचनात्मकता के सामंजस्यात्मक परिणाम स्वरूप प्राप्त होता है, श्री मुखर्जी की रचना का प्रमुख गुण है। यह विशिष्टता समकालीन कलाकारो के लिए उत्प्रेरक बने रहने के साथ-साथ उत्तर प्रदेश को गौरवान्वित करती रहेगी।[1]

द्वारिका प्रसाद धुलिया

जन्म	:	1923
शिक्षा	:	ललित कला मे डिप्लोमा, लखनऊ
एकल प्रदर्शनियाँ	:	इलाहाबाद, लैंस डाउन, मसूरी,वाराणसी, नैनीताल लखनऊ
प्रतिनिधित्व	:	अखिल भारतीय स्तर की कला प्रदर्शनियों में
सम्मान	:	वरिष्ठ कलाकार का सम्मान आई फेक्स 1985
	:	उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा विशिष्ट प्रकाशन पुरस्कार 1985
संग्रह	:	राज्य संग्रहालय, नखनऊ
	:	वाई0 एम0 सी0 ए0 नैनीताल
	:	इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद
	:	जिला परिषद गोरखपुर
	:	गीता गार्डेन, गोरखपुर
	:	गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर
	:	सी0ए0सी0 राधा स्वामी मन्दिर आगरा
	:	राज्य ललित कला अकादमी उ0प्र0 लखनऊ
	:	देश एवं विदेश के व्यक्तिगत संग्रहों में
सम्मानित पद	:	कला एवं संगीत विभाग गोरखपुर में अध्यक्ष[2]

---

1 कला त्रैमासिक, अप्रैल से जून 2000, पृष्ठ स०-6

2 उपरोक्त आलेख का आधार Contemporary Artists of Uttar Pradesh S L K A Lucknow 1990

श्री द्वारका प्रसाद धुलिया :-

उत्तर प्रदेश के आधुनिक कला जगत को झझा, प्यास आदि चित्रकृतियो से समृद्ध करने वाले श्री डी० पी० धुलिया अपने समकालीनों में प्रमुख चित्रकार एवं कुशल कला शिक्षक रहे हैं। कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ से शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त इन्होने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षण कार्य किया। इसके बाद ललित कला और सगीत विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष हुए।

श्री धुलिया साहब चित्रकार होने के साथ-साथ कुशल लेखक भी थे। इनके द्वारा लिखी ''चित्र-दर्शन'' नामक पुस्तक भारतीय कला के विकास को अत्यन्त कुशलता से हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। दृश्यचित्रों के निर्माण मे धुलिया साहब को महारत हासिल रही है। इनके बनाये दृश्यचित्र काफी प्रसिद्ध भी रहे। 'पहाड़ी पुल' इनकी उच्चकोटि की रचना है इस वक्त यह चित्र इलाहाबाद संग्रहालय की कला दीर्घा में सुरक्षित है। इसी के साथ इनका चित्र 'गांव की लड़की' भी वर्तमान में इलाहाबाद संग्रहालय मे शोभायमान है। द विलेज गर्ल नामक चित्र टेम्परा विधि में बनाया गया है। अँधेरी पृष्ठभूमि वाला यह चित्र वर्टिकल कैनवस या कागज पर बनाया गया है। इसमे सिर्फ एक गाँव की किशोरी बाला को दोनों पैर मोडकर हॉथ को पीछे फर्श पर टिकाये हुए किसी उधेड़बुन में चित्रित किया गया है। लड़की के केश खुल है उसने पीले रंग की चोली और सफेद अधोवस्त्र पहना हुआ है और लाल रंग का एक दुपट्टा भी कन्धे पर ले रखा है। समस्त रंग धूमिल आभा लिए हुए चित्रित हैं। सम्पूर्ण चित्र में ब्रश के छोटे-छोटे आघात श्री धुलिया की विशेषता रहे है परन्तु इस चित्र में लड़की की उलझन वाली मुद्रा में सहायक का कार्य कर रहे हैं। इस चित्र में एक टक देखते रहें तो ऐसा प्रतीत होता है मानों लड़की अभी-अभी उठकर कुछ कहना चाहती है।

है।

इसी प्रकार पुल शीर्षक का चित्र जो तैल माध्यम में बना है, में श्री धुलिया ने अपने कुशल तूलिका संचालन के द्वारा पानी, पुल और चट्टानो को उनके स्वभाव के अनुसार विशिष्टता प्रदान की है। यह चित्र भी धूमिल और गहरी आभा वाले रगो में बनाया गया है।

इसी प्रकार इनका चित्र खैरागढ़ की ओर तैल माध्यम में निर्मित है इसमें आसमानी पीले एवं हरे रंग को ब्रश के छोटे आघातों से बहुत खूबसूरती के साथ दिखाया गया है। इस चित्र को देखकर यूरोपीय चित्रकार "स्यूरा" एवं "वानगाग" की तूलिका संचालन विधि का भ्रम होता है, फिर भी धुलिया साहब की यह तकनीक उपर्युक्त दोनों कलाकारों में स्यूरा के कुछ निकट कही जा सकती है । इनमे भी रगों की आभा सर्वथा मौलिक होने से धुलिया साहब बहुत सहजता से भारतीय आधुनिक कलाकारों की श्रेणी में आ जाते हैं और इनकी प्रसिद्ध यूरोपीय चित्रकारो से तुलना करना व्यर्थ हो जाता है।

श्री धुलिया के ऊपर तत्कालीन यूरोपीय कला का पर्याप्त असर था और मात्र रंगो के स्ट्रोक्स के कारण इनके चित्रों को प्रभाववादी चित्र कहा गया और इनकी गणना प्रभाववादी चित्रकारों में की जाने लगी। यूरोपीय प्रभाववाद के कुछ सिद्धान्त रहे हैं जिसमें काले रग के लिए कोई स्थान नहीं है, जबकि धुलिया साहब के चित्रों में काले रंग का प्रयोग है। इस आधार पर भी ये यूरोपीय प्रभाववाद से भिन्न हैं । चूंकि बंगाल शैली में प्रशिक्षित श्री धूलिया ने इस शैली की वाश विधा से हटकर तैल माध्यम एवं टेम्परा में सामाजिक जीवन का चित्रण किया, दृश्य चित्रण प्रभाववादी ढंग से किया जो परिवर्तन का लक्षण रहा है । अत: उ0प्र0 की आधुनिक चित्रकला में इनका योगदान इस दृष्टि से महत्तवपूर्ण है ।

धुलिया साहब ने अपने चित्रों में जिस समाज की रचना की है उसमें सौन्दर्य प्रतीति और सामाजिक दृष्टि में परस्पर विरोध नहीं है। इन दोनों के भीतर एक आन्तरिक गहरी एकता का अस्तित्व साफ दृष्टिगोचर होता है ।

धुलिया साहब ने आठ एकल प्रदर्शनियाँ इलाहाबाद, लैंसडाउन, मसूरी, वाराणसी, नैनीताल, लखनऊ, आदि जगहों पर की । इन्होंने अनेकों अखिल भारतीय प्रदर्शनियों मे उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व किया ।

मदनलाल नागर

जन्म	:	5 जून 1923, लखनऊ
शिक्षा	:	1940 मे दसवी उत्तीर्ण, कालीचरण विद्यालय लखनऊ।
	:	1946 ललित कला में डिप्लोमा राजकीय कला एवं शिल्प विद्यालय, लखनऊ।
मुक्त चित्रकार	:	1946 से 1948 तक
	:	1953 से 1956 तक
शिक्षण	:	1949–53 तक कला शिक्षक एवं क्यूरेटर, म्यूनिसिपल आर्ट गैलरी लखनऊ।
	:	1956 से प्रवक्ता, राजकीय कला एव शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ।
पुरस्कार	:	1964 राष्ट्रीय ललित कला अकादमी नई दिल्ली
	:	1971 सर्वोत्तम कृति, राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ
	:	1973 अखिल भारतीय तुलसी रामकथा प्रदर्शनी लखनऊ।
	:	1946 उत्तर प्रदेश कलाकार संघ
	:	1956 उत्तर प्रदेश कलाकार संघ
एकल प्रदर्शनी	:	1950, 1955 लखनऊ
		1955 – कानपुर
		1965 – राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ
		1977 – लखनऊ
सामूहिक प्रदर्शनी	:	1961 – 1964, 75 दिल्ली
	:	1967, 68, 75, 77 लखनऊ
	:	1973 गुजरात, आन्ध्र प्रदेश

	:	1958, 64, 68, 71, 76, 79 राष्ट्रीय प्रदर्शन एवं ललित कला अकादमी की ओर से नई–दिल्ली, रुस बुलगारिया, आदि मे।
	:	बाम्बे आर्ट सोसाइटी बाम्बे
	:	ललित कला अकादमी कलकत्ता आदि
	:	मैसूर दशहरा प्रदर्शनी मैसूर
पुस्तक	:	कला के सोपान I - II
सग्रह	:	ललित कला अकादमी नई दिल्ली
	:	राज भवन लखनऊ
	:	चण्डीगढ़ म्यूजियम
	:	लखनऊ विश्वविद्यालय
	:	राज्य ललित कला अकादमी उ० प्र०
	:	म्युनीसिपल आर्ट गैलरी, लखनऊ
	:	मोतीलाल नेहरू बाल संग्रहालय लखनऊ
	:	उत्तर प्रदेश निवास नई दिल्ली
	:	आई ए. एस ट्रेनिंग सेन्टर, मंसूरी
	:	पूर्वी संस्कृति संग्रहालय USSR और UK
देहावसान	:	1984

मदन लाल नागर

श्री मदनलाल नागर का जन्म 5 जून 1923 में लखनऊ के चौक स्थित एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। वर्ष 1940 में कालीचरण विद्यालय लखनऊ से दसवीं कक्षा पास की और श्री नारायण दत्त जोशी की प्रेरणा से इसी वर्ष कला महाविद्यालय में प्रवेश लिया। यहाँ असीत कुमार हल्दार, से कला शिक्षा प्राप्त की और वीरेन्द्र सेन, एल. एम. सेन आदि के सम्पर्क में आये। यहाँ के वातावरण ने इन्हें ख़ास प्रभावित किया।

प्रारम्भ में इन्होंने स्टिल लाइफ (स्थिर चित्र) नेचर स्टडी (प्रकृति अध्ययन), मुखाकृतियाँ आदि बनाने में विशेष महारत हासिल की और गम्भीरता से स्वयं को कला अध्ययन के प्रति अनुशासित किया। इन्होंने बिठूर, कानपुर, आदि जगहों के ग्रामीण इलाकों का भ्रमण किया और वहां के कई स्केचेज बनाये। देश के अन्य स्थानों में मुम्बई, नासिक, उत्तर प्रदेश के हिमालय क्षेत्र एवं काशी आदि का भी भ्रमण नागर जी ने किया। भ्रमण के साथ-साथ इन्हें पढ़ने और पुस्तकें एकत्रित करने का भी शौक था। कला के साहित्य एवं विश्व कला के इतिहास पर भी नागर जी की गहरी दृष्टि थी।

गम्भीर रूप से नागर जी की कला यात्रा वर्ष 1944 से प्रारम्भ होती है। वे अनवरत् चित्र निर्माण करते रहे और वर्ष 1984 में उनके निधन से उनकी कला यात्रा समाप्त ही हो गई। किन्तु अपने चित्रों से नागर जी औरों को प्रेरणा देते हुए हमारे बीच आज भी गतिमान है।

जाने माने हिन्दी कला समीक्षक एव स्वप्रशिक्षित चित्रकार श्री कृष्ण नारायण कक्कड़ ने श्री मदनलाल नागर की चालीस वर्षो की कला यात्रा को तीन काल खण्डों मे बॉटा है। यहॉ वे नागर जी की मुख्यत: तीन कला प्रवृत्तियों की ओर इशारा करते है- पहला कालखण्ड 1944-45 से 1954 ई० तक का है-इसमें इनकी कुछ मुखाकृतियाँ, **वाश शैली** के चित्र और भूखण्ड चित्र हैं। इनमे प्रशिक्षण के साथ संयोजन क्षमता भी दृष्टिगोचर है। नागर जी के ये चित्र स्वयं में तो महत्वपूर्ण है ही साथ ही इस बात का भी सकेत कराते हैं कि वे लखनऊ कला विद्यालय की सारी उपलब्धियों से रूबरू हो चुके थे।

नागर जी की कला का दूसरा कालखण्ड 1955 से 1963 तक है और पहले कालखण्ड का अधिक वैचारिक और कलात्मक विस्तार है। इस काल के उनके अधिकांश चित्रों का माध्यम तैल है।

इनका तीसरा कालखण्ड 1964 ई० के बाद प्रारम्भ होता है और सम्भवत: यह सबसे अधिक रचनात्मक चरण है।

एक काल या चरण दूसरे का अतिक्रमण भी करता है जो स्वाभाविक भी है। मदनलाल नागर के अन्तिम बीस वर्ष या तीसरे चरण का उन्हें राष्ट्रीय ख्याति दिलाने मे

महत्वपूर्ण योगदान है।— श्री कक्कड के अनुसार "नागर जी ने सभी माध्यमों में काम किया है जल चित्र, टेम्परा, ग्वाश पोस्टर, तैल इम्पेस्टो आदि। यह केवल उस व्यापक महारत से अवगत कराने के लिए सूचक के रूप में कह रहा हूँ। इन सभी माध्यमो में जहाँ एक विविधता का आभास मिलता है, वहाँ एक बात स्पष्ट होती है कि उनका विषय-विस्तार जटिल होता जा रहा था और अभिव्यक्ति में उतनी ही सरलता आती जा रही थी जो किसी भी महान रचना की विज्ञान, साहित्य, अभिनय कला सम्बन्धी या दृश्य कला सम्बन्धी सभी की अनिवार्य शर्त है।"[1]

नागर जी ने न सिर्फ चित्र निर्माण करके उत्तर प्रदेश के कला संसार को समृद्ध किया बल्कि उन्होंने अनेकों कला प्रदर्शनियों का सफलता पूर्वक आयोजन किया जिसमें उनके कला जीवन के प्रारम्भिक दौर की वर्ष 1949 में म्यूनिसिपल कारपोरेशन मे आयोजित प्रदर्शनी का उल्लेख आवश्यक है, जब उन्होने 90 कलाकृतियों की फ्रेमिंग अपनी देख-रेख मे अत्यन्त स्थायी तौर पर कराई ताकि चित्र भली भाँति सुरक्षित रखे जा सकें। इस घटना से नागर जी की चित्रों के रखरखाव के प्रति सजगता और जागरूकता का परिचय तो मिलता ही है। साथ ही आज के आयोजकों एवं कलाकारों के लिए उदाहरण भी प्रस्तुत है।

अपने चित्रो के विषयो को रचते समय नागर जी जानते थे कि वे उन्हें गढ़ रहे हैं या आकार दे रहे है। वे अपनी कार्यशैली या चित्रण पद्धति में अविष्कार करते है। रूपों को डिजाइन की भाँति सजाते भी है या डिजाइन के रूप में बनाते हैं। उदा० के लिए **'पलाश वन'** नामक चित्र में पेड़ों का आकार और **'सिटीस्केप'** नामक चित्र में गलियॉ कुछ डिजाइन जैसी ही मालूम पडती है किन्तु यह डिजाइन नागर जी की मौलिकता का सच्चा दिग्दर्शन कराती है। इस सारे क्रम में या चित्र बनाने की प्रक्रिया मे उनके संयम, कार्य में उच्च महारत, माध्यम की गहरी सैद्धान्तिक और व्यवहारिक' जानकारी ने बहुत मदद की। परिणामस्वरूप कलाकृति निर्माण का यह तरीका जटिल होते हुए भी अधिक सहज और

---

1 समकालीन कला, अक 17, मई, 1996, केन्द्र ललित कला अकादमी, पृष्ठ स०-11

सरल होता चला गया इस कार्य में उनका सारा दृष्टिकोण इन्हें विराट और सारगर्भित बनाता है।

श्री कक्कड के अनुसार- ''मदन लाल नागर ने वर्ड्सवर्थ की भाँति हॉरिजेन्टल और गलियो का भूलभूलैया के रूप में चित्रण किया है। ठीक वैसे ही जैसे वर्ड्सवर्थ की हॉरिजेन्टल या स्तरीय यात्रा वायवी या आकाशोन्मुखी वर्टिकल हो गई। जब नागर जी रचनात्मक स्तर पर चित्र गठित करते हैं तो वर्ड्सवर्थ की पद्धति का अनुसरण करके अपने को उच्च्च स्थान पर आसीन कर लेते हैं। सारी गलियॉ भूलभूलैया हैं और विराट खुलेपन की ओर संकेत स्पष्ट होता है। उनकी थोड़ी सी प्रक्रिया इसलिए भी भिन्न हो जाती है कि वे रंगो का जादू जानते थे और कुछ चित्रों के रेखाओं के प्रयोग में कही सपाट, कहीं मिश्रित रंगों का प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं। रंगों का जादू ख़ास तौर से, उदाहरण के रूप मे जब वे पीला या विशेष रूप से लाल रंगों और उनके विभिन्न वर्णो का प्रयोग करते हैं तो वे एक असाधारण सावधानी से काम लेते हैं ताकि रंग के करिश्में को निर्बन्धित करने की रचनात्मक प्रक्रिया का, वह स्वयं साक्षात्कार कर सके।''[1]

श्री मदनलाल नागर लखनऊ कलामहाविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर रहे और यहीं 1950 से एकल प्रदर्शनियों का सिलसिला शुरू किया। वर्ष 1958 से राष्ट्रीय प्रदर्शनियो में भी हिस्सेदारी प्रारम्भ हुई। वर्ष 1964 में इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला। श्री रनवीर सिह बिष्ट के अनुसार — ''नागर और शैलोज मुखर्जी को एक साथ रखकर देखा जा सकता है। स्वयं नागर जी को इस बात की चिन्ता भी थी कि उत्तर प्रदेश के कलाकार आत्म सन्तुष्ट रहकर निरूत्साहित न रहे।[2]

प्रारम्भ में नागर जी का रूझान भी अभिव्यंजना वादी था। किन्तु धीरे-धीरे इनके आकार गढ़े जाते मालूम होने लगे। इस प्रकार के चित्रों में एक चित्र का उल्लेख आवश्यक है जो **'त्रासपूर्ण शहर'** के नाम से प्रसिद्ध है। इसचित्र में सम्भवतः लखनवी मेहराबदार

---

1 समकालीन कला, अक 17, मई, 1996, पृष्ठ स० - 13

2 आधुनिक कला कोश, पृष्ठ स० - 534

इमारतें हैं। जो भूलभूलैया जैसी है किन्तु समग्र रूप से चित्र पर दृष्टिपात करें तो यह एक आदमी का चेहरा भी मालूम पड़ता है। इस प्रकार का कार्य स्पेन के सल्बाडोर डाली ने भी किया है। परन्तु डाली के चित्रो में जहाँ आकृतियाँ पिघलती हुई मालूम पड़ती हैं वहाॅ नागर जी के चित्रों का टेक्श्चर गत्ते की कटिंग किया हुआ सा जान पड़ता है। यहाॅ शहर की इमारतों मे कठोरता कम है जो हल्का होकर स्वयं में सिमटता सा प्रतीत होता है किन्तु संकीर्ण नहीं होने पाता।

अपने चित्रों की एकल प्रदर्शनियों से नागर जी ने जो अनुभव किया वह उन्ही के शब्दों में कुछ इस प्रकार है—''अपने संबंध में प्रशंसा सुनना अथवा पढ़ना यों तो सबके लिए ही सुखद अनुभव होता है किन्तु एक कलाकार के लिए इसका वास्तविक सुख तब ही है जबकि विषय की पकड़ और समझ के साथ ही प्रशंसक अथवा आलोचक की सवेदनशीलता अनुभूति के स्तर पर भी कलाकार से निकटता स्थापित करती है— कला - आलोचना के लिए तो यह तथ्य नितांत आवश्यक है क्योंकि आलोचक की प्रतिक्रिया से सामान्य प्रशसको और पाठको का एक बड़ा वर्ग प्रभावित होता है।

नवम्बर 1980 में दिल्ली में तथा 1981 में इन्हीं दिनों बम्बई में मेरे चित्रो की एकल प्रदर्शनियाॅ हुई। दिल्ली की श्रीधराणी आर्ट गैलरी में 1976 से 1980 तक के 20 चित्र तथा बम्बई की जहाँगीर आर्ट गैलरी में - 1976 से 1981 तक के 18 चित्र जिनमें 1981 के चित्र ही सर्वाधिक थे प्रदर्शित हुये। कृतित्व की प्रशंसा दोनों ही स्थानों पर सामान्य कला प्रशंसकों एवं कलामर्मज्ञो द्वारा हुई। किन्तु एक बात विशेष रूपसे मुझे यह अनुभव हुई कि बम्बई मे अधिकाश पुराने और नये प्रतिष्ठित कलाकारों ने जिस सहज भाव से स्वयं अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की दिल्ली में अपवाद स्वरूप एक दो कलाकारों को छोड़कर मुझे ऐसा अनुभव नहीं हुआ। बम्बई में वयोवृद्ध एवं प्रतिष्ठित कलाकार बेन्द्रे, चावड़ा, आरा व अन्य कितने ही नये पुराने कलाकारो ने जहाॅ विषय पर मेरी पकड़ और अभिव्यक्ति की मौलिकता पर खुलकर सराहना की वहीं नितान्त सहज भाव से सुख्यात कलाकार अकबर पद्मसी ने इस श्रृंखला के प्रदर्शित पूर्ववर्ती चित्रों की प्रशंसा करते हुए बाद के चित्रों में ''आर्किटेक्चरल मोटिफ्स''

की समायोजना के प्रति अपनी असहमति भी व्यक्त की। सहज भाव से व्यक्त उनकी यह प्रतिक्रिया मुझे जरा भी अरुचिकर नही लगी। यहॉ कला में अभिव्यक्ति की मर्यादा को लेकर उनका अपना दृष्टिकोण था।[1]'' प्रदर्शनी के दौरान अनेक विदेशी पर्यटक भी आये, इनमें से स्विट्जरलैड निवासी एक युवा दम्पत्ति मेरे एक चित्र ''गणेश-गली'' पर इस कदर मोह-ग्रस्त थे कि कई बार उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि काश बम्बई उनकी भारत-पर्यटन योजना का प्रथम स्थान न होकर अन्तिम होता जिससे कि वे वह चित्र अपने साथ ले जा सकते। एक अन्य थे, लन्दन के चित्रकार एवं कला शिक्षक श्री हैरीबेन्स एवं उनकी पत्नी। एक-एक चित्र को काफी समय देकर देखने के बाद वे मेरे पास आये, तथा अपना व अपनी पत्नी का परिचय देते हुए श्री बेन्स ने गर्मजोशी से मेरा हाँथ थाम कर यह कहते हुए मुझे बधाई दी कि उन्होंने विश्व के अनेक देशों का भ्रमण किया है तथा वहॉ की प्रमुख कला दीर्घाओ एवं कलाकारों के कार्य से भी वह परिचित है और कला की मेरी 'अप्रोच' उन्हें सर्वथा मौलिक प्रतीत हुई।''

उपरोक्त उद्गार श्री मदलनला नागर ने राज्य ललित कला अकादमी की पत्रिका 'कला त्रैमासिक' अंक 2 में वर्ष 1981 में व्यक्त किये थे। यहाँ इसका उल्लेख सिर्फ इस आशय से दिया जा रहा है कि राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्री नागर जी की रचनाये कितनी सशक्तता से स्वयं को साबित कर रही थीं। कलाकार कभी मिथ्या नही बोलता वह जो कुछ कहता है उसकी प्रामाणिकता उसका कार्य सिद्ध करता है।

प्रो० राम चन्द्र शुक्ल

जन्म	:	1 मार्च 1925, बस्ती, उत्तर प्रदेश
शिक्षा	:	के० पी० इन्टर कालेज, इलाहाबाद
	:	स्नातक - इलाहाबाद वि० वि० इलाहाबाद
कलागुरु	:	सुखबीर सिंहल, क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार - 1946

---

1 कला त्रैमासिक, अक 2, 1981 पृष्ठ स०- 20-21

शिक्षण	:	1948 से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
	:	1987 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय में समय समय पर व्याख्यान (जारी)
प्रमुख कार्य	:	1948-1964 तक पाश्चात्य आधुनिक कला प्रवृत्तियो का अध्ययन एवं स्वयं के भी प्रयोग
	:	काशी शैली 1956 - 1962 तक
	:	समीक्षावाद - 1974 से.
पुस्तकें	:	कला का प्रदर्शन
	:	कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ
	:	आधुनिक कला समीक्षावाद
	:	नवीन भारतीय चित्रकला शिक्षा पद्धति
	:	चित्रकला का रसास्वादन
सग्रह	:	इलाहाबाद सग्रहालय इलाहाबाद
	:	राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ
	:	उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद
	:	इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,
	:	वाराणसी
सम्मान	:	1996 में राज्य ललित कला अकादमी उ० प्र० की फेलोशिप प्रदान की गई।

प्रो० रामचन्द्र शुक्ल :-

भारतीय आधुनिक कला जगत में समीक्षावाद नामक एक नये कला आन्दोलन का सूत्र पात करने वाले प्रो० रामचन्द्र शुक्ल का बाल्यकाल से ही चित्रकला की ओर रूझान जागृत हो गया था। प्रारम्भ से ही नये नये माध्यमों मे कार्य करने की ललक, नई तकनीक सीखने की जिज्ञासा एवं नित नये प्रयोगों में तल्लीन रहना और इन सबसे बढ़कर समाज एवं

राष्ट्रहित के विषय में सोचते रहने वाले प्रो० शुक्ल ने स्वयं ही अपने विषय मे इतनी बेबाकियत से लिखा है कि उन्हें जानने एव समझने के लिए बहुत भटकना नहीं पडता। कला के क्षेत्र में समीक्षावाद नामक स्वदेशी आदोलन की शूरुआत करने से लेकर, चित्रकला विषयक तमाम बहुमूल्य ग्रन्थों की रचना करने के उपरान्त भी सहज व्यक्तित्व के धनी प्रो० शुक्ल की प्रतिभाओं का समूचा कला जगत ऋणी है।

इनका जन्म 1925 में बस्ती जिले के हरैया तहसील में एक छोटे से ग्राम शुक्ल पुरा में हुआ था। पिता शिक्षा विभाग इलाहाबाद में कार्यरत थे तथा माता स्कूली शिक्षा से अनजान थी।[1] माता पिता दोनों ही आध्यात्मिक चिन्तन तथा सांस्कृतिक एवं मांगलिक कार्यो में रुचि रखते थे जिसका प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रो० शुक्ल की चिन्तन शैली पर पड़ा जिसने इस कलाकार के मन में छिपे कला प्रेम को स्थायित्व प्रदान किया। चित्रकला की शुरूआत आपने अपनी इतिहास की पुस्तकों में छपे राजा महाराजाओ व राजनैतिक नेताओं के रेखाचित्र बनाकर की। इसके बाद प्रसिद्ध खिलाड़ियों व सिने कलाकारों के चित्र बनाये। स्कूल में मॉडल ड्राइंग व स्टिल लाइफ' से रंगीन पेस्टल चित्र बनाये। समय-समय पर कार्टून व कैरीकेचर में भी रुचि ली। इस प्रकार वे बिना किसी से चित्रकला की विधिवत शिक्षा पाये चित्र बनाते रहे। शुक्ल जी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा इलाहाबाद में ही सम्पन्न हुई। चूँकि उस दौरान इलाहाबाद में चित्रकला का कोई ख़ास माहौल नहीं बना था न ही अलग से चित्रकला सिखाई जाती थी, सिर्फ के० पी० इन्टर कालेज ही ऐसा था जहाँ इन्टरमीडिएट में भी कला शिक्षा दी जाती थी। अत: उन्होंने अपना पूर्व विद्यालय छोड़ इण्टर से इसी कालेज में दाखिला लिया, किन्तु शुक्ल जी के लिए इतना भर पर्याप्त नहीं था। सौभाग्य से उसी समय इलाहाबाद में सुखबीर सिंह सिंघल जो श्री असीत कुमार हल्दार के शिष्य थे तथा उन्हीं की तर्ज पर चित्र बनाते थे, ने लाउदर रोड स्थित दरभंगा कालोनी मे वाश पद्धति मे चित्रकला प्रशिक्षण प्रारम्भ किया। शुक्ल जी ने सर्वप्रथम यहीं श्री सिंघल से बंगाल शैली के आदर्शो के अनुरूप वाश पद्धति के चित्र सीखना प्रारम्भ किया।

---

1 श्री रामचन्द्र शुक्ल की कला यात्रा, इलाहाबाद सग्रहालय, इलाहाबाद द्वारा वर्ष 1990 मे आयोजित चित्रकला प्रदर्शनी के कैटेलाग से पृष्ठ - 1-2

बारहवी पास करने के उपरान्त शुक्ल जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में आगे की पढ़ाई हेतु दाखिला लिया। सौभाग्य वश यहाँ भी कला की कक्षाये बंगाल स्कूल के प्रसिद्ध कलाकार स्व० क्षितिन्द्र नाथ मजुमदार की देखरेख में आरम्भ हो चुकी थीं। प्रो० शुक्ल ने पूरी निष्ठा एवं लगन से मजुमदार साहब से वाश विद्या को सीखा। वर्ष 1946 तक इलाहाबाद मे वाश पद्धति में कार्य करने के उपरान्त वर्ष 1948 में चित्रकला के अध्यापक होकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी आ गये। यहाँ भी कुछ दिन वाश विद्या में काम किया। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में इन्हें अमृता शेरगिल के जीवन तथा कला सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने एवं देखने को मिलीं। श्री शुक्ल ने अमृता शेरगिल की कला से प्रेरणा लेकर रगो की भावाभिव्यंजन-शक्ति पर अनेकों प्रयोग किये तथा चित्र बनाये। यामिनी राय के चित्रों में लोक कला शैली प्रमुख थी परन्तु शेरगिल ने भारतीय जन-जीवन के यथार्थ को शक्तिशाली भावाभिव्यजना के माध्यम से चित्रित करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्हे रगो की भावाभिव्यंजना शक्ति को आत्मसात करना पड़ा लेकिन इससे श्री शुक्ल को संतोष नही हुआ क्योकि अमृता शेरगिल की शिक्षा पेरिस में हुई थी तथा उनकी कला पाश्चात्य कला से प्रभावित थी। पाश्चात्य कला को समझने के लिए शुक्ल जी ने पेरिस के कलाकारों एवं कला का विशेष अध्ययन किया, अनेक पुस्तकें पढ़ीं तथा चित्र देखें। शुक्ल जी पाश्चात्य कला से प्रभावित तो हुए परन्तु उनकी नकल उन्होंने नहीं की। इसके स्थान पर कला के मूल उद्देश्य को खोजने और समझने का प्रयास किया।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शुक्ल जी 'पिकासो' एवं 'पाल क्ले' जैसे प्रतिष्ठित कलाकारों की ओर उन्मुख हुए। शुक्ल जी ने इनके चित्रों के अध्ययन के साथ साथ इनके विचारों का भी बड़ी गहराई से अध्ययन किया।[1]

इस सन्दर्भ में स्वयं शुक्ल जी के शब्दों में "मैं अब पाश्चात्य आधुनिक कला की गतिविधियों से अच्छी तरह परिचित हो चला था और वहाँ की सूक्ष्म कला अथवा

---

1 रामचन्द्र शुक्ल की कलायात्रा, ब्रोशर, इ० स० इलाहाबाद, वर्ष 1990, पृष्ठ 3-4

अरूपवादी कला ऐब्स्ट्रैक्ट आर्ट का विशेष अध्ययन तथा मनन करने लगा था। उस समय विशेषकर 'पाल क्ले' के कलागत विचारों का मैने विशेष अध्ययन किया, क्योंकि वही एक ऐसा पाश्चात्य आधुनिक कलाकार था, जिसने आधुनिक कला के मूल तत्वो का बडा सटीक विवेचन प्रस्तुत किया था। मैं एक ओर पाश्चात्य आधुनिक कला की विशेष प्रवृत्तियो का अध्ययन कर रहा था तथा दूसरी ओर उन्हें आत्मसात करने के लिए नये प्रयोगों की ओर भी आकृष्ट हुआ। वर्षो जम कर पाश्चात्य आधुनिक कला की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया, उन पर अनेक लेख लिखे, पुस्तकें लिखीं और स्वयं भी चित्रकला में नये नये प्रयोग करता रहा। यह क्रम एक मायने में जो 1948 से आरम्भ हुआ तो लगभग 1964 तक बराबर चलता रहा ।''[1]

स्वय शुक्ल जी के अनुसार 1949 मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे अलग से 'स्कूल ऑफ फाइन आर्ट' की स्थापना हुई और उसमें इन्हें अध्यापन का विशेष अवसर प्राप्त हुआ। जहॉ इनकी मुलाकात फ्रांस से आकर वाराणसी में बसे कला मर्मज्ञ श्री एलन इनेल्यू तथा रेमंड बर्नियर से हुई। एक भारतीय संगीत शास्त्र के विद्वान थे दूसरे भारतीय मूर्तिकला के प्रसिद्ध फोटोग्राफर। इनसे सानिध्य स्थापित कर शुक्ल जी ने पाश्चात्य आधुनिक कला पर विचार विमर्श तो किया ही साथ ही भारतीय कला को एक नया मोड देने पर भी विचार-विमर्श हुआ। उसी समय से इन्होंने पुनः प्राचीन भारतीय कला के मूल तत्वों को खोजने, समझने, परखने तथा प्रयुक्त करने का नया रास्ता अपनाया जिसका प्रतिफल 1953-54 मे काशी शैली के रूप में प्रस्तुत हुआ।[2]

राजस्थानी कला के मूल तत्वों को और भी नजदीक से देखने परखने और उसे समझ कर भारतीय कला के आधार बनाकर कार्य करने की प्रेरणा ने काशी शैली को जन्म दिया। बंगाल स्कूल के कलाकारों ने मुख्यत: अजंता शैली के चित्रों को अपनी कला का आधार बनाया था। किन्तु शुक्ल जी को लगा कि तत्कालीन वर्तमान में कला की दृष्टि से

---

1 प्राक्थन, आधुनिक कला समीक्षावाद, रामचन्द्र शुक्ल, कला प्रकाशन, 17 नया बैहराना, इलाहाबाद, पृष्ठ स० 5

2 आधुनिक कला, समीक्षावाद, पृष्ठ - 5

हेतु उनकी मौन सहमति श्री शुक्ल जी के साथ हमेशा रही जिसका स्मरण करते हुए शुक्ल जी आज भी अपने गुरु के प्रति नये सिरे से संवेदनशील हो उठते हैं।

समीक्षावाद :-

वर्ष 1974 मे तीसरी अन्तर्राष्ट्रीय त्रैवार्षिकी त्रिनाले मे आमंत्रित एक अमेरिकन आधुनिक चित्रकार ने जब शुक्ल जी के तब तक के आधुनिक चित्रों का अवलोकन किया और उनकी मौलिकता पर सन्देह जताया तो शुक्ल जी को बहुत धक्का लगा। बात सच भी थी। शुक्ल जी के तत्कालीन चित्र भले ही प्रयोग की दृष्टि से उद्भावनाओं से परिपूर्ण रहे है इनमें प्रतीकों का भी सार्थक प्रयोग होता रहा है, दार्शनिक एवं सामाजिक अभिव्यजना भी प्रधान रूप से परिलक्षित रही है फिर भी पाश्चात्य चित्रों से तकनीकी समानता रखने के कारण ही उस अमेरिकन चित्रकार ने उनके आधुनिक चित्रों को उनका मानने से इन्कार कर दिया था। अब शुक्ल जी ने पाश्चात्य आधुनिक कला से पूरी तरह मुक्त होने का निश्चय किया। साथ ही यह सोच विकसित की कि अपने देश तथा समाज की वर्तमान सामाजिक स्थिति, जीवन, समस्याओं, आर्थिक, राजनैतिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियो, समकालीन सोच तथा चेतना को ही अपनी भावी कला का मूलाधार तथा प्रेरणा स्रोत बनाया जाय। पश्चिमी कला में प्रचलित तकनीकी खिलवाड़ तथा अनबूझता से दूर हट कर कला की ऐसी भाषा निर्मित की जाय जो सरलता से लोगों को प्रभावित कर सके। कला को व्यक्तिवादी कटघरे से निकाल कर समाज के मुक्त वातावरण में फलने फूलने दिया जाय।[1]

स्वयं शुक्ल जी के अनुसार ''इसी समय बिहार में स्वर्गीय जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में एक देश व्यापी आन्दोलन भ्रष्टाचार के खिलाफ उठ खड़ा हुआ था। मुझे भी लगा इस समय देश के सामने सबसे बड़ी समस्या, भ्रष्टाचार, शोषण, तथा अनैतिक व्यवहार है। इसी से सारा देश दूषित एवं जर्जरित हो रहा है। इसके रहते समाज में कोई प्रगति सम्भव नहीं है। यही प्रश्न आज के भारतीय समाज की सबसे प्रत्यक्ष समकालीनता है और इससे

---

1 आधुनिक कला, समीक्षावाद, प्रो० रा० च० शुक्ल, पृष्ठ – 8-9

लड़ना सबसे बड़ी आधुनिकता और यही कलाकार के लिए अभिव्यंजना की सबसे महत्वपूर्ण प्रेरणा है। ऐसा भी सम्भव है जब तीखे पैने प्रतीकों तथा व्यंगात्मक शैली का रास्ता अपनाया जाय।''[1]

स्वयं के चित्रों पर समीक्षात्मक दृष्टि डालते हुए शुक्ल जी ने जो कहा है वह समीक्षावाद के नामकरण को स्पष्ट करता है कि ''मेरी स्वय की शैली इधर इमर्जेसी के दौरान एकाएक काफी कुछ बदल गई। इसके पहले से ही मैं अनुभव कर रहा था कि हमारे देश के लिए चित्रकला की विदेशी भाषा कुछ कारगर सिद्ध नहीं हो रही है, वह प्रभाव शून्य होती जा रही है। अपनी भाषा मे, अपने जीवन और समाज के ज्वलन्त प्रश्नो की आम व्यजना करना अब आवश्यक हो गया है। इमर्जेन्सी के दौरान जो घुटन और क्रोध पैदा हुआ उसने मेरी कला को एक नई सड़क पर चलने के लिए बाध्य कर दिया है। अब मेरा प्रयास अपने चित्रों मे समाज मे व्याप्त भ्रष्टाचार पर करारी चोट करने का हो गया है। शैली देखने मे अत्यन्त स्पष्ट और पैनी तो है ही समीक्षात्मक दृष्टि प्रमुख हो गई है। इधर के अपने चित्रों की शैली को मैंने 'समीक्षावाद' कहा है।[2]

'समीक्षावाद' आंदोलन की शुरुआत में श्री शुक्ल के साथ जो कलाकार जुड़े उनमें प्रमुख थे श्री रघुवीर सेन धीर, श्री सन्तोष कुमार सिह, श्री वेद प्रकाश मिश्र, अलीगढ़ के श्री गोपाल मधुकर चतुर्वेदी तथा इलाहाबाद के श्री बाला दत्त पाण्डेय। दिल्ली के डा० कमलेश दत्त पाण्डेय ।

समीक्षावाद क्या है इस प्रश्न के उत्तर में तो शुक्ल जी की पुस्तक 'आधुनिक कला 'समीक्षावाद' से बेहतर ग्रन्थ नहीं है जिसमें न सिर्फ समीक्षावाद' की ही पूरी व्याख्या है अपितु आधुनिक भारतीय चित्रकला की भी तमाम भ्रान्तियों का निवारण है। फिर भी संक्षेप में कहें तो ''समीक्षावाद एक कलागत विचार धारा है, 'आन्दोलन है।''[3]

---

1 आधुनिक कला, समीक्षावाद, प्रो० रा० च० शुक्ल, पृष्ठ - 9

2 'तूलिकाकन', प्रवेशाक, मई 1978, लेख - वाराणसी मे आधुनिक कला' रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ -12 (आधुनिक कला समीक्षावाद', रा च शु पृष्ठ - 09)

3 आधुनिक कला समीक्षावाद, राम चन्द्र शुक्ल, पृष्ठ - 199

शुक्ल जी के अनुसार प्रत्येक चित्रकार को अपने चित्रों की समीक्षा स्वय करनी चाहिए। शायद इसी भावना के बलवती होने के कारण ही वे चित्रकला पर सशक्त लेखन कर सके। शुक्ल जी एक क्रान्तिकारी चित्रकार ही नहीं एक क्रान्ति कारी लेखक भी है। इनके चित्र ही समीक्षावादी नहीं है अपितु इनके लेख भी समीक्षावाद की शर्तो के अनुकूल है। जिस प्रकार इनके समीक्षावादी चित्रों में आकृतियों की चिरपरिचित वेशभूषा एव विषय वस्तु के माध्यम से दर्शक को सरल तरीके से जटिल समस्याओं से परिचित कराया जाता है उसी प्रकार इनकी भाषा भी अत्यन्त सहज है जो आधुनिक चित्रकला की जटिलताओ को बडे प्यार से पाठक / दर्शक के मन मस्तिष्क मे प्रवेश करा देती हैं। हिन्दी भाषा में भारतीय आधुनिक चित्रकला पर हमारे यहॉ गिनी चुनी पुस्तके हैं वह भी सही दिशा निर्देश कर सकेंगी, इसमें सन्देह है किन्तु शुक्ल जी ने अपने लेखन से चित्रकला के विद्यार्थियो को ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय चित्रकला जगत को समृद्ध किया है। एक विद्रोही कलाकार, एक विद्रोही लेखक जिसका विद्रोह समाज की बुराइयों के प्रति है, समाज सेवा के लिए है, जो एकला चलो की तर्ज पर आज भी अपने इरादों पर अटल होकर निरंतर कला यात्रा में तल्लीन है। जिसने बंगाल शैली की ठंडी रंग योजना से अपना सफर प्रारम्भ किया और आज के गर्म माहौल में अपनी कला से उन तथ्यों को उद्घाटित किया जो आम लोगों के सामने आ ही नहीं पाते। कम से कम 30-40 वर्ष पूर्व तो आम जनता इतनी जागरूक नहीं ही थी जितनी कि आज।

शुक्ल जी के समीक्षावादी चित्रों में तत्कालीन समाजिक विसंगतियां एवं बुराई तो स्पष्टता से दिखाई गई है किन्तु उन बुराइयों उन समस्याओं का हल कहीं भी नहीं बताया गया है। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध साहित्यकार एवं चित्रकार श्री जगदीश गुप्त जी का कथन याद आता है कि ''कला का उद्देश्य समाधान प्रस्तुत कर देना नहीं है बल्कि समस्याओं का गहराई से आभास करा देने मात्र से भी कला का उद्देश्य पूर्ण होता है''।[1]

---

1 वर्ष 1989 मे चित्रकला विषय पढाते समय दिये गये लेक्चर से—

श्री रायकृष्ण दास के शब्दों में :— ''श्री रामचन्द्र शुक्ल उत्तर प्रदेश के उन विशिष्ट चित्रकारों मे से है। जिन्होने देश के उत्कृष्ट कलाकारों में अपना एक स्थान बना लिया है। इतना ही नहीं उन्होंने कला के सम्बन्ध में मौलिक चिन्तन भी किया है तथा उस चिन्तन को कला के तात्विक चिन्तकों के विचारों के अध्ययन और अनुशीलन द्वारा परिपक्व भी किया है।[1]

प्रो० शुक्ल अपनी मौलिकता के प्रति पूरी तरह सच्चाई बरतते है यहॉ तक कि लेखन के क्षेत्र मे भी वे सरल सहज भाषा को अपनाते हैं और उन्होंने कहा भी है—'' मै तो भाषा को आत्म अभिव्यक्ति का माध्यम ही मानता हूँ, और जिस ढग से अपनी बात सीधे-सीधे सरलता से स्पष्ट कर पाता हूँ, करता हूँ मै उस भाषा मे लिख ही नहीं सकता, तो मेरी नही।[2]

ध्यान देने योग्य है कि जो व्यक्ति मूलतः एक चित्रकार है और लेखन के क्षेत्र मे आत्माभिव्यक्ति को महत्व देता है तो वह अपने चित्रों में विदेशी बिम्बों को क्यों कर स्वीकार करेगा। अपने इसी देशजपन से प्रेरित होकर शुक्ल जी ने विदेशी चित्रो की अनुकृतियों को तिलांजलि देकर समीक्षावादी चित्रों को बनाना प्रारम्भ किया। इन चित्रों के पीछे यह भी कारण था कि साठ एवं सत्तर के दशक से समाज मे जो बुराइयाँ व्याप्त होने लगीं थी उन्हें दूर करने या उनकी तरफ जनता का ध्यान खींचने के लिए, आदर्श चरित्र की भूमिका, जो प्राचीन काल से आदर्श साहित्य या आदर्श चित्रों में बताई जा रही थी बेमानी होने लगीं। स्वयं शुक्ल जी इस सन्दर्भ में कहते हैं कि रामायण और रामचरित मानस में समाज का आदर्श सबसे ज्यादा वर्णित है, किन्तु इनके होते हुए भी समाज से बुराइयॉ हट गई, ऐसा नहीं है। यदि इन आदर्श साहित्य के होते हुए बुराइयाँ बढ़ सकती हैं तो फिर बुराई दूर करने के लिए अन्य तरीका भी होना चाहिए।''[3] इस प्रकार 'व्यंग्य' को तत्कालीन

---

1 कला का दर्शन - लेखक रा०च०शु० पृष्ठ स० - प्रथम दृष्टि

2 वही पृष्ठ स० - (भूमिका से) III

3 शुक्ल जी के साक्षात्कार से —

सामाजिक विसंगतियो से निपटने के लिए सर्वोत्तम माना गया फलस्वरूप साहित्य मे हरिशंकर परसाई (प्रतिनिधि व्यंग्य), (तिरछी रेखाएं) श्री लाल शुक्ल (राग दरबारी) आदि रचनाकारों का प्रादुर्भाव हुआ और चित्रकला के क्षेत्र में प्रो० राम चन्द्र शुक्ल के समीक्षावादी चित्रो का।

शुक्ल जी के अनुसार ''परम्परा एक दूसरे से चेन की तरह आगे बढ़ती है, जहाँ परम्परा से हटकर काम होता है वहाँ नवीनता एवं आधुनिकता दोनों का दिशा बोध होता है। आधुनिकता वही है जो आज के जमाने के ज़्यादा नजदीक है साथ ही जिसमे खोज भी है।[1]

श्री शुक्ल जी द्वारा वर्ष 1946 में वाश शैली में निर्मित **पार्वती** नामक चित्र बहुत ही सजीव प्रतीत होता है। इस चित्र को वे क्षितीन्द्रनाथ मजुमदार शैली के अन्तर्गत मानते है। उनके अनुसार जिस वक्त मजुमदार साहब के समकालीन लोग वाश चित्रो मे सफेद रंग का प्रयोग कर रहे थे तो मजुमदार साहब ने अपने चित्रों में सफेद का प्रयोग नहीं किया है।

काशी शैली के इनके चित्रों में कुछ विभिन्नता है जैसे- **महालक्ष्मी, बारात, प्रेम प्रसून और पहाड़ी अभिसारिका** आदि चित्र, राजस्थानी चित्रों के ज़्यादा क़रीब लगते है जबकि **राम लखन की सवारी, रामलीला, सरस्वती, महागणेश गौनई, शहनाई वादन** एवं आशीर्वाद इत्यादि चित्र लोक कलाओं के अधिक निकट हैं। इन चित्रों की मोटी रेखायें, चटख रंग, और ठोस आकार शुक्ल जी की आधुनिकता की यात्रा मे सेतु का काम करते हैं।

इसके बाद शुरु होता है समीक्षावादी चित्रो का दौर, इस समय के उनके चित्रों में प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात कहने की व्यग्रता स्पष्ट है। शुक्ल जी ने जानवरो एवं पक्षियों के माध्यम से तत्कालीन बुराइयों की तरफ इशारा किया है। **'कुर्सी में संकट'** नामक चित्र में एक उल्लू को कुर्सी पर बिठाया है और पृष्ठभूमि में 12 उल्लुओं को तार पर बैठे दिखाया है जो आज की राजनीति पर भी सटीक प्रहार है।

---

1 शुक्ल जी के साक्षात्कार से —

इसी तरह कहीं उद्दण्ड सिंह को दंगाई छात्रों के प्रतीक रूप में चित्रित करके छात्र राजनीति के दुष्परिणाम की ओर इशारा किया है।

शुक्ल जी के उपर्युक्त समीक्षावादी चित्र विषय की दृष्टि से आधुनिकता का सन्दर्भ लिए हुए है, फिर भी इनके मर्म में विशुद्ध खोज के बजाय सामाजिक विसंगतियों को देश के सम्मुख लाने का उद्देश्य ज्यादा है। अत: अपनी परम्परा के अध्ययन एवं मनन के उपरान्त उनके द्वारा निर्मित साधारण सामाजिक विषयों के चित्रों में खोज एव प्रयोग की गूँज से ओत प्रोत काशी शैली के कुछ चित्रों को हम आधुनिक चित्रों की श्रेणी में ही रखते हैं।

असद अली

जन्म	:	10 अक्टूबर, 1926 मलीहाबाद, लखनऊ
कला गुरू	:	वीरेश्वर सेन
शिक्षा	:	ललित कला में डिप्लोमा लखनऊ, 1957
	:	मूर्तिकला मे पोस्ट डिप्लोमा लखनऊ 1958
	:	भित्ति चित्रण में प्रशिक्षण वनस्थली, 1959
	:	एम ए ड्राइंग एण्ड पोण्टिग, आगरा 1966
सम्मानित पद एवं शिक्षण	:	इन्स्ट्रक्टर क्लेमाडलिंग लखनऊ 1958
	:	डेमोन्स्ट्रेटर इन म्यूरल लखनऊ 1968
	:	प्रवक्ता, ललित कला लखनऊ 1975
पुरस्कार एवं सम्मान	:	द्वितीय अखिल भारतीय युवा कांग्रेस समारोह मे प्रथम पुरस्कार, 1957
	:	राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश, 1970, 73, 88
	:	ऑइफेक्स - 1988
	:	भारत सरकार द्वारा शोध अध्ययन वृत्ति पर कार्य
एकल प्रदर्शनी	:	लखनऊ- 1969, 70, 72
	:	नई दिल्ली - 1973, 74, 86, 87

सामूहिक	:	राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ, 1979, 85, 86
	:	ललित कला अकादमी दिल्ली, 1976
	:	आईफेक्स 1962
	:	अन्तरराज्य विनिमय कला प्रदर्शनी– उत्तर प्रदेश 1984
संग्रह	:	राज्य ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश
	:	ललित कला अकादमी नई, दिल्ली
	:	अनेकों व्यक्तिगत संग्रह देश एवं विदेश में
	:	कला महाविद्यालय दिल्ली
	:	टैगोर पुस्तकालय लखनऊ
विभिन्न कार्य	:	व्याख्यान – देश के विभिन्न स्थानों में आकाशवाणी वार्ता लेखन

असद अली

चित्रकला मूर्तिकला एवं लेखन में समान रूप से दखल रखने वाले श्री असद अली ने प्रदेश के कला जगत का निरंतर विकास किया है। इनके पिता श्री इनायत अली मुगल वास्तुकार एव सुसज्जा मर्मज्ञ थे, जिनके सानिध्य ने श्री असद अली के अन्त:करण मे कला के लिए लगााव पैदा किया।

इनका जन्म मलीहाबाद (लखनऊ) में 10 अक्टूबर वर्ष 1926 को हुआ था। कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ से इन्होंने चित्रकला एवं मूर्तिकला में डिप्लोमा क्रमश: वर्ष 1957 एवं 1958 में किया। चित्रकला में एम.ए. इन्होंने आगरे से 1966 में पूर्ण किया तदोपरान्त कला एवं शिल्प महाविद्यालय में अध्ययन प्रारम्भ किया।

यूँ, तो श्री असद अली ने विभिन्न क्षेत्रों मे कार्य किया है और अनेकों प्रयोग भी किये हैं किन्तु इनका अत्यन्त चर्चित एवं नवीनतम कार्य इनके रंगहीन कोलाज है जिसमे इनकी मौलिकता खुलकर आयाम लेती है। इस तरह के कार्य के लिए श्री अवधेश मिश्र ने कहा है–''सितारो से परिपूर्ण काली रात'' ने असद अली को अचानक आकर्षित किया और

विवश किया कि वे इसे पृथक स्वरूप के साथ अभिव्यजित करे। मन की इस अकुलाहट ने वर्णविहीन चित्रों को केवल छाया-प्रकाश और उभार के जरिये एक रूप प्रदान किया जिसमें कैनवस के पीछे गोलाकार प्लास्टिक कोटेड-एल्युमिनियम (रिग) तथा सुई धागे प्रयुक्त होने लगे। इन्हीं सामग्रियों के माध्यम से जो उभार-गइराई और लो-रिलीफ जैसे आयाम प्राप्त हुए वे वास्तु शिल्प और चित्र के समन्वयात्मक रूप थे, तथा विभिन्न कोणो से प्रकाश प्राप्त होने पर विविध प्रकार के प्रभावोत्पादन मे सक्षम भी थे।''[1]

असद अली द्वारा बंगाल शैली के वाश चित्रों एवं रेखांकनों की परम्परा से हटकर एलमुनियम एवं प्लास्टिक कोलाज में निर्मित 'सन', 'द लास्टसपर', 'युगल', 'फ्लावर', 'आर्गेनाइज्ड लाइन्स एण्ड स्टार्स आफ डेस्टिनी', 'टू सिस्टर्स', 'मून थ्रू द वुड' टारसों एव अनेकों कम्पोजीशन शीर्षक के चित्रों की श्रृखला के निर्माण के पीछे क्या कारण रहे हैं जो अचानक उन्होंने इस प्रकार के कोलॉज बनाये । ऐसे प्रश्नों के उत्तर मे यही कहा जा सकता है कि चित्रकार के रूप में इनका प्रयास स्पर्श पर्यवेक्षण द्वारा कला का आनन्द लेने की ओर है जिसके लिए वे स्वीकारते भी है कि ''नेत्रहीनों की स्पर्श संवेदना से उजागर एक खास तरह का संसार मुझे प्रेरित करता रहा है।''[2]

रंग विहीन चित्रों के विषय में तर्क देते हुए श्री अली विदेशी वर्णों के स्थायित्व पर संदेह प्रकट करते हुए तर्क देते है कि ''अपनी गौरवमयी संस्कृति मे पश्चिमोन्मुखता, देश प्रेम पर प्रश्न चिन्ह लगाती हैं। हमें स्वावलम्बी बनने के लिए अपने उत्पादों में अनुपलब्धता की स्थिति मे, उसके बगैर भी जीना सीखना चाहिए । अतिरिक्त इसके दूसरा पक्ष यह भी है कि चित्र में आकार, आयाम और छाया-प्रकाश ही प्रमुख तत्व हैं, जिन्हें वर्णो के अभाव में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।''[3]

---

1 मोनोग्राफ, असद अली, पृष्ठ स0 2

2 मोनोग्राफ, असद अली, रा0ल0क0अ0 लखनऊ, पृष्ठ स0 3

3 वही

श्री असद अली द्वारा निर्मित वाश चित्रों में 'घर की ओर' इनका तत्कालीन बंगाल शैली का प्रमुख चित्र है । इस चित्र में हाथ में हँसिया लिये एवं सिर पर घास का गठ्ठर लादे तीन महिलाये चित्रित हैं। बंगाल स्कूल के चित्रकारों की तर्ज पर बना यह चित्र एक सामाजिक विषयवस्तु का चित्र है।

सयोजन शीर्षक का तैल माध्यम में निर्मित चित्र उपर्युक्त चित्र से सर्वथा भिन्न है। इसमें चाकू से मोटे रंग लगाकर चित्रकार का प्रयोग की दिशा में किया गया कार्य स्पष्ट परिलक्षित होता है । इसके अतिरिक्त "केज्ड" एवं "किस" भी तैल माध्यम में निर्मित चित्र हैं। इन चित्रों में ज्यामितीयता पाश्चात्य मोन्द्रिया के चित्रों से आशिक साम्य रखती है और पिकासो के भी नजदीक है किन्तु फिर भी इन चित्रो में कहीं कहीं लयात्मकता इन्हे यूरोपीय मोन्द्रिया और पिकासो से अलग करती है । कालान्तर में अपने प्लास्टिक और एल्युमिनीयम कोलाजों द्वारा असद अली आधुनिकता की प्रबल दावेदारी प्रदर्शित कर देते है ।

चित्रकारी के अलावा श्री असद अली ने ललित मोहन सेन, मदनलाल नागर, रणवीर सिंह बिष्ट एव बद्री नाथ आर्य के मोनोग्राफ हेतु लेखन कार्य किया तथा देश की विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में कला सम्बन्धी उपयोगी लेख लिखे।

डा० जगदीश गुप्त

जन्म	:	1926 शाहाबाद, हरदोई, उत्तर प्रदेश
कला शिक्षा	:	डिप्लोमा ललित कला इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।
कला गुरु	:	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार
पुस्तके	:	भारतीय कला के पदचिन्ह, 1961 प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला 1967
सग्रह	:	राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ
	:	इलाहाबाद संग्रहालय इलाहाबाद

	:	अनेको व्यक्तिगत संग्रहों मे
एकल प्रदर्शनी	:	1994, इलाहाबाद संग्रहालय
सामूहिक	:	पचास के दशक से निरंतर
विशेषज्ञता	:	रेखाकन

डा० जगदीश गुप्त :-

''पुराणमित्येव न साधु सर्वन् चापि काव्यं न मित्यवद्यम्।
सन्त: परीक्षायान्यतरद् भजन्ते मूढ़: पर प्रत्ययनेय बुद्धि:॥''[1]

(कोई भी वस्तु पुरानी हो जाने से ही अच्छी नहीं हो जाती, न कोई काव्य नवीन होने के कारण निन्दनीय होता है। सज्जन पुरुष नये एवं पुराने का परीक्षण करने के उपरान्त जो उपयुक्त होता है उसको ग्रहण करते हैं। मूर्ख व्यक्ति की बुद्धि तो दूसरे के ज्ञान से सचालित होती है)

अत: यदि कोई भी कलाकार, सर्जक या कला समीक्षक, पुरातन के प्रति मोह व नूतन के प्रति आनास्था रखने वालों के वर्ग में आ गया तो वह न तो स्वतत्र सृजन कर सकता है और न ही स्वतंत्र एवं निष्पक्ष समीक्षा प्रस्तुत कर सकेगा। इस सन्दर्भ में औचित्य के अनदेखा होने से यह सम्भव है कि वह या तो गुप्तकालीन कला का प्रबल पक्षधर होगा या विरोधी अथवा आधुनिक काल के जामिनी राय या गगनेन्द्र सरीखे कलाकारों के प्रति सम्मोहन या उपेक्षा का रूख रखेगा। लेकिन साहित्य, कला या संस्कृति के किसी पक्ष को समझने के लिए इस प्रकार के ऊहापोह से ऊबर कर तथा धैर्यपूर्वक समझकर ही यह किनारे तक आ सकता है। अतएव बुद्धिमत्ता इसमें है कि अतीत के गुणों को लेकर नवीन उत्साह से वर्तमान जीवन का निर्माण भविष्य के विकास हेतु किया जावे। इस प्रकार संस्कृति और जीवन का समन्वित तथा सम्पन्न रूप प्राप्त किया जा सकता है।[2]

---

1 मालविकाग्निमित्रम् कालिदास, 1-2

2 कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन, पृष्ट स०- 02

उपर्युक्त शब्दों को जीने एवं सार्थक करने की जरुरत भारतीय आधुनिक चित्रकारो ने समझी और उसके अनुरूप कर्म किया। कवि एवं चित्रकार डा० जगदीश गुप्त ऐसे चित्रकारो के सशक्त हस्ताक्षर है। श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार के शिष्य डा० गुप्त चित्रकार होने के साथ-साथ कवि एवं साहित्यकार भी है।

डा० गुप्त का जन्म वर्ष 1926, शाहाबाद, हरदोई, उत्तर प्रदेश में हुआ था। चित्रकारी की ओर इनका रूझान जन्मजात था, अपने अध्ययन काल में ये चित्रकला मे अतिरिक्त सक्रिय रहे।

चित्रकला एवं कविता ललित कला की इन दो धाराओं को समान रूप से जीने वाले डा० गुप्त कहते हैं:'' कला मेरे लिए बहुलोचना नदी है। और कविता अभिव्यक्ति की चुनौती, कवि वही जो अकथनीय कहे'',

चित्रकला और कविता का साहचर्य मेरे जीवन और रचना-कर्म में निरंतर अन्तर्व्याप्त रहा है।

कला और कविता के संस्कार मुझे जन्मजात रूप से मिले। ''भृगु-वाणी'' ने उसे कालातीत आयाम दे दिया।

कला पहले व्यक्ति से व्यक्ति को जोड़ती है फिर व्यक्ति से समाज को। व्यक्ति और समाज, शब्द और अर्थ, मेरी दृष्टि में अर्ध-नारीश्वर की तरह अन्योन्याश्रित है।

यथा — व्यक्ति के लिए
व्यक्ति की चाह
एक सुगन्धित राह । (चित्रान्वित काव्य 'युग्म' से)

अपने परिवेश की
परिज्ञा से वंचित को,
छलती है ज्योति भी ।— (निजी अनुभव एक कविता में व्यक्त)[1]

---

1 वर्ष 1994 मे इलाहाबाद सग्रहालय द्वारा आयोजित प्रदर्शनी के कैटेलाग से

इलाहाबाद में नागवासुकि एवं संगम के समीप स्थित निवास में रहते हुए डा० गुप्त हर नवागन्तुक रचनाकार का स्वागत जिस उत्साह से करते हैं वह उनके उम्र के आठवे दशक में एक अचंभा ही है। प्राचीन मान्यताओं से गहरे तक जुड़ाव रखने वाले डा० गुप्त ने प्रागैतिहासिक चित्रकला के स्वतः प्रेरित विशिष्ट अनुशीलन-क्रम में भारत के विभिन्न भागों मे स्थित बहुसंख्यक अज्ञात शिलाश्रयों एवं गुफाओं की प्राथमिक खोज शिला चित्रो की अनुकृतियों का अंकन और प्रकाशन तथा पुरातत्व एवं कला सम्बन्धी अन्य विषयों पर भी लेखन किया है जिसमें नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली द्वारा प्रकाशित दो कला-ग्रन्थ कला जगत के लिए वरदान स्वरूप है— जो क्रमशः 'प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला' (1967) एव 'भारतीय कला के पदचिन्ह' (1961) है। अब तो इन ग्रन्थो का अग्रेजी अनुवाद भी होकर देश विदेश में पढ़ा जा रहा है।[1]

डा० गुप्त ने अपने निवास पर ही एक 'अन्डर ग्राउन्ड' कला दीर्घा का निर्माण करा रखा है जहॉ मृणमूर्तियों तथा अन्य पुरातन वस्तुओं, सिक्कों आदि का संचय एव सग्रह है।

भारतीय कला में कलाकार को कवि एवं दार्शनिक का स्थान दिया गया है। वह पहले दार्शनिक है फिर कलाकार। यही कारण है कि यहाँ की कला में जो आत्मिकता एवं कल्पना सौन्दर्य विद्यमान है, वह विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर हों जगदीश स्वामीनाथन हों, शमशेर बहादुर हों या फिर श्री जगदीश गुप्त, ये ऐसे नाम हैं जो कवि भी हैं और चित्रकार भी। दोनों ही क्षेत्र उनकी चर्चा के बगैर रिक्त से प्रतीत होते हैं। इन कलाकारों ने अपने अद्‌भुत रचनात्मक कौशल से भारतीय आधुनिक कला को समृद्ध ही नहीं किया बल्कि नवीनतम् प्रयोगों द्वारा कला में चली आ रही पुरातन मान्यताओं को भी बदला, जिससे भावनोद्वेग की उमड़ घुमड़ को आकार प्रदान करने वाली असुन्दर (मानी जाने वाली) कलाकृतिया भी उतने ही सम्मान के साथ सराही जाने लगी जैसे अन्य कोई भी परम्परागत चित्रकृतियाँ।

---

1 वही

उम्र के सत्तर पड़ाव पार कर चुके डा० गुप्त को शारीरिक अक्षमताओं ने भले ही रचना कर्म से कुछ समय के लिए विलग किया हो किन्तु मन से वे पूरी तरह कला एवं साहित्य को समर्पित रहे हैं और आज भी किसी नवोदित रचनाकार से कहीं अधिक परिश्रम लगन एवं उत्साह से अपने क्रिया कलापों में मग्न है[1]

डा० गुप्त के विधा मे निर्मित चित्रों में दीप श्रृखला के चित्र हैं। इन चित्रों के विषय में डा० गुप्त कहते हैं- दीप-श्रृंखला में मैने महादेवी जी की 'दीपशिखा' से भिन्न मार्ग अपनाया है। दीप मेरे लिए स्नेहमय आत्माभिव्यक्ति का प्रतीक बन गया है।

डा० गुप्त ने वाश वाश के अतिरिक्त तैल माध्यम में दृश्य चित्र एवं व्यक्ति चित्र भी बनाये हैं, जिनमें निराला' का व्यक्तिचित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। डा० गुप्त ने 'निराला जी की यात्रा को बहुत निकट से देखा है, उनकी विक्षिप्ततावस्था की पीड़ा को महसूस किया है और ये समस्त बातें निराला के शबीह में आसानी से खोजी जा सकतीं है।

डा० गुप्त ने कपड़े को मोड़कर कोलाज कृतियों का भी निर्माण किया है, जो संश्लेषणात्मक घनवाद के काफी निकट हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चित्रण की प्रेरणा इनके भीतर निरंतर सीमाएँ तोड़ती रही हैं। माध्यम, रूप विन्यास, शैली किसी ने भी इन्हें परिसीमित नहीं किया। गुप्त जी के अनुसार : मेरा रचना-क्रम उत्तरोत्तर रेखा- प्रधान होता गया। मेरे मन में भारतीय कला का यह सूत्र वाक्य निरंतर प्रेरणा देता रहा है—

''रेखां प्रशसन्त्याचार्याः वर्तनाञ्च विचक्षणाः।

स्त्रियो भूषणमिच्छन्ति वर्णाढ्यमितरे जनाः।''[2]

(विष्णु धर्मोत्तर पुराणे- 3-41-11)

---

1 प्रयागराज टाइम्स, सोमवार, 15 अगस्त 1994, पृष्ठ - 7

2 भारतीय सौन्दर्य शास्त्रावतार , डा० नगेन्द्र, पृष्ठ स० 143

वास्तव में गुप्त जी की मौलिकता का सच्चा दिग्दर्शन इनके रेखाकनों में ही होता है। चाहे वे रेखाकन किसी साधारण कागज पर हों या कैनवस पर, काली इंक पेन से खीचे गये हों या ब्रश के चौड़े-पतले आधातों द्वारा।

स्त्री के बाह्य रुपाकारों के माध्यम से उसके आन्तरिक सौन्दर्य को कोमल लयपूर्ण रेखाकनो में बडी सशक्तता से चित्रित किया है। गुप्त जी के चित्रों में जो विशेष बात दिखती है, वह है 'सहजता' ये सहजता कहॉ से आयी, कैसे आयी, तो इसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी स्वयं भी बड़े सरल एवं मृदुभाषी रहे है, या फिर उन्हीं की यह उक्ति कि ''अपूर्व निर्धारित रचना-क्रम मुझे पूर्व निर्धारित रचना-क्रम से अधिक प्रेरक लगता है। रचना-कर्म में स्वतत्रता अनिवार्य है। '' डा० गुप्त श्रम को महत्व देते हैं फिर भी उनके अनुसार 'श्रम नहीं रचना प्रमुख है। नवीनता का सन्दर्भ आते ही वह कहते हैं-'' असतोष से उपजती है नवीनता। नवीनता ही परम्परा को शक्ति देती है। मूल्यबोध में स्वानुभव सर्वोपरि है समाहित अन्त:करण ''स्व'' और ''पर'' का भेद मिटा देता है।

लय के सन्दर्भ में उनका कहना है, ''मानसिक संगति से उत्पन्न लय-बोध ही सौन्दर्य बोध बन जाता है। सामजस्य की प्रतीति ही सौन्दर्य है जो अन्तर्बाह्य को एकात्म कर देती है। समन्वय और सामंजस्य समानार्थी हो जाते हैं।''

चित्रकला पर उनकी अपनी मान्यतायें कुछ इस प्रकार हैं— ''चित्रकला सब कलाओं की आँख हैं'' — उसका अस्तित्व अन्य सभी कलाओं तथा काव्य रूपों मे अन्तर्व्याप्त है। साहित्य में प्रयुक्त 'लेखन', 'वर्णन', 'चित्रण', निरूपण, 'अंकन', 'प्रदर्शन', 'निदर्शन', तथा 'रंजन' आदि शब्द इसी सत्य के प्रमाण हैं।''

अतीत में फैली हुई जड़ों तक पहुँचकर उसके निजी रूप को पहचानना तथा उसे नयी चेतना प्रदान करना आवश्यक है, जिससे उसका अस्तित्व बना रहे। इसके लिए शिलाचित्रो, भित्तिचित्रों, लोककला, बालकला, तथा मृण्मूर्तियों एवं विभिन्न शिल्पों से प्रेरणा ग्रहण करना विदेशी वादों के अनुकरण से कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

कला मूलतः सार्वभौमिक आयाम रखती है तथापि पौर्वात्य संस्कार भारतीयता को समझने मे अधिक उपयोगी एवं हितकर सिद्ध होते हैं और कला का अनुवाद भी नहीं होता।''

''मानव विकास मे निजी अनुभव निजी विवेक तथा निजी प्रतिभा सबसे अधिक सहायक होते हैं। वैज्ञानिकता सत्य की उपलब्धि में बाधक नहीं पर मूलतः जीवन सत्य कलाधर्मी है। यह तत्व दृष्टि मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर से मिली।''

''कविता और कला दोनों में 'भाव' और 'लय' आधारभूत तत्व हैं, जो आज भी प्रधान प्रेरक सिद्ध होते हैं।''[1]

गुप्त जी के रेखांकन का अलग तरीका जिसमें ज्यामितीयता होने पर भी रेखायें कठोर नहीं होतीं बल्कि उनमें भी एक लय होती है जिसने गुप्त जी को अनायास ही बाँध लिया है। यही रेखायें उनके चित्रकार व्यक्तित्व की पहचान भी बनी और स्वंय डा० गुप्त के लिए अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी।

अपने रेखांकनों में डा० गुप्त ने नवीन रूपो का भी सृजन किया है जैसे दो नाक, दो मुंह एक ही चित्र में बनाकर सिर्फ एक ऑख के जरिए दो मुखाकृतियों का आभास कराया है। इस तरह का कार्य तो 'पिकासो' ने भी अपने चित्रों में किया था। किन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर यह है कि पिकासो के चेहरे यदि कठोरता लिए हुए और नीग्रो स्कल्पचर के निकट हैं तो गुप्त जी के रेखांकित चेहरे विशुद्ध भारतीय शास्त्रीय कला से साम्य रखते हैं।

रेखाचित्र बनाने की उत्कंठा में गुप्त जी के लिए स्थान या चित्र सतह महत्वपूर्ण नही होते बल्कि बरबस आकर्षित कर लेने वाले आम आदमी के चेहरे महत्व रखते है जिनमें कोई उनका सहयात्री होता है, तो कोई धूप सेंकता उकड़ू महाशय या फिर 'नेत्रसुख' देती कोई महिला।[2]

---

1 डा० गुप्त की प्रदर्शनी के ब्रोशर मे उल्लिखित – वर्ष 1994

2 प्रयाग राज टाइम्स, इलाहाबाद, 15 अगस्त, 1994 पृष्ठ 7

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० गुप्त में रेखांकन के प्रति जो आवेग उमड़ता रहा है उस भावना का उन्होंने पूरा आनन्द उठाया है। '**वह आवेग जो कला प्रेमियों को ग्रस लेता है, सच्चे कलाकार की सेवा करता है, कलाकार उस आवेग रूपी वन्य पशु के हाथों क्षत विक्षत नहीं होता, बल्कि उसे वश में करके पालतू बनाता है।**[1]

श्री **अंर्स्ट फिशर** की उपर्युक्त बात को डा० गुप्त के रेखाकनो मे साकार होते आसानी से देखा जा सकता है।

श्री सुधीर रंजन ख़ास्तगीर ने इनके विषय मे कहा है कि "डा गुप्त अपने कार्यो की समीक्षा करने मे पर्याप्त सक्षम है।"

श्री राम स्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार — चित्रकार के वे भाव जो उसकी कविताओ में एवं साहित्य की अन्य दिशाओ में अभिव्यक्ति नहीं पा सके, वे ही बरबस उनके चित्रो में प्रकट हुए हैं। चन्द्रकिरण सौनरिक्सा के अनुसार — छंदोबद्ध कविता सी लयात्मकता और आकारगत समग्रता उनके चित्रों का प्रधान गुण है।[2]

प्रो० रणवीर सिंह बिष्ट

जन्म	:	4 अक्टूबर 1928 लैंसडाउन, गढ़वाल
शिक्षा	:	1948 से 1954 तक राजकीय कला एवं शिल्प विद्यालय लखनऊ
कला गुरू	:	ललित मोहन सेन
प्रयोगवादी दौर	:	1955 से
शिक्षण	:	1956 से कला अध्यापक प्रशिक्षण विभाग लखनऊ
सम्मानित पद	:	1968 से 1989 तक प्रधानाचार्य एवं डीन राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ
विदेश गमन	:	1967–1968 अमेरिका एवं फ्रांस की यात्रा

---

1 कला की जरूरत, ले०- अर्स्ट फिशर, अनु०- रमेश उपाध्याय पृष्ठ स० 12

2 डा० गुप्त की प्रदर्शनी के ब्रोशर से — 1994

एकल प्रदर्शनी	:	लखनऊ, नई दिल्ली, बम्बई आदि नगरों मे 28 से अधिक, न्यूयार्क में एक
सामूहिक प्रदर्शनी	:	ग्यारह फ्रैंकफुर्त, पश्चिमी जर्मनी, टोकियो भारत में प्रमुख केन्द्रों पर, चतुर्थ त्रिनाले भारत
पुरस्कार तथा सम्मान	:	1965 ललित कला अकादमी, नई दिल्ली 1966 उत्कृष्ट जलरंग चित्र पर 1984, राज्य ललित कला अकादमी उ० प्र० की अधिसदस्यता। 1987, ललित कला अकादमी दिल्ली की अधिसदस्यता।
संग्रह	:	भारत की राष्ट्रीय अकादमियों एवं देश विदेश में।
देहावसान	:	25 सितम्बर, 1998 लखनऊ

रणवीर सिंह बिष्ट

देश के समकालीन चित्रकारों में अपनी शख्सियत का गहराई से अहसास कराने वाले श्री रणवीर सिंह बिष्ट ने एक सैरा चित्रकार के रूप मे अपना कला जीवन प्रारम्भ किया था। यूँ तो उनके कला जीवन में विभिन्न पड़ाव आये और इस प्रकार उन्होंने अन्य विषयों पर भी चित्र रचना की किन्तु सबसे ज्यादा उन्हें प्रभावित किया है प्रकृति ने' खास कर पहाड़ी अंचलों ने।

श्री विष्ट की कला-यात्रा लैंस डाउन (गढ़वाल) से ही प्रारम्भ होती है, जहाँ उन्होंने 4 अक्टूबर 1928 को जन्म लिया। हिमालय की वादियाँ, बर्फीली चोटियॉ टुकड़े-टुकड़े उडते बादल, झर-झर झरते झरने, अनोखी सुबहें और शामें, बुरांस के फूलों के साथ हर ऋतु के अपने रंग इत्यादि वावातरण ने उनके बालमन में भीतर तक जड़े जमा ली थीं। यही कुछ आंग्ल परिवारों ने, जो स्थल-विशेष पर बैठ कर चित्रांकन किया करते थे, श्री विष्ट को बहुत प्रभावित किया। श्री बिष्ट उन परिवारों को चित्रण करते हुए बड़ी उत्सुकता से देखा

करते थे और धीरे- धीरे उनके मन मे भी चित्रांकन करने की इच्छा बलवती होती गई। बालक बिष्ट स्कूल आते-जाते पहाड़ों की चट्टानों को ही फलक के रूप मे इस्तेमाल करने लगे। लैस, डाउन से जेहरीखाल, जहाँ, इनका स्कूल था, का लगभग तीन किलोमीटर लंबा रास्ता, कब कट जाता उन्हें पता ही नहीं चलता था। धीरे-धीरे इस बालक को काफी लोग जानने लगे। अब चित्र रचना में इनका समय जयादा बीतता था और पढ़ाई मे कम। स्कूल के कला अध्यापक और दूसरे अध्यापकों से भी प्रेरणा मिलती, पर वही दूसरी तरफ घर वाले कहते कि यह कुछ नही बन सकता। परिवार में जमीदारी संभालने या फिर सेना मे भरती होने की परम्परा रही थी। इनके पिता कल्याण सिंह बिष्ट भी इनसे ऐसी ही अपेक्षा रखते थे। पर बालक रणवीर ने मन ही मन कलाकार बनने की ठान ली थी। बिष्ट का यही चरित्र उन्हे उनके जीवन की शक्ति बन कर बहुत आगे ले गया।

सन 1948 में हाईस्कूल करने के बाद वे लखनऊ आ गये। लखनऊ कला महाविद्यालय में व्यवसायिक कला विभाग में प्रवेश लिया किन्तु यहाँ उनका मन नही रमा और वे कला अध्यापक प्रशिक्षण कक्षाओं में चले आये। इसे पूरा करने के बाद ललित कला की कक्षाओं में प्रवेश लिया, जिसे 1954 में उन्होंने पूरा किया।[1]

यह वह समय था जब लखनऊ कला महाविद्यालय में **बंगाल स्कूल** का प्रभाव ज़्यादा था। रेखाओं पर अधिक बल दिया जाता था और 'वाश' पद्धति में चित्र-रचना का प्रचलन था। इस वक़्त विद्यालय के प्राचार्य श्री एल एम. सेन थे और इन्होंने वाश पद्धति में बदलाव किया। जिसका असर बिष्ट सहित अन्य छात्रों पर भी पड़ा। श्री बिष्ट पर तत्कालीन वरिष्ठ छात्र फ्रैंक वैसली का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वैसली एक सशक्त सैरा चित्रकार रहे है। अब तक अपने जल रंगीय सैरों से युवा बिष्ट की काफी प्रशंसा होने लगी थी। इनके भूखण्ड चित्रों में रंगों की पारदर्शिता, स्वछन्द तूलिका घात और स्थल विशेष का चित्रण होता। 1954 में केन्द्रीय ललित कला अकादमी दिल्ली में आयोजित पहली राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी मे बिष्ट के

---

1 समकालीन कला नवबर 84-मई 84, अक सख्या 3-4-पृष्ठ 30

ऐसे ही तीन चित्रो को शामिल किया गया था। किन्तु 'स्टेट्समेन' में प्रसिद्ध कला समीक्षक चार्ल्स फाबरी ने श्री बिष्ट के चित्रों की आलोचना की जिसे उन्होंने एक चुनौती के रूप में स्वीकारा। अब बिष्ट जी ने देश में प्रचलित विभिन्न कला धाराओं पर नजर डालना शुरू किया। 1955 से इनका प्रयोगवादी दृष्टिकोण शुरू होता है।

8 वर्षो तक संयम पूर्वक कला शिक्षा पूर्ण कर चुकने के बाद अब इनके समक्ष जीविकोपार्जन का प्रश्न था। अजमेर एवं लखनऊ दोनो स्थानो पर नौकरी के अवसर मिले किन्तु इनका रागात्मक सम्बन्ध लैंसडाउन के बाद लखनऊ से ही बना अतः इन्होंने लघनऊ मे ही रहना श्रेयस्कर समझा और सूचना विभाग में कलाकार के पद पर कार्य प्रारम्भ किया। इसी समय श्री सुधीर खास्तगीर लखनऊ कला महाविद्यालय के प्राचार्य नियुक्त हुए और नये सिरे से विद्यालय का गठन प्रारम्भ हुआ। 1956 में श्री बिष्ट की नियुक्ति विद्यालय के कला अध्यापक प्रशिक्षण विभाग में हो गई। श्री विष्ट गढ़वाल के साधारण परिवार से हैं और इन्हे जीवन की सहजता, कर्मठता ओर सरलता से प्रेम है वे ऐसे स्थानों का भ्रमण करने मे रुचि रखते थे जिनका स्वाभाविक सौन्दर्य हमेशा बरकरार रहता है।

इनकी कला अभिव्यक्ति सदा नया रूप लेती गई है एवं इसमे सृजनात्मकता का विस्तार निरंतर होता गया है।

कई रूढ़िवादी आलोचकों ने अत्याधुनिकता का आरोप उन पर लगाया था। फिर भी श्री बिष्ट एक सच्चे आधुनिक कलाकार की भाँति अपना कार्य करते रहे। वे इस अर्थ में तो आधुनिक कलाकार नहीं हैं जो परम्परागत या यथार्थवादी शैलियों के कला सयम के अर्जन पर महत्व नही देते। वे तो मूलतः अपने विषय को अधिक प्रखर तथा प्रगाढ़ अभिव्यक्ति देने के प्रयास में व्यग्र रहा करते थे। आज के कलाकार के लिए यही प्रयोजन है कि वह सभी परम्पराओं से, नयी या पुरानी, लाभ उठाएँ केवल अनुकरण के लिए नही बल्कि अपनी इच्छा अभिरूचि तथा विषय विशेष के आदेशों के अनुकूल प्रयोग करने के लिए। ऐसी जागरूकता का अभाव किसी भी चित्रकार को 'परम्परागत' या प्रचलित आधुनिक सीमाओं मे संकीर्ण कर सकता है।

श्री बिष्ट के अनेकों चित्रों पर दृष्टि डालने पर एक तथ्य तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उनमे शैलीगत या विषयगत विविधता है और साथ ही कलाकार की अपनी छाप है। श्री बिष्ट के लिए प्रत्येक विषय एक ऐसी समस्या है जिसका अपना एक पृथक समाधान है।[1] लेकिन यह तथ्य जिसने बिष्ट की रचनात्मकता को काफी हद तक गठित किया है, वह है लखनऊ कला महाविद्यालय में उनका प्रशिक्षण। इस महाविद्यालय की एक परम्परा और इतिहास रहा है। बंगाल स्कूल के वाश चित्रो ने यहाँ के चित्रकारों को प्रभावित किया। यद्यपि बिष्ट मोटे तौर पर वाश के प्रभावों से हटते गये है और यथार्थ के रूप में उन्होने उसी सीमा तक कला-कौशल को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है जिसके लिए उनके अध्यापक श्री ललित मोहन सेन व्यापक रूप से जाने जाते हैं— लेकिन रगो का स्फरण या उनकी चमक और उनके पारलौकिक प्रभाव उन्होंने इसी महाविद्यालय से ग्रहण किया, उन्होने स्वयं वाश शैली मे प्रारम्भ मे काम किया, जो कही न कही उनकी मानसिक बनावट का हिस्सा बन गया।[2] उनके द्वारा निर्मित वाश चित्रों मे **'यौवन'** नामक चित्र विशेष उल्लेखनीय है। इस चित्र में एक स्त्री का बहुत ही भाव पूर्ण चित्रण है बंगाल शैली की महीन गत्यात्मक एवं लयात्मक रेखाओं से श्री बिष्ट ने पूर्णतया तादाम्य बैठाकर कार्य किया है।

यह शैलीगत स्तर पर एक विचित्र प्रकार की टकराहट थी कि एक करफ तो उनका प्रारम्भिक जीवन पहाड़ों पर बीता था और दूसरी तरफ नागरिक जीवन से, उसकी जटिलताओं से उनका साक्षात्कार- इन दोनों सच्चाइयों ने इनके व्यक्तित्व को एक विचारशील व्यक्ति और एक कलाकार का रूप प्रदान किया। जलरंगीय चित्रण में मौलिक रंगों का प्रभाव अधिक है। बिष्ट ने कई मैदानी तथा पहाड़ी दृश्यों के चित्र बनाये हैं। उन्होंने पुष्पित होने वाले पेड़ों के चित्र बनाये बड़े-बड़े फलक पर रात्रि दृश्यों को बनाया जिनमें रंगों के चौड़े आकार हैं, जिनमें से कुछ स्पष्ट मकानों के दबे हुए दृश्य हैं या रात के वे फ़लक जो काले लाल तथा पीले रंगों में बनाये गये हैं सब सम्मिलित हैं। इसके पश्चात् 1964 में वे आन्तरिक

---

1 हिन्दुस्तान साप्ताहिक, 22 जनवरी 1961

2 स्टेट्समैन, 25 सितम्बर 1977

चित्रों की ओर आये और बाद में अमूर्त चित्रो की ओर उनका ध्यान गया, लेकिन इस सारी प्रक्रियाओं में वे मूलतः भूखण्ड चित्रकार ही रहे।

इन्होंने 1962 में शीश रहित मनुष्यों के चित्रों की एक श्रृंखला बनायी जिसमें बोलती हुई ऑखें और निषेधात्मक दिमाग है इसके बाद उन्होंने कुछ आकृति मूलक चित्र बनाये जो विषयगत थे और जिसे उन्होंने विद्रोह की श्रृंखला से नामांकित किया। 1972 में उनके रंगों ने काफी जोर पकड़ा और रंगों को बिखेरने के माध्यम से उन्होंने आकार उभारने का प्रयत्न किया। इसके बाद उन्होंने रेखाचित्र आकारों का प्रयोग किया इसमें रंगों का कम प्रयोग है। वर्ष 1976 के करीब उन्होंने **प्रलोभन** श्रृंखला आरंभ की, जिसमे रंग चटख हैं और एक स्त्री एवं एक श्वान के आकार समानान्तर रखे गये हैं। इसमे निर्वसना नारी एवं श्वान (कुत्ता) के माध्यम से उन्होंने समाज की कुंठाग्रस्त वासनाओ को अभिव्यक्ति दी है, और अधिक गहराई से देखे तो इस चित्र मे आध्यात्म का भाव भी है।

वर्ष 1960 आते आते बिष्ट ने 'नाइट' श्रंखला प्रारम्भ की और तैल रंगों का ज्यादा प्रयोग किया। इस समय के उनके चित्र प्रभाववादी चित्रकार देगा से मेल खाने लगे। जिस प्रकार देगा– 1873 के करीब चित्र बनाने से पहले उसकी ड्राइंग किया करते थे नृत्य शालाओं एवं नाट्यशालाओं में उनकी रिहर्सल के दौरान जाकर और फिर उन ड्राइंग के सहारे अपने स्टूडियो में बैठकर चित्रो को अंतिम रूप देते थे।[1] उसी प्रकार श्री बिष्ट ने भी पचास के दशक में जो आकृतिमूलक चित्र बनाये हैं उनमें यही प्रवृत्ति दिखती है। वर्ष 1956 का उनका चित्र **'मन्दिर के सामने'** जिसमें एक महिला प्रसाद बाँट रही है और उसके सामने भिखारियो की भीड़ प्रसाद की लालसा लिए इकट्ठा है। इस चित्र को बनाने से पूर्व श्री बिष्ट ने अपनी स्केच बुक में भिखारियों के असंख्य अभ्यास चित्र बनाये थे। इसी प्रकार उन्होंने कई शबीहे भी बनाई है।

---

1 ग्रेट पेन्टर्स एण्ड ग्रेट पेन्टिंग्स, पृष्ठ स० 149

1955 के बाद उन्होंने स्थल विशेष पर जाकर चित्रांकन करने के बजाय अपने स्टूडियो मे ही चित्रण करना बेहतर माना। तैल रंगों के चित्रण में उन्होने देगा की भाँति तारपीन के तेल का ज्यादा मात्रा में प्रयोग करके अपने चित्रो को पारदर्शिता प्रदान की। इस प्रकार की विशिष्टता उनके 'सिटीस्केप' चित्रों की श्रखला मे दिखती है जो उन्होंने 1963 - 64 के दौरान बनाई थी।

इसके बाद बिष्ट ने रंगों को बहाकर, चाकू से या ट्यूब से सीधे रग लगाकर **'नगर दृश्य'** श्रृंखला को आगे बढाया और वर्ष 1965 में इन्हें इसी श्रृंखला के एक चित्र पर राष्ट्रीय पुरस्कार मिला। वर्ष 1967-68 के दौरान इसी श्रंखला को बनाते समय ही इन्हें अमरीका एवं फ्रांस देशों की यात्रा पर जाने का अवसर मिला। विदेश से लौटकर भी इन्होंने 'नगर दृश्य' श्रखला पर कार्य जारी रखा अन्तर सिर्फ इतना रहा कि अब वे कैनवस पर रंगो की क्षैतिजाकार पट्टियाँ बनाने लगे। इस प्रकार का कार्य सर्वप्रथम यूरोपीय उत्तर प्रभाववादी चित्रकार पाल सेजाने ने अपने दृश्य चित्रो में किया है। अतः बिष्ट के इन चित्रो को हम भारतीय सन्दर्भ में शुद्ध रूप से आधुनिक नही कह सकते। बल्कि सत्तर और अस्सी के दशक में उन्होंने जो **'ब्लू श्रंखला'** के चित्र बनाये उसमें जो आवेग तूलिका संघातों के परिलक्षित है वह चित्रों को मोनोटोनस होने से बचाता है और हम कह सकते हैं कि नीले रंग ने कलाकार के भीतर और बाहर दोनों को विस्तार दिया है। यह नीला रंग आगे चलकर बिष्ट के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया। इस श्रृंखला में हिमालय की वादियाँ है परत दर परत खुलते पहाड़ एक शान्त और प्रिय वातावरण की रचना आप से आप करते मालूम होते हैं।

कई बार सिर्फ पहाडी दृश्यो के मनन चिन्तन के लिए उन्होंने हवाई यात्राए की। वे कहते है कि "मेरे अवचेतन मस्तिष्क में दृश्यों के रूप धुँधले हो गये थे। ये यात्रायें उन्हीं बिबों को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से मैंने की थी।[1]

श्री बिष्ट ने अपनी खोज एवं प्रयोगधर्मिता से उत्तर प्रदेश को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण देश के आधुनिक चित्रकला जगत को शक्ति प्रदान की है।

---

1 समकालीन कला, 3-4, पृष्ठ स०- 34

वर्ष 1957 से बिष्ट जी की एकल प्रदर्शनियों का सिलसिला शुरू हुआ तो फिर रुका नही। और वे एक के बाद एक श्रृखला चित्रों का निर्माण करते रहे। उत्तर प्रदेश के अत्यन्त सक्रिय कलाकारों मे से एक श्री बिष्ट के 'नगर चित्रों' पर श्री अखिलेश निगम ने कहा है— "इन चित्रों में रचना प्रक्रिया की जो विविधता देखने को मिलती है, वह कलाकार की जागरूकता और संवेदनशीलता को भी प्रतिबिम्बित करती है।[1]

श्री रनवीर सिंह बिष्ट लखनऊ के उन प्रमुख चित्रकारों मे से हैं जिनकी कृतियों का विश्लेषण भारतीय सन्दर्भ में करना आवश्यक है। और इसकी वजह उनकी अखण्डित प्रगति तथा नये माध्यमों को खोजने का अनवरत प्रयास है, जिसने न केवल उनकी कला को समृद्ध किया है वरन उनको अनेक रूपता प्रदान की है। श्री बिष्ट के कला प्रयास प्रारम्भ से ही मुक्त रहे हैं, उसमें किसी भी प्रकार का निषेध नहीं है। इसीलिए हम इनके चित्रों में वे पूर्व निश्चित तत्व नहीं पाते, जो कलाकार को एक सीमित व्यक्तित्व प्रदान कर देते हैं।

श्री बिष्ट खान-पान एवं स्वास्थ के मामलों में अत्यन्त संयमी रहे हैं और अपनी कला साधना के सम्बन्ध में आत्म केन्द्रित। बातचीत में वे इस बात की चिन्ता नहीं करते थे कि वे संयत है अथवा नहीं- साधारणतः चुप, पर जिन वस्तुओं या प्रश्नों से उनका अनुराग होता उसमें वे उग्र भी हो जाते थे। वे कला व्याकरण के उन समस्त रास्तों से गुजरे हैं जो किसी सम्पन्न कलाकार के लिए आवश्यक हैं।

प्रयोग की दृष्टि से सबसे पहला मुख्य चरण श्री बिष्ट का वह है जब उन्होंने जलचित्र के माध्यम को स्वीकार करते हुए केवल यथार्थ का सहारा नहीं लिया है और चित्रों की प्रभावोत्पादकता पर महत्व देते हुए रात्रि तथा बरसात के चित्र बनाये हैं। इनमें तेजी से चलाये गये ब्रशों के कुछ स्ट्रोक्स के द्वारा अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करना है। इसके बाद उनके चित्रों मे जो नया मोड़ आता है उससे लगता है कि वे अपना विषय बदल रहे हैं। और मानव आकृतियों पर महत्व दे रहे हैं। उस समय उन्होंने बहुत से ऐसे चित्र बनाये जिनमें आकृतियों के सिर गायब हैं। सम्भवतः उसके पीछे उनका यह विश्वास था कि आज की

---

1 आधुनिक कला कोश, ले० विनोद भारद्वाज, पृष्ठ स०- 538-539

मानसिक जटिलताओं ने जीवन को दु:खमय बना दिया है और यदि उस प्रागैतिहासिक मनुष्य पर वापस आ जायें जिसके मस्तिष्क में जटिलताएँ नहीं आयीं थी तो सम्भव है कि आज का विषाद कम हो सके और यही कारण है कि उस समय के चित्रों में हम उसी प्रकार की मुखाकृतियॉ पाते हैं जैसी कि उपलब्ध आदिम मानव की। सम्भवत: यह श्री बिष्ट की उलझन तथा मानसिक संघर्ष का समय था।

1960 में लखनऊ शहर में आयी बाढ की विभीषिका को श्री बिष्ट ने बहुत करीब से महसूस किया था और असंख्य रेखाचित्र बनाये। इस दुर्घटना ने उनके मानसिक आयाम पर अपनी छाप छोड़ी जिसकी परतें बाद में उनके चित्रों में भी दृष्टिगत हैं।[1]

श्री बिष्ट के विचार से — ''जिस चीज को हम यथार्थ कहने के आदी हो गये है उसके अतिरिक्त जीवन मे और विशेष रूप से प्रकृति में ऐसे रूपों, रंगों और आकारो के बिम्ब हमें मिलते है जिनकी मन पर अनायास छाया पड़ती रहती है, साथ ही जिन्हें हम अमूर्त कला कहते हैं वह वास्तव में उतनी अमूर्त या अस्पष्ट नही है यदि हम अधिक प्रखरता के साथ सारे विस्तृत जीवन और उसकी अपार विभिन्नताओ को समझने की कोशिश करें।''

श्री बिष्ट का उपरोक्त कथन उन्हें आधुनिक चित्रकार बनाता है। इनके चित्रों का विभिन्न मोड़ इन्हें बार-बार नयी आँखों और नयी गहराई से चीजों को देखने के लिए प्रेरित करता रहा है।[2]

नित्यानन्द महापात्र

जन्म : 19 अगस्त 1931, जगन्नाथ पुरी, उडीसा

शिक्षण : कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ 1958-1992

---

1 दिनमान - 06-12-76

2 धर्मयुग (साप्ताहिक पत्रिका) 3 नवम्बर 1963

गुरूओं का सानिध्य	:	ललित मोहन सेन, वीरेश्वर सेन, एम0डी0टाली, श्रीधर महापात्र
विशेषज्ञता	:	छवि चित्रण
सम्मान	:	आइफेक्स एवं उडीसा सरकार द्वारा "धर्म पद सम्मान" - 1997
	:	राज्य ललित कला अकादमी की अधिसदस्यता 28 मार्च 1996
संग्रह	:	राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

नित्यानन्द महापात्र :-

परम्परागत 'वाश' में शिव श्रृंखला, टेम्परा में कृष्ण लीला, यीशु, गणेश आदि चित्रो के साथ ललित मोहन सेन एवं वीरेश्वर सेन की भाँति श्री नित्यानन्द महापात्र ने जल रगों में अनेकों यथार्थ वादी सैरा चित्र भी बनाये है। वर्ष 1958 से 1992 तक लगातार चौतीस वर्षो तक कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ में प्रवक्ता पद पर कार्य किया एवं अनेको शिष्यों को आगे बढ़ाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

इन्हें छवि चित्रण में तो सिद्धहस्तता प्राप्त है ही अतिरिक्त इसके इन्होंने पशु पक्षियों के रेखांकन मुख्यत: बनाये। इनकी उमर खैय्याम श्रृंखला अतुलनीय है, तैल माध्यम में इन्होने "सागर श्रृंखला " के चित्र बनाये । पेस्टल माध्यम में दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्रो का निर्माण किया। "इनके सर्वाधिक चर्चित चित्रों में कौल आफ यूनिटी[1] है जिसे इन्होंने 1956 में बनाया था"।

हालाँकि बंगाल शैली से हटकर महापात्र जी ने भू दृश्य चित्रकारी की उस शैली को अग्रसर किया था जिसे ललित मोहन सेन एवं वीरेश्वर सेन ने प्रारम्भ और पोषित किया था

1 कला त्रैमासिक, अप्रैल-जून 2000, पृ0 स0 49

फिर भी इनके सैरा चित्रो में उड़ीसा एवं बगाल के ही कतिपय चित्रकारो का प्रभाव अधिक दिखता है। लखनऊ के सैरा चित्रकारों की भॉति इनके सैरा चित्रों में रगो का चटकीला पन न होकर धुंधलापन है जैसा वाश चित्रो में होता है। बावजूद इसके, रंगों मे गति एवं पारदर्शिता सम्यक है। इनके टेम्परा चित्रो में अवश्य ही चमक एवं ताजगी देखी जा सकती है।

प्रो० बद्रीनाथ आर्या

जन्म	:	पेशावर पाकिस्तान - 1936
शिक्षा	:	आर्ट कालेज, लखनऊ उ० प्र० - 1956-57
कलागुरू	:	वीरेश्वर सेन, चन्द्र देव
पुरस्कार एवं सम्मान	:	वर्ष 1955 से 1991 तक निरंतर 24 पुरस्कार प्रदेश एवं देश स्तर के
एकल प्रदर्शनी	:	वर्ष 1953 से 1993 तक सात प्रदेश एवं देश में
संग्रह	:	मार्डन आर्ट गैलरी, नई दिल्ली, ललित कला अकादमी नई दिल्ली, राज्य ललित कला अकादमी, रवीन्द्रालय, बाल सग्रहालय लखनऊ, गवर्नमेण्ड हाउस दिल्ली, ललित कला अकादमी कलकत्ता, इलाहाबाद, देवरिया, हैदराबाद, चण्डीगढ़, बंगलोर, मैसूर के संग्रहालयों में तथा अनेकों विदेशी संग्रहों में
मामूहिक प्रदर्शनी	:	अनेकों वर्ष 1952 से अब तक प्रतिवर्ष.
सम्मानित पद	:	प्राचार्य एव डीन (रीडर एवं विभागाध्यक्ष ललित कला कालेज ऑफ आर्ट लखनऊ विश्वविद्यालय
अवकाश	:	1999
वर्तमान में	:	मुक्त होकर चित्र निर्माण
चित्र विशेषता	:	वाश विधा में ही परम्परागत विषयों से हटकर आधुनिक तकनीक में नवीन रूपाकारों का प्रयोग—

बी० एन० आर्या :-

"रचनाकार व्यक्ति भी होता है जिसका समाज के साथ रिश्ता होता है, और जब यह 'रचनाकार व्यक्ति' कुछ रचता है तो उसके सामाजिक परिवेश का उसकी कृतियों के माध्यम से सामने आना एक साधारण सी बात होती है। जब रचनाकार के भीतर का दर्द-अहसास उसकी रचना के माध्यम से लोगो का दर्द या अहसास बन जाता है तो रचनाकार की मेहनत सफल हो जाती है।"[1]

उपर्युक्त उद्‌गार गीतकार गुलजार ने दिनांक 9-9-2000 को उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र की महात्मागाधी कला दीर्घा में एक चित्र प्रदर्शनी के उद्‌घाटन अवसर पर व्यक्त किये थे। किन्तु कला सप्रेषणीयता के सन्दर्भ मे यह कोई नई बात नहीं कही गयी है। हमारे अनेकों चित्रकारों की चित्रकृतियों ने प्राचीन और आधुनिक ऐसे सन्दर्भो में दर्शकों के साथ तादात्म्य बिठा कर अपने व्यक्तित्व को अमर बना लिया है। ऐसे चित्रकारो में श्री- बी० एन० आर्या (बद्री नाथ आर्या) एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में प्रकट होते हैं। इन्होंने बंगाल शैली में जो चित्र बनाया वह और बाद में बंगाल शैली से इतर आधुनिक चित्र निर्माण में भी वे सर्वथा सफल रहे।

इनका जन्म वर्ष 1936 मे हुआ था। इनकी ललित कला की शिक्षा लखनऊ में हुई। यहीं पर इन्होंने चित्रकला एवं मूर्तिकला में पोस्ट डिप्लोमा भी किया। वर्ष 1953 से इनकी एकल चित्र प्रदर्शनियाँ कश्मीर, दिल्ली एवं लखनऊ में लगती रहीं हैं। वर्ष 1987 में ललित कला अकादमी की 15 वीं अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी हेतु विशेष रूप से जापान के लिए निमंत्रित किया गया। इनके चित्र देश एवं विदेश के विभिन्न सग्रहालयों में सुरक्षित हैं।[2]

जब किसी चित्रकार की वैयक्तिकता की बात उठती है तो बी० एन० आर्य का नाम सहसा सामने आ जाता है। श्री आर्य ने लखनऊ की वाश शैली की कृतियों के मानव

---

1 हिन्दुस्तान (दैनिक) मगलवार 12 दिसम्बर 2000 - पृष्ठ - 05

2 कन्टेम्पोरेरी आर्टिस्ट आफ उत्तर प्रदेश, पृष्ठ स०- 6

आकारों को तोड़कर यहाँ के पुराने भवनों के मेहराबों (आर्च) को अपनी चित्ररचना का आधार बनाया था। ये चित्र उसी दौर के थे। इनके पूरे फलक पर मेहराबों को इस प्रकार संयोजित गिया गया था जैसे किसी तिलिस्म के दरवाजे से प्रवेश करने के बाद दरवाजे ही दरवाजे मिलते चले जाते हैं, उनका कहीं कोई अंत न मिले, एकदम संतुलित आकार, साफ सुथरा रग और उसके पीछे रचना का उद्देश्य। जैसे आर० एस० बिष्ट की कृतियॉ देखते रहने को मन प्रेरित करता रहता है, वैसे ही बी एन आर्या के चित्रो को देखकर प्रेरित करता है। क्योंकि इन चित्रों में सिम्फनी का चरित्र भी है। एक शहर की वास्तुकला की सस्कृति भी है और कथ्य भी है। 'जीवन' जलरंग का उर्ध्व आयताकार चित्र है। इसका आधार तो आर्च है ही पर उसमे आकृतियो का संयोजन भी है। यद्यपि ये आकृतियॉ सायास उभारी गई हैं परन्तु वे आर्च और फूलों जैसे आकारो में घुली मिली हैं। फलक के ऊपरी भाग में एक घेरे मे वनस्पति के प्रतीक हैं और मुखाकृति। वहाँ से नीचे तक नजर डालते चले जाइये तो आपको एक अलग मानव आकृति की गर्दन और फिर कंधा फिर धड़ तक का अंदाजा हो जाये। एक गुम्फित आकृति बहुत सी अन्य आकृतियों से भिन्न है। बी० एन० आर्य की जलरग की जादूगरी देखते ही बनती है। इनके चित्र 'डाइमेंशन' मे फिरोजी हल्के हरे और सफेद रंग से रचित इस चित्र में फलक के नीचे से ऊपर को उठता हुआ प्रभाव है। मध्य में नीचे अर्थ स्पष्ट हैं और रंग भी गहरा है परन्तु ऊपर जाते जाते वे धूमिल हो गये हैं। इनका यह उर्ध्वआयामी प्रभाव चित्र को गतिशीलता प्रदान करता है।[1] इसी प्रकार का इनका चित्र 'आहुति' भी है। जलरंग माध्यम का यह चित्र 135 × 37 सेमी० के फलक पर जीवन की ही भाँति सृजित है। इसमें भी सर्प एवं मानव की आकृति सायास उभारी गई है। चूँकि इस चित्र की तकनीक तो वाश ही है फिर भी विषय सर्वथा बंगाल शैली से भिन्न आज के सामाजिक वातावरण से लिए गये हैं।

एक अन्य चित्र 'घुटन' भी आज के वातावरण में संवेदनशील एवं ईमानदार रचनाकार की मनोदशा को पूर्णतया संप्रेषित करता है।

---

1 पत्रकार सदन, जुलाई – सितम्बर 1999 पृष्ठ स० 39-41

श्री आर्य अपनी जडो से जुड़े हुए तो हैं ही वर्तमान से भी पूर्णतया परिचित है तभी तो वे पॉच दशकों से निरंतर सक्रिय बने हुए हैं और सच्चे अर्थो में आधुनिक हैं।

वाश तकनीक में निर्मित चित्र 'सांवरी' वर्तमान में इलाहाबाद संग्रहालय की आधुनिक कला दीर्घा में शोभायमान है। बीसवीं शती ई० का यह चित्र भारतीय आधुनिक चित्रकला के शुरूआती दौर की शान है। इसमें उर्ध्वआयामी फलक पर एक स्त्री को केश संवारते दिखाया गया है। यह स्त्री सम्भवत: एक आदिवासी चरित्र है। इसने अपने दांतों में चुटीला दबा रखा है। कानो के कुंडल, कंठहार, बाजूबंद, इत्यादि वेशभूषा से यह स्त्री सुसंस्कृत आदिवासी बाला प्रतीत होती है। चित्रनाम के अनुरूप इसकी त्वचा का रग काला है। अन्य प्रसाधनों के साथ यह स्त्री किसी का इन्तजार करती प्रतीत होती है। वृक्ष की शाखाओं, एवं पृष्ठभूमि के प्रकाश युक्त धूमिल संयोजन में श्री आर्या की जादूगरी स्पष्ट झलकती है। चित्र का दूसरा आकर्षण चित्र में अंकित दो चिड़ियॉ है जो एक टक सावरी स्त्री को निहार रही हैं। इस चित्र में त्रिआयामी प्रभाव इसे प्रचलित वाश विधा के अन्य संयोजनों से अलग पहचान प्रदान करता है।

इस आकृति मूलक किन्तु मौलिक चित्र के बाद 'डाइमेंशन', 'जीवन' और 'कारीडोर्स' की मौलिक रचना बी एन. आर्य को विशुद्ध भारतीय आधुनिक चित्रकार की श्रेणी में स्थापित करती हैं।

इस सम्दर्भ में असीत बाबू की बात उल्लेखनीय है कि " कला का ऐश्वर्य ऐतिह्य का अनुकरण करने में नहीं है। यदि हम बंगाली हैं और केवल बंगाली ग्राम्यपट के अनुकरण मे चित्र अंकित करते हैं तो उसको चोरी करना कहा जाता है। उसी प्रकार यदि कोई राजस्थानी प्राचीन राजस्थानियों की नक़ल पर चित्र बनाते हैं तो उसमें भी कला की मर्यादा नहीं रहती। अत: **मौलिक परिकल्पना ही कला का प्रयोजन है।**" [1]

---

1 रूप दर्शिका, ले०- असीत कुमार हल्दार, पृष्ठ स०-262

श्री बद्री नाथ आर्य ने हमेशा अपनी मौलिकता को अप्रभावित रखते हुए चित्र सृजन किया है तथा 'कारीडोर्स' जैसे चित्रों की आधुनिकता समाज में आज भी यथावत स्वीकारी जा रही है जो उनकी दूरदर्शिता की परिचायक है।

श्री आर्य के चित्रों में सौन्दर्य - प्रतीति और सामाजिक दृष्टि में परस्पर कोई विरोध भी नही है। इनके भीतर एक आन्तरिक गहरी एकता का अस्तित्व हमेशा विद्यमान रहा है तभी से ये गुणग्राही रचना करने मे सफल हो सके। अपने चित्रों में यदि उन्होने कुछ प्रतीक लिए भी है तो ये उनके अपने हैं उनकी खोज का परिणाम है— इस सन्दर्भ मे डॉ० कुमार विमल' का सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण उल्लेखनीय है कि—''कला के प्रतीको में अर्थ की सम्भावनाओं और नमनीयता का पर्याप्त महत्व रहता है। सचमुच कला के प्रतीकों में अर्थ स्फीति होती रहती है, क्योंकि ये प्रतीक केवल प्रयोक्ता ही नहीं, पाठक या दर्शक के भी कल्पना-बोध और उन्नत संवेदन से सापेक्षिक सम्बन्ध रखते हैं।[1]

ब्रदीनाथ के वाश चित्र बंगाल शैली की प्रचलित वाश विधा से पृथक महत्त्व रखते है। प्रारम्भ में तो इन्होंने भी हल्दार साहब एवं मजुमदार आदि की भाँति धार्मिक पौराणिक विषयों पर विधिवत अध्ययन के उपरान्त चित्र निर्माण किया, जैसे गंगावतरण, लंका दहन आदि किन्तु इनके अध्ययन काल में जब छोटे छोटे कागज पर वाश शैली में दीर्घ समय तक एक ही चित्र पर कार्य करने की परम्परा थी तब भी श्री आर्या ने आदम कद और उससे भी बड़े चित्र बनाये ।[2] बंगाल शैली में परिवर्तन ही एक मात्र आधार रहा है जो इस विधा के चित्रकारों को वैयक्तिक पहचान दे सकता था और इस दिशा में प्रो0 बी0एन0 आर्या ने पूर्ण सफलता पाई है। इनके चित्र परम्परागत बंगाल शैली से आकार में बड़े हैं। इन्होंने समसामयिक विषयों को चुना। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि श्री आर्या के चित्रों में कोमलता हर दशा में बरकरार रहती है जो इन्हें बंगाल शैली की वाश विधा से पूरी तरह काट पाने में असमर्थ है और अब तो यह कोमलता पूरी तरह इनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है । 21 फरवरी 1962 में नवजीवन में इनके चित्रों के विषय में लिखा है कि -

---

1 सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व, डा० कुमार विमल, पृष्ठ सं०-281

2 कुबेर टाइम्स, दिनाक 29-05-1999, पृष्ठ स0 04

"बंगाल शैली को आधार रूप में स्वीकार करते हुए भी चित्रों की मुद्राये और चेष्टाये उनकी अपनी हैं। उनकी प्रत्येक कृति पर उनके स्पर्श की छाप है रंगों का भावनाओ से समन्वय प्रधान रचना है। यानि श्री आर्य के चित्र काव्यात्मक अंत: चेतना की सरस्वती के स्रोत हैं । वाश पेन्टिंग और वाटर कलर दोनों में ही श्री आर्य समान दक्षता रखते है दर्शन के क्षेत्र में भी श्री आर्य की कलाकृतियाँ पीछे नही रही है। . "[1]

श्री असद अली के अनुसार - श्री आर्या के चित्रों में देवी देवता, मनुष्य एवं पेड सभी उसी प्रकार कोमल है जैसे श्री आर्य स्वयं ।[2]

भारतीय कला की प्रमुख शैली वाश के पर्याय बन चुके बद्रीनाथ आर्य पारंपरिक और समकालीन दोनों श्रेणी के स्तंभ कलाकारों में उल्लेखनीय हैं । वृहत आकार के वाश शैली में नैसर्गिक, सामाजिक राजनैतिक व धार्मिक विषयों को यथार्थ तथा अमूर्तनोन्मुख रूप में चित्रांकन करने व परिवर्तित होती कला प्रवृत्तियों के साथ दूरदर्शिता पूर्वक स्वयं को अद्यतन एवं विधा की प्रासंगिकता बनाये रखने का श्रेय भी इन्हें प्राप्त है ।[3] श्री बी0एन0 आर्या ने पुरानी पड चुकी वाश विधा को पुनर्जीवन प्रदान किया । इन्होंने इसे नये आयाम गहराई और प्रभावशीलता प्रदान की।[4] इन्होंने वाश विधा में कार्य करने वालों के लिए नये क्षितिज के द्वार खोले जो इनका प्रदेश की आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान है ।

श्री मदन लाल नागर के अनुसार -"बद्री नाथ आर्य की गणना कुछ वर्ष पूर्व तक परम्परावादी वाश शैली के चित्रकारों में हुआ करती थी परन्तु इधर के वर्षो में उन्होने अपने विषय वस्तु एवं अभिव्यक्तिकरण को लेकर वाश शैली में ही सर्वथा नवीन प्रयोग किये हैं।"[5]

कारीडार्स, जीवन, लय आदि चित्रों की श्रृंखला में विशेष रूप से आकर्षित करने

---

1 राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश, लखनऊ द्वारा आयोजित प्रदर्शनी के कैटेलाग से

2 राज्य ललित कला अकादमी उ० प्र० द्वारा आयोजित प्रदर्शनी के कैटेलाग से

3 कला त्रैमासिक, अप्रैल-जून 2000 पृष्ठ स0 48

4 रिसेन्ट पेन्टिग आफ बद्री नाथ आर्या, 1980, नई दिल्ली

5 समकालीन कला, सन्दर्भ तथा स्थिति, पृष्ठ स0 50

वाले आर्च को बनाने के पीछे छिपी प्रेरणा भी अत्यन्त रोचक है। देहरादून के ''लक्ष्मण सिद्धि'' नामक स्थान पर साठ के दशक में देखी गयी दीमकों की बांबियां ही ऐसे चित्रों के बनने का सशक्त कारण बनी ।

श्री आर्य ने वाश पद्धति जैसा कार्य बड़े बड़े कैनवस पर जल रंग के बजाय तैल रंगो मे भी किया है।

''श्री आर्य एक परिपक्क एवं सवेदशील चित्रकार है, वे अपने ब्रश से चित्र ऐसे बनाते है जैसे कोई कवि कविता लिखता है ।''[1]

वाश विधा के विषय में श्री आर्य स्वयं कहते हैं -''दरअसल वाश पेन्टिग्स की परम्परा बंगाल में पनपी । गुरूदेव अवनीन्द्र नाथ टैगोर, नन्द लाल बोस, और असीत कुमार हल्दार आदि का नाम आज सभी जानते हैं । इन सभी ने इसे ऊंचाइयां दी । ये सभी वाश विधा की चीनी शैली से अधिक प्रभावित रहे है, जबकि इस परम्परा में लखनऊ मे जो काम हुआ, उसे ओरियटल स्कूल के नाम से जाना गया । इसमें आपको भारतीय जीवन दिखेगा। कभी परम्परा के रूप मे कभी प्रयोगो के रूप में। आज वाश पेन्टिंग्स का मतलब केवल पनघट पर स्त्रियाँ नहीं हैं। यों प्रयोगों की यह परम्परा तो गुरूदेव के समय भी थी, खुद उन्होंने भी अनेक प्रयोग किये । कलाकार तो समाज का अंग होता है उसमें निरतर आ रहे बदलावों से वह अलग कैसे हो सकता है ?''[2]

श्री आर्या ने वीरेश्वर सेन एवं चन्द्रदेव से चित्रकला की विधिवत शिक्षा पाई और अपने रचनात्मक स्वभाव से उत्तर प्रदेश में आधुनिक कला क्षेत्र मे विकास का मार्ग प्रशस्त किया साथ ही वर्ष 1987 में पन्द्रहवीं अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में जापान के टोकियो एवं वर्ष 1988 में दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय बिनाले में अंकारा टर्की में इन्हें ससम्मान आमंत्रित किया गया।

---

1 ''नेशनल हेराल्ड'' बुधवार 24 सितम्बर 1975 (पजाब)

2 पत्रकार सदन, मार्च 1994 पृष्ठ स0 05

रघुवीर सेन धीर

जन्म	:	8 मार्च,1937, पंजाब
शिक्षा	:	ललित कला में डिप्लोमा, लखनऊ वि0वि0 1957-61
	:	चित्रकला में पोस्ट डिप्लोमा, लखनऊ वि0वि0 1961-63
	:	एम0एफ0 ए0 (चित्रकला) बी0एच0यू0 वाराणसी 1977-79
कला गुरू	:	बद्री नाथ आर्य (लखनऊ)
विशेषज्ञता	:	रचनात्मक संयोजन में (तैल, जलरंग एवं कोलाज)
एकल प्रदर्शनी	:	वर्ष 1964-1998 तक 17 प्रदर्शन बनारस, लखनऊ, कलकत्ता, भोपाल, बरेली, आगरा, जलन्धर, इलाहाबाद सहित काठमान्डू मे ।
सामूहिक प्रदर्शनी	:	वर्ष 1961 से 1999 तक, 17 सामूहिक प्रदर्शन लखनऊ, दिल्ली, वाराणसी, कानपुर, इलाहाबाद, मुम्बई, कलकत्ता, शिमला, बंगलोर में ।
शिविर	:	वर्ष 1964 से 2000 तक करीब 10 शिविर बड़ौदा, मुम्बई, लखनऊ, नई दिल्ली, जलन्धर, 1961 - मैसूर, 1962 मैसूर , 1965 - ग्वालियर, 1965 लखनऊ
पुरस्कार	:	1968 अकादमी ऑफ फाइन आर्ट, अमृतसर 1969 ,, ,, ,, ,, 1979 ,, ,, ,, ,, 1980 ,, ,, ,, ,, 1971 अखिल भारतीय - कलकत्ता 1971 राज्य ललित कला अकादमी 1974 अखिल भारतीय प्रदर्शनी में सर्वोत्तम प्रदर्शन राजामुण्डी (आन्ध्र प्रदेश) 1976 अखिल भारतीय स्वर्ण जयन्ती प्रदर्शनी में सर्वोत्तम

प्रदर्शन राजामुण्डी (ए०पी०)

1992 ललित कला अकादमी नई दिल्ली

1993 जयपुर

सम्मानित पद : रीडर ललित कला सकाय बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी वाराणसी 1964-1999

: विभागाध्यक्ष चित्रकला 1984-1996

संग्रह : राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

: आचार्य नरेन्द्र देव पुस्तकालय, लखनऊ

: बाल संग्रहालय, लखनऊ

: राज भवन गेस्ट हाउस लखनऊ

: सरकारी सग्रहालय, मैसूर

: सरकारी संग्रहालय, बगलौर

: रानू मुखर्जी कलकत्ता

: रेखा आर्ट गैलरी, काठमान्डू नेपाल

: इन्डियन एम्बेसी, नेपाल

: ललित कला अकादमी राजामुण्डी (ए0पी0)

: दिल्ली, आगरा, वाराणसी, बिहार, इलाहाबाद[1]

रघुवीर सेन धीर :-

प्रो0 रघुवीर सेन धीर का जन्म पंजाब में वर्ष 1937 में हुआ था । लखनऊ आर्ट कालेज से ललित कला की विधिवत शिक्षा प्राप्त करके वर्ष 1964 से ही ये कला शिक्षण से जुड़ गये। इनकी कर्मस्थली बना बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय जहाँ इन्होंने 30 वर्षो तक अध्यापन कार्य किया और आधुनिक कला के क्षेत्र में नवीनतम् प्रयोग किये, इनकी कला का आजीवन ऋणी रहेगा । इस विश्वविद्यालय के ललित कला संकाय के चित्रकला विभाग में

1. उपर्युक्त जानकारी धीर साहब द्वारा प्रदत्त बायो डाटा एव उनसे बातचीत के आधार पर

रीडर के पद पर कार्यरत रहकर प्रो0 धीर ने लगभग दस वर्षों तक समय समय पर इस विभाग के अध्यक्ष पद का भार भी बखूबी निभाया। कार्य को पूजा की तरह मानने वाले प्रो0 धीर का सर्वाग कला को समर्पित है। साठ वर्ष की उम्र में भी वह किसी नवयुवक से कहीं अधिक उर्जा और उष्मा के साथ कार्य करते हैं । हर दिन प्रयोग की बेचैनी के साथ उठने वाले और कार्य की संतुष्टि के साथ सोने वाले प्रो0 धीर बंगाल शैली की परम्परा के चित्रकार भी है और अपने ढंग से परिवर्तन के साथ नयी कार्यशैली के भी। यहाँ तक कि उन्होंने कम्प्यूटर से भी चित्र बनाये और उसमे करीब 40 से भी ऊपर चित्रों का निर्माण किया।

अपने कला गुरू प्रो0 बद्रीनाथ आर्या की भाँति प्रो0 धीर ने वाश शैली में विशेषज्ञता हासिल की है। इनके बनाये वाश चित्रों में 'बुढ़वा मंगल'[1] एव 'बनारस के घाट' प्रमुख हैं। ऐसे चित्रों में काशी नगरी की पवित्रता एवं धार्मिक महत्व को शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त करने में प्रो0 धीर पूरी तरह सफल तो हैं ही, वाश विधा में ही गाँव की शादी एवं घाट पर नृत्य करती स्त्री और उसके नृत्य का आनन्द लेते दर्शकों का बहुत सजीव चित्रण है । इन चित्रों में राग रंग और बनारस के रईसो की ऐय्याशी भी दिखाने में प्रो0 धीर पीछे नही है ।

धीर साहब ने बनारस में रहते हुए सत्तर के दशक में प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल के साथ भारतीय आधुनिक कला आन्दोलन समीक्षावाद से जुड़कर कई समीक्षावादी चित्र बनाये। पेपर कोलॉज बनाने में भी इन्हे सिद्धहस्तता प्राप्त है। इनके कोलॉज चित्रों के विषय गणेश, काली, सूर्य एवं ज्योतिष प्रतीकों से निकले होने के कारण इनमें पिकासो के कोलॉज चित्रो का घनवाद ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा। धीर साहब के कोलॉज भारतीय धार्मिक विश्वासों के आस पास अधिक हैं।

प्रयोगवादी दौर में ही प्रो0 धीर द्वारा निर्मित स्टिल लाइफ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तैल माध्यम में बने स्थिर जीवन के ये चित्र बंगाल शैली से अलग तरह का काम हैं। इन चित्रो को देखकर योरोपीय उत्तर प्रभाववादी चित्रकार पाल सेजाने के चित्रों का स्मरण हो आना

---

1 बनारस मे होली के पश्चात मनाया जाने वाला एक त्योहार

स्वाभाविक है, परन्तु प्रो0 धीर के स्थिर जीवन चित्र सेजाने के चित्रो से भिन्न है। सेजाने के चित्रों में जहां आकारों का ठोस पन प्रबल था और वस्तुएं सम्पूर्ण चित्र धरातल को कवर करती हैं वही प्रो0 धीर के चित्रों में अन्तराल के लिए प्रर्याप्त स्थान है। सेजाने के 'सेबों' की श्रखला चित्रों में जहाँ सेब ही सेब प्रमुख होते थे, धीर साहब ने केवल एक या दो सेब अन्य वस्तुओं के साथ चित्रित किए है जो अपने चटख लाल रंग से पूरे चित्र की एकरसता को भंग करते हैं। धीर साहब के स्थिर जीवन चित्रों में अन्तराल को भरने के लिए वस्तुओ की छाया को भी चित्र में समान महत्व के साथ चित्रित किया गया हैं, जो इनकी अपनी मौलिकता का एक हिस्सा है।

धीर साहब के चित्र, चाहे वे कम्प्यूटर द्वारा निर्मित हों, जलरग चित्र हों या फिर तैल माध्यम में स्थिर जीवन या घाटों के, इन सभी मे नीला पीला एवं नारगी रंग अपनी पूरी चमक व ताजगी के साथ प्रयुक्त हुआ है जो आधुनिक चित्रकला का अंग रहा है। धीर साहब ने जैन लघु चित्रों का अध्ययन करके विशाल कैनवस पर उनसे प्रेरित होकर भी कई चित्र बनाये हैं।

वर्ष 1999 में राज्य ललित कला अकादमी उ0 प्र0 द्वारा 'धनोल्टी' में चित्रकार शिविर आयोजित हुआ था, जहाँ धीर साहब ने अनेकों जलरंग दृश्य चित्र बनाये, इन चित्रो मे हरे रंग का प्रयोग बहुतायत में हैं। समग्र रूप से देखने पर स्पष्ट है कि धीर साहब के चित्र जीवन के समस्त रगों के साथ हैं, उनमे विषय जनित विविधता है।

धीर साहब ने दीवाली एवं नववर्ष कार्डो को भी कम्प्यूटर से बनाया है। इनके रेखांकन छोटे-छोटे स्ट्रोक्स के साथ एक अलग ही प्रभाव छोड़ते है। रेखांकनों में भी धीर साहब की प्रिय विषय वस्तु 'गणेश' बनारस के घाट, लक्ष्मी, हनुमान आदि हैं। पौराणिक विषय के चित्र या रेखांकनों की विषय वस्तु सभी अन्य मिथकीय प्रतीकों के साथ एक अत्यन्त सुन्दर इलस्ट्रेशन का रूप लेती है। इनके आकार संयोजन एवं प्रस्तुतिकरण का नवीन तरीका आज के दौर मे इन विषयों को प्रासंगिकता प्रदान करता है। इस प्रकार से धीर साहब के चित्रों को आधुनिक रूप इनकी अपनी शर्तो के साथ मिलता है।

धीर साहब एक ही शैली में बंधकर कार्य करने वाले चित्रकार नही है। आज वे माध्यम, शैली, विषयवस्तु, सभी की परिधि को पार करके कला के सच्चे उद्देश्य को पूरा करने मे लगे है। प्रो0 धीर स्वयं तो कार्य करते ही हैं प्रतिदिन अनेको कला के छात्र-छात्राओं को कला की बारीकियों से अवगत कराते है। इनके विद्यार्थियो मे देश ही नहीं विदेश से भी कला रसिक विद्या ग्रहण करने आते हैं। इस प्रकार से प्रदेश के कला जगत को समृद्ध करने वाले प्रो0 धीर बगांल शैली की वाश विधा मे भी कार्य करने वाली प्रदेश की सम्भवत: आखिरी पीढी के कलाकार है।

डा0 राम कुमार विश्वकर्मा

जन्म	:	01 01 1946, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)	
शिक्षा	:	डिप्लोमा चित्रकला, इलाहाबाद विश्वविद्यालय 1969-71	
	:	एम0ए0, चित्रकला - कानपुर विश्वविद्यालय	
	:	डी0फिल0, चित्रकला (भारतीय चित्रकला में सगीत तत्व) 1984	
सम्मानित पद	:	वरिष्ठ प्रवक्ता, चित्रकला, इ0 वि0 वि0 1976 से आज तक	
	:	अध्यक्ष, दृश्यकला विभाग, 1994 से आज तक	
एकल प्रदर्शनी	:	इलाहाबाद	1985
	:	बरेली	1986
सामूहिक प्रदर्शनी	:	1977 - 2000 निरंतर इलाहाबाद मे	
	:	1991 - नई दिल्ली	
	:	1993 - चण्डीगढ़	
	:	1994 - भुवनेश्वर	
	:	1995 - बंगलोर, कानपुर, लखनऊ	
	:	1996 - कानपुर (विशेष सम्मान)	

: 1997 - इलाहाबाद - प्र0क0 समिति

: 1999 - इलाहाबाद - नागवासुकि

: 1999 - इलाहाबाद - उ0म0 क्षे0 सा0 के0

राष्ट्रीय सेमिनार : वर्ष 1984 लगभग दो दर्जन

शोध निर्देशन : वर्ष 1993 से निरंतर[1]

रामकुमार विश्वकर्मा

''कला का रहस्य उसकी स्वतंत्रता में छिपा होता है और इसकी अभिव्यक्ति ः है- रूप या फार्म में । यही वह अकेली सभावना है जो कलाकार को अपनी स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध बनाती है।''[2] अपनी कला को नये रूपाकारो से समृद्ध करने के लिए प्रतिबद्ध डा0* रामकुमार विश्वकर्मा शिक्षक, लेखक एवं अध्यक्ष पद का दायित्व संभालते हुए भी अपने भीतर के कलाकार की स्वतंत्रता के लिए लगातार प्रयत्नशील है।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दृश्य कला विभाग में बंगाल शैली के मूर्धन्य चित्रकार श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार की चित्रकला परम्परा को आधुनिकता की ओर अग्रसर करने में सलग्र डा0 रामकुमार विश्वकर्मा का जन्म इलाहाबाद जिले में वर्ष 1946 में हुआ था।[3] इनकी प्रारम्भिक शिक्षा तो ग्रामीण वातावरण में हुई किन्तु यहीं से इनके भीतर कुछ करने की ललक का बीजारोपण हो चुका था जिसका पल्लवित रूप चित्रकार एव चित्रकला शिक्षक के रूप में आज सर्वत्र ख्यात है । इन्होंने कानपुर विश्वविद्यालय से चित्रकला विषय में

---

1 उपर्युक्त बायोडाटा का आधार चित्रकार से प्राप्त बायोग्राफिकल नोट, एव रा0 ललित कला अकादमी के विभिन्न कैटेलॉग 1997, 1998 इत्यादि

2 कला की प्रासगिकता, निर्मल वर्मा, कला, समय, समाज, पृष्ठ स0 8

3 'कृति 93' (कैटेलाग) पृष्ठ स0 04

एम0ए0 किया एवं डी0फिल0 आपने ललितकला विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रसिद्ध चित्रकार एव साहित्यकार डा0 जगदीश गुप्त जी के निर्देशन मे वर्ष 1984 मे ''भारतीय चित्रकला में संगीत तत्व'' विषय पर सफलता पूर्वक पूर्ण किया।[1] जो भारत सरकार द्वारा 1997 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित की गई है।

आपने उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी के सदस्य 1991 - 1996, प्रयाग कला समिति के प्रधान सचिव, चित्रकला परिषद् , इ0वि0वि0 के अध्यक्ष पदो पर रहते हुए कला का निरतर विकास किया है। वर्ष 1985 एव 86 में आपके 32 बंगाल शैली की वाश विधा मे निर्मित चित्रो की दो एकल प्रदर्शनियाँ क्रमश: इलाहाबाद एवं बरेली में आयोजित की गई। सामूहिक चित्रकला प्रदर्शनियों मे इलाहाबाद में वर्ष 1971 से अब तक निरंतर भागीदारी रही है। नई दिल्ली में वर्ष 1990 , आगरा मे वर्ष 1991 मे, केमानगुण्डी मे 1993 मे एव राष्ट्रीय कला मेला दिल्ली में वर्ष 1990 मे इनकी सक्रिय भागीदारी रही है।

डा0 विश्वकर्मा ने जिन अखिल भारतीय कलाकार शिविरो मे शामिल रहते हुए उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व किया है उनमे आगरा 1991, केमानगुण्डी (कर्नाटक) 1993 एव प्रयाग 1994, मथुरा 1996, चण्डीगढ़ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

इनके चित्रो का सग्रह उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ उत्तर मध्य क्षेत्र सास्कृतिक केन्द्र इलाहाबाद इत्यादि स्थलों पर विशेष सम्मान के साथ संग्रहीत है ।

डा0 विश्वकर्मा ने चित्रकला प्रशिक्षण के दौरान अनेकों वाश शैली के चित्र बनाये जिनमें मेले का दृश्य पनिहारिन एव साज सज्जा में तकनीक बगाल शैली की होते हुए भी रगों का चटकीलापन, परिप्रेक्षीय भ्रम, अन्तराल विभाजन और आकृतियो की भावपूर्ण मुद्रा और आकृतियो का ही पारस्परिक सम्बन्ध अद्वितीय होने के साथ साथ आधुनिक भी है। इन चित्रों की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इनमें आसमान का रग (जो कि चटक है) इलाहाबाद के अन्य बंगाल शैली के चित्रकारों से इनके चित्रों को अलग महत्व देता है।

---

1 स्मारिका, दृश्य कला विभाग, इ0वि0वि0 इलाहाबाद - पृष्ठ स0 14

आधुनिक चित्रों मे जो इन्होंने अस्सी एव नब्बे के दशक में बनाये तथा जो बगाल शैली से हटकर हैं वे समस्त चित्र काल चक्र श्रृंखला के है हालाँकि सयोजन के आधार पर इनके अलग अलग नाम हैं जैसे – ''टाईम 92'' तैल माध्यम मे निर्मित चित्र है। 120 × 90 सेमी0 के कैनवस पर निर्मित इस चित्र में समय को कालसर्प मानकर आध्यात्मिक मूल्यो के ग्रहण की बात कण्ठीमाल, चन्दन एवं धनुष के प्रतीको के माध्यम से दिखाने का प्रयास है। यहाँ धार्मिकता के छद्म रूप पर करारा व्यंग्य भी है। यह चित्र समीक्षावादी चित्रो की श्रेणी में अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के साथ रखा जा सकता है।

इस प्रकार के अन्य चित्रों मे 'क्राट रमी टॉट आरबोरिस' आदि भी सम्मिलित हैं। इन चित्रों मे कला का सामना करते हुए डा0 विश्वकर्मा दुनिया का सामना करते है। ये दुनिया ऐसी है जो एक साथ ही यथार्थ और अयथार्थ दोनों हैं इसीलिए यह हमारी रोजमर्रा की दुनिया से मिलती जुलती हुई भी हुबहू बिल्कुल वैसी नहीं होती। यह स्वप्न की तरह होती है और स्वप्न की दुनिया हमारी चेतन जिन्दगी का अंश होते हुए भी हमारी जीती जागती दुनिया से अलग होती है। स्वप्न और यथार्थ में उलझी हुई रचना जटिल होने के साथ साथ जीवन्त भी होती है ।

डॉ0 विश्वकर्मा के वाश चित्रों मे भक्तिरस और सामाजिक जीवन का सुन्दर दिग्दर्शन है- ''इनके चित्र इलाहाबाद की वाश पद्धति के पूर्व प्रतिष्ठित नामों की स्मृति कराते है और आज के अत्याधुनिक स्वरों के बीच कोमल भक्ति स्वरो का संगीतमय वातावरण सर्जित करते है।''[1]

डा0 विश्वकर्मा ने बगाल चित्रशैली से हटकर तैल माध्यम मे बडे आकार के चित्र क्यों बनाये इसके जवाब मे उनका कहना है – ''जलरग माध्यम अब अपर्याप्त हो चुका है और आधुनिक चित्रकला में तो तैलरंग ही हावी है। तैलरंग अधिक सरल है क्योंकि

---

1 दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 9 4 1985

आधुनिक युग तेज गति और चटखरगो का है। इसके अलावा अभिव्यजना की जो शर्त है वह भी तैलरग में अधिक शक्तिशाली बन पाती है।"[1]

आधुनिक चित्रकार अपने समय और समाज से स्वयं को अनदेखा नही रख पाता । इस तथ्य को डा0 विश्वकर्मा के 'टाईम 9 (चित्र स0 380) चित्र में बखूबी पहचाना जा सकता है। इस चित्र में घड़ी के आकार में धार्मिक प्रतीकों को घेरे बैठा सर्प सचमुच त्रासद घटनाओ का यथार्थ रूप प्रस्तुत करता है।

डा0 विश्वकर्मा ने जलरग माध्यमो में कई दृश्य चित्र भी बनाये है जिनमे रसूलाबाद घाट और इलाहाबाद विश्वविद्यालय की इमारतों को विषय बनाया है ।

वर्तमान मे डा0 विश्वकर्मा महाकुभ पर चटकीले रगो एव लयात्मक तूलिकाघातो से सुन्दर चित्रनिर्माण द्वारा अपनी कला को निखारने में व्यस्त हैं ।

---

1 अमृत प्रभात, इलाहाबाद, 15 06 1993

अध्याय - 5

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला का स्वरूप

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला जिसका तात्पर्य उत्तर प्रदेश में आधुनिक चित्रकला से है, से पूर्व भारत की आधुनिक चित्रकला पर दृष्टिपात करना परम् आवश्यक है।

'भारत में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इतिहास के अभ्यूत्थान में कला का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समय-समय पर राजनीतिक कारणों से सामाजिक जीवन के क्षेत्र मे जो परिवर्तन हुए और विधर्मी सत्ता के कारण इस देश की संस्कृति में नि नये तत्वों क समावेश हुआ उनका क्रमबद्ध इतिहास उस समय की कलाकृतियों में देखने को मिलता है।

19वीं शताब्दी के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का पूर्व आधिपत्य हो जाने प र भारत के विभिन्न अंचलो में विदेशी सत्ता के विरोध में जो राष्ट्रव्यापी आन्दोलन हुए। देश का कला धरातल उनसे अछूता न रह सका। आरंभिक कलाकृतियों में जो दु:ख, उत्पीड़न घृणा, निराशा और विरोधी भावनाओं का समावेश दिखाई देता है उसका कारण राष्ट्रीय जागृति ही थी।

यूरोपीय कला क्षेत्र मे वहाँ की राष्ट्रीय जागृति का प्रतिनिधित्व सेजां, वानगंगा, गांग्विन , मातिस, पिकासो आदि के चित्रों के माध्यम से हुआ। भारत मे राष्ट्रीय आन्दोलन के समय नयी अभिजात्य संस्कृति बंगाल क्षेत्र में पनपी, इसीलिए बंगाल पर राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव सबसे अधिक पडा।

1943 में बंगाल के देशव्यापी अकाल में वहाँ के सम्पूर्ण धरातल को हिला दिया। चित्रकला क्षेत्र में इस परिवर्तन के प्रभाव तत्काल स्पष्ट हुए। वर्ष 1944 ई0 में श्रीमती कैसी के प्रभाव से कलकत्ता में जो प्रर्दशनी आयोजित की गई उसमें प्रदर्शित चित्रों को अधिकतर लोगो ने पतन का कारण बताया। इसके विपरीत जो लोग परिवर्तित परिस्थितियों से परिचित थे उन्होंने इन चित्रों को प्रगतिशील भविष्य का घोतक बनाया। स्वतंत्रता के बाद उन कृतियों

को मान्यता मिली। उन्हें बीसवां शताब्दी का प्रतिनिधित्व करने वाली ऐतिहासिक कृतियाँ बताया गया। अमेरिका के प्रो0 डेविडसन और जर्मन विद्वान फिशर ने भी भारत के इस नये कला जागरण का स्वागत किया। तत्पश्चात 1950 मे कलकत्ता तथा बम्बई ग्रुप के कलाकारो ने मिलकर कलकत्ता में जिस प्रदर्शनी का आयोजन किया उससे नये कलाकारों को ख्याति मिली। नये अभ्यूत्थान मे सहयोगी कलाकारो में प्रदोष दास गुप्त, रचिन मित्रा, प्राणकृष्णपाल, सुनील माधव सेन, विनोद मजुमदार, परितोष सेन, कमला दासगुप्त , हेमन्त मिश्र, गोवर्धन सेन आदि का नाम उल्लेखनीय है।

भारत में चित्रकला के क्षेत्र में क्रान्ति लाने वाली पहली चित्रकार अमृता शेरगिल ही रही है। जिन्होने राष्ट्रीय जागरण एवं विश्वयुद्ध के वक्त भारत की आन्तरिक स्थिति का गहन अध्ययन करके जिन चित्रकृतियों का निर्माण किया वे सर्वथा मौलिक एवं प्रभावशाली सिद्ध हुई। अमृता शेरगिल ने बंगाल स्कूल की वाश शैली का खुलकर विरोध किया-और यहाँ की महीन संषेदनात्मक रेखाओं को हल्की संगसंगति को-सीधे सपाट, चटक रगो से आकारों के साथ परिवर्तित किया जिससे भारत के प्रगतिशील कलाकार भी प्रभावित हुए बगैर न रह सके। अमृता के चित्रों से प्रेरित होकर ही तत्कालीन कलकत्ता और बम्बई के चित्रकारों ने प्रगति शीलता की ओर कदम बढ़ाया।

वर्ष 1934 में मात्र 21 वर्ष की अवस्था में जब अमृता दूसरी बार भारत आई थी तो, उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले की सरैया तहसील जहाँ इनके पिता की जागीर थी एव चाचा का फार्म हाऊस था, ने इन्हें चित्रण की सशक्त प्रेरणा दी थी। पेरिस में उतर प्रभाववादी चित्रकार गांर्ग्वन के चित्रों मे अमृता को जिस अवसाद की झलक मिली थी, वह भारत में सरैया आकर उसके अपने अनुभवों से और गहरी हो गई। अमृता शेरगिल के अनुसार- '' जैसे ही मैने भारत की धरती पर कदम रखा, मेरी कला व केरल विषय और मूल भावना की दृष्टि से बदली, बल्कि अभिव्यक्ति की तकनीक में भी नया मोड़ आया। यह नया मोड़ भारतीयता का था। मुझे अपनी कला के मूल उद्देश्य का पता चल गया है कि मुझे भारतीयों के जीवन का खास कर गरीब भारतीयों क चित्रण करना हैं। उनके मौन समर्पण एव धैर्य को

कैनवस पर उतारना है उनकी बदसूरती का सौन्दर्य उभारना है और उनकी आंखो मे भरे विवाद का जो प्रभाव मेरे मन पर पड़ा है, उसे हू-ब-हू चित्रो में स्थापित कर देना है।''[1]

अमृता के चित्रों में 'भारत-माता,' तीन बहने (जिस पर 1936 की पद्रर्शनी में बम्बई आर्ट सोसाइटी ने स्वर्ण पदक प्रदान किया था) 'नन्हा अछूत' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों का प्रेरणा स्रोत उत्तर प्रदेश ही रहा है तथा अमृता शेरगिल की पहचान इनके चित्रो की उदास आकृतियो से ही बनी है।

''हमारी आधुनिक कला कितने तरीकों, प्रभावों, विविधताओं से गुजर रही है— और सम्भवत: आज यह कह सकना कि मूर्तिकला, चित्रकला आदि क्षेत्र में हम किस प्रवृत्ति विशेष से अधिक प्रभावित है कठिन हो गया है, जहॉ अभिव्यक्ति के माध्यमो मे साफ सुथरापन या यथार्थ की तीव्र अभिव्यक्ति पर बल है, वहीं दूसरी ओर एक विशेष प्रकार की अपार्थिवता, किसी अज्ञात को पकडने की तड़प, नितान्त वयक्तिनिष्ठ होने का प्रयास यर्थाथ को सरलीकृत करना आदि प्रवत्तियॉ उतनी ही प्रबल है। यह स्पष्ट रूप से देश की कला मे खुलेपन का परिचय देती हैं और स्वास्थ का लक्षण भी हो सकती है, वहीं दूसरी ओर वे एक ऐसे आग्रह का भी द्योतक हैं जो दायरों को समेटने का भी प्रयास हो सकता है। वास्तव में कला किस सीमा तक सार्वभौमिक है, किसी सीमा तक वह किसी सस्कृति या परम्परा की उपज है और कितनी अधिक व्यक्तिनिष्ठ है— यह सारे प्रश्न आज के कलाकार के सामने हैं जिसका उसे सामना करना पड़ रहा है।''[2]

आज से तकरीबन अठारह बीस वर्ष पूर्व श्री कृष्णनारायण कक्कड की उपरोक्त सोच की प्रासंगिकता आज भी यथावत हमारे सामने है, फिर भी काफी प्रयास तत्कालीन कला-मनीषियों के द्वारा भी किए जाते रहे हैं और आज भी यह क्रम बदस्तूर जारी है। उत्तर प्रदेश भारत का एक हिस्सा है, भारत की आधुनिक कला में विभिन्न प्रांतों के चित्रकारों का

---

1 अमृता शेरगिल, लेखक- कन्हैया लाल नदन, पृष्ठ स0-17

2 कला त्रैमासिक अक 2, 1982, पृष्ठ स० —2

अपना-अपना सहयोग रहा है। उत्तर प्रदेश के चित्रकारो ने भी अपनी नवीन खोजो एव मौलिक चित्रों से प्रदेश ही नहीं वरन देश को भी समृद्ध किया है।

उत्तर प्रदेश एक सम्पन्न राज्य रहा है। यह प्राचीन काल से ही कला संस्कृति, साहित्य, राजनीति एवं धर्म हर क्षेत्र में अग्रणी रहा है। प्राचीन एवं मध्यकालीन चित्रकला के सर्वाधिक उदाहरण उत्तर प्रदेश मे मिले हैं।

आधुनिक चित्रकला की शुरूआत में जिस बंगाल शैली ने पृष्ठभूमि तैयार की उसके अधिकाश चित्रकारों ने उत्तर प्रदेश में रहकर बंगाल शैली मे रचना प्रारम्भ करते हुए आधुनिक चित्रकला से उत्तर प्रदेश को सम्पन्न किया।

प्रदेश में कला विद्यालयों से लेकर ललित कला अकादमी एवं विश्वविद्यालय तक मे कला शिक्षा के प्रचार प्रसार में जिन चित्रकारों का योगदान रहा है उनकी विस्तृत चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं।

लखनऊ में सृजन के विभिन्न क्षेत्रों में, जिस क्षेत्र में सबसे अधिक क्रियाशीलता दिखती है वह है चित्रकला। साठ के दशक से ही कई चित्रकार अपने चित्रों की अकेले या सामूहिक रूप से प्रदर्शनियाँ करने की योजना बनाते रहे हैं। जो निरंतर फलीभूत भी हुई हैं।

रनवीर सिंह बिष्ट लखनऊ के उन युवक चित्रकारों में से रहे हैं, जिन्होंने अपने परिवेश को विकसित करने का निरंतर प्रयत्न किया है।

17 सितम्बर 1961 में, लखनऊ कला विद्यालय के स्केचिंग क्लब द्वारा आयोजित चित्रों की प्रदर्शनी चित्रकारों का अखिल भारतीय स्तर पर मूल्यांकन किए जाने के प्रयत्न का पहला कदम है। इस प्रदर्शनी में यथार्थवादी, प्रभाववादी, अभिव्यक्तिवादी से लेकर रंगों के विशुद्ध शिल्पगत प्रयोगों या वैचारिक अमूर्त चित्रों तक विस्तार देखा जा सकता है। यहाँ सफल चित्रों को दो वर्गो में बॉटकर देखा गया है। एक तो वे जिसमे नगर जीवन से सम्बन्धित मकान सड़क आदि के स्पष्ट-अस्पष्ट पेन्टर्स है और दूसरे वे जिनमें रंगों का मुक्त प्रयोग ही चित्रकार के लिए अभीष्ट हैं। आकार रंगो की संगति का अनायास परिणाम है।

तत्कालीन प्रचलित आधुनिक शैली में बनाये गये वैचारिक चित्र अपेक्षाकृत असफल रहे हैं। अतः यह सत्य है कि — "आधुनिकता शिल्प आकार की ही नहीं, आधुनिक वैचारिक तीव्रता की भी अपेक्षा करती है"।[1]

उत्तर प्रदेश की वर्तमान राजधानी लखनऊ में वर्ष 1911 में अंग्रेजों द्वारा कला महाविद्यालय की स्थापना हुई, किन्तु प्रारम्भ मे यहॉ भी पाश्चात्य नैसर्गिकतावादी चित्र ही अधिकाश बने है।

उत्तर प्रदेश की वर्तमान आधुनिक चित्रकला का स्वरूप यो ही नहीं बना बल्कि यहाँ पर विश्व के महान कलाकारो ने अपनी सृजनात्मकता को नये नये आयाम दिए। इन कलाकारों में जिन्हे भारतीयता के बहुत निकट समझा गया उनमें प्रमुख 'अमृता शेरगिल' रही हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के वातावरण मे अमृता ने यूरोप में रहना ठीक नहीं समझा। श्री लंका, महाबलीपुरम् मथुरा होते हुए अमृता शेरगिल वापस शिमला आई। इस बार उन्होने गोरखपुर के पास सरैया नामक जगह पर मजीठिया परिवार की जागीर मे अपना काफी समय बिताया। यहॉ पर घर और बाहर की स्त्रियो के निकट सम्पर्क में आकर अमृता को इन स्त्रियों की विशेष सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओ की जानकारी मिली।

विवान सुन्दरम् के अनुसार अमृता शेरगिल का अपने विषयो में आकर्षण मूलतः सामन्ती ही था। सरैया की कलाकृतियों को देखकर उस माहौल के चित्रण को देखकर प्रेक्षक यह सोच भी नहीं सकता कि इस दृश्य के बहुत पास में चीनी मिल का चिमनियो का भी कोई अस्तित्व होगा। इस देश का कठोर यथार्थ दरवाजे के सामने था, पर उसमें अमृता की कोई दिलचस्पी नहीं थी।[2]

---

1 कला त्रैमासिक (रणवीर सिह बिष्ट विशेषाक) पृष्ठ स० 5

2 कला चित्रकला, ले०—वि० भारद्वाज, पृष्ठ स० 54

यह बात मानने की कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि कला गतिविधियो के क्षेत्र मे उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग उतना प्रगति पसंद नहीं रहा जितना कि उत्तरी क्षेत्र, जबकि पुरा सम्पदा एवं लोक कला से जुड़ी हुई प्राचीन धरोहर से सम्बन्धित इस क्षेत्र का ऐतिहासिक पक्ष में स्वयं में काफी समृद्ध है। सम्भवत: यहॉ समसामयिक कला को इसलिए भी महत्व नही दिया जा सकता है क्योंकि इस क्षेत्र में (कला के क्षेत्र में) वातावरण और सरक्षण दोनो का ही अभाव रहा है। यहॉ पर इस क्षेत्र को अमृता शेरगिल के नाम का भी सन्दर्भ आवश्यक है। उनकी कला का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन गोरखपुर को जोडकर शायद ही कहीं किया गया हो।

किन्तु पिछले पन्द्रह बीस वर्षो से गोरखपुर विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग ने कला के प्रति जागरूकता का परिचय दिया है। वैचारिक स्तर पर भी इस सम्बन्ध मे जागरूकता हुई है और बुद्धिजीवियों का सहयोग जो काफी दिनों से आलोचना का विषय बना हुआ था, उसकी अपेक्षित प्रक्रिया भी देखने को मिलती रही है। नवम्बर-दिसम्बर 1981 में उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी की स्थायी कला संग्रह की प्रदर्शनी, कला विषयक फिल्मों का प्रदर्शन, चित्रकला में स्नातकोत्तर कक्षाओं का प्रारम्भ, नववर्ष की शुभकामना के मोलिक कार्ड्स की प्रदर्शनी, प्रसिद्ध कलाकारों का सम्मान, चित्रकला विभाग की वार्षिक कला प्रदर्शनी का प्रारम्भ आदि संकेत उल्लेखनीय रहे हैं। वर्तमान में गोरखपुर विश्वविद्यालय की 'करुणासिद्धूब्बू आदि शिक्षक चित्रकार प्रदेश के कलाजगत को सम्पन्न करने में सक्रिय हैं।

आज उत्तर प्रदेश की कला का स्वरूप बहुत बदल गया है। इस क्षेत्र में लखनऊ स्थित कला महाविद्यालय की भूमिका तो करीब 50 वर्षो से बहुत ही महत्वपूर्ण रही है। इस महाविद्यालय की गतिविधियों ने वर्ष 1956-57 से बहुत सारे कार्य किये जो इस प्रदेश के आधुनिक कला जगत के लिए विशेष महत्व रखते हैं। श्री सुधीर रंजन खास्तगीर उस समय इस महाविद्यालय के प्राचार्य थे, उन्होंने स्वतंत्र भारत में पहली बार 18 वर्षो के बाद इस महाविद्यालय का ब्रोशर छपवाया और इससी भूमिका में कहा था, ''पिछला ब्रोशर इस

कालेज का करीब 18 वर्षो पूर्व 1939 में छपा था किन्तु तब से आज तक चीजें बदल गई है, और वर्तमान स्वतंत्र भारत में परिवर्तन बहुत तेज गति से हो रहा है। पिछले 19 वर्षो से यह विशिष्ट संस्था अपने पुराने नाम पर ही जानी जाती रही है। इन दिनों कोई प्रचार आदि को भी आवश्यक नही समझा गया। कोई मासिक अथवा वार्षिक पत्रिका भी नही निकली गई जिससे संस्था की घटनाओ को सुरक्षित रखा जा सकता।

हाल ही मे सरकार ने इसका नाम बदलकर कला एवं शिल्प महाविद्यालय कर दिया है और इस योजना के तहत हमने संस्था में स्वस्थ एव प्रेरणादायक वातावरण तैयार करने और बढाने की आशा की है।''[1]

इस कॉलेज का इतिहास कुछ यूँ है कि — उद्योग धन्धों में कला का अपना बहुत महत्वपूर्ण योग होता है। दैनिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की उपयोगी व सजावट आदि की वस्तुओ को सदैव से नित नया रूप, नये डिजाइन इसी माध्यम् द्वारा उपलब्ध होता आया है। भारतीय उद्योग धंधो में उत्तर प्रदेश का स्थान प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है, किन्तु ब्रिटिश सत्ता के आगमन से ऐतिहासिक उथल पुथल के परिणामस्वरूप प्रायः 19वी शताब्दी के मध्य से किसी प्रकार के संरक्षण के अभाव में देश में कला तथा औद्योगिक कारीगरी का स्तर क्रमशः गिरता ही गया। इसी कमी को अनुभव करते हुए सन् 1907 मे हुई औद्योगिक कान्फ्रेंस में प्रदेश मे एक कला व शिल्प विद्यालय होने की आवश्यकता पर विशेष रूप से विचार हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप कान्फ्रेन्स की सिफारिश पर सन् 1911 में लखनऊ में राजकीय कला व शिल्प विद्यालय की स्थापना हुई। श्री नेथेनियल हर्ड विद्यालय के प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त हुए।

यद्यपि भारतीय कलाओं और उद्योग धंधों को सुविकसित करने के प्रति विदेशी सरकार का विशेष आग्रह न था, फिर भी समय की मॉग को पूरी तौर पर नजर अंदाज न कर सकने के कारण विद्यालय में यहाँ ललित कला, व्यापारिक कला, अर्किटेक्चरल ड्राफ्टसमैन, लिथो प्रोसेस आदि की शिक्षा देने की व्यवस्था हुई, वहीं सुनारी, लुहारी, ढलाई,

---

1 ब्रोशर गवर्नमेन्ट कॉलेज आफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट – पृष्ठ स०-3

धातु पर पच्चीकारी गढ़ाई, चिताई बढ़ईगीरी, मिट्टी के खिलौने बनाने आदि से साथ ही साथ औद्योगिक कलाओं के लिए नये डिजाइन आदि निर्मित करने की शिक्षा देने की व्यवस्था भी हुई।

सन् 1925 में प्रख्यात कलाकार श्री असीत कुमार हल्दार यहाँ के प्रिंसीपल होकर आये। इन्होंने विद्यालय की शिक्षा पद्धति में भारतीय कला को प्रमुख स्थान देने की दृष्टि से यथेष्ट परिवर्तन किए। इसके अलावा श्री हल्दार ने अपने कार्यकाल मे ड्राइंग टीचर्स ट्रेनिग, कच्चे पक्के मीने का काम प्रोसेस विभाग में ट्राईकलर प्रोसेस तथा मूर्तिकला विभाग का प्रारम्भ कर विद्यालय की उन्नति का मार्ग और प्रशस्त किया। श्री हिरण्यमय राय चौधरी श्री विरेश्वर सेन, श्री ललित मोहन सेन व श्री श्रीधर महापात्र सदृश ख्याति प्राप्त कलाकारों को शिक्षक के रूप में यहाँ लाने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है।

सन् 1945 में श्री हल्दार के अवकाश प्राप्त करने पर श्री ललित मोहन सेन ए० आर० सी० ए० (लन्दन) जो कि यहाँ के छात्र भी रह चुके थे, प्रिंसिपल नियुक्त हुए। अक्टूबर 1954 में श्री सेन की मृत्यु के उपरान्त प्रिंसिपल के रूप में सुप्रसिद्ध कलाकार श्री सुधीर खास्तगीर की नियुक्ति मार्च 1956 तक, यह पद अस्थायी रूप से विद्यालय के सुपरेंटेन्डिग क्रैफ्टस् तथा विद्यालय के भूतपूर्व छात्र भी हरिहर लाल मेढ़ ने योग्यता पूर्वक संभाला।

श्री खास्तगीर ने प्रिंसिपल का पद संभालने के उपरान्त इतने अल्प समय में ही स्कूल की गतिविधि को नव चेतना प्रदान की। हर्ष की बात तो यह है कि गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ आर्टस् एण्ड क्रैफ्टस् कॉलेज हो गया, आर्किटेक्चर विभाग खोला गया तथा मूर्तिकला विभाग जो कि श्री राय चौधरी के अवकाश प्राप्त करने पर समाप्त कर दिया गया था पुनः स्थापित किया गया। विद्यालय के ललितकला, मूर्तिकला, ड्राइंग टीचर्स ट्रेनिंग तथा आर्किटेक्चर विभागों में क्रमशः श्री मदन लाल नागर, श्री अवतार सिह पंवार, श्री रणवीर सिंह बिष्ट, श्री कीर्ति सिंह चार नये अध्यापको की नियुक्ति हुई। विद्यालय की पुनर्नियोजन योजना के अन्तर्गत विभिन्न विभागों के लिए अनेक आधुनिक प्रकार की मशीनें तथा अन्य वस्तुएँ आयीं तथा निकट भविष्य में अन्य सुयोग्य अध्यापकों से भी विद्यालय को और समृद्ध किया गया।

इस महाविद्यालय में ललित कला विभाग में चित्रकला की शिक्षा दो मुख्य विधियो पर आधारित थी। पहली भारतीय कला पद्धति और दूसरी पाश्चात्य कला पद्धति। भारतीय कला पद्धति के अन्तर्गत जल रंग में वाश शैली तथा टैम्परा शैलियों में छवि चित्रण तथा टेक्सटाइल ड़िज़ाइन, प्राचीन भारतीय कलाकारों की कला शैलियों का अध्ययन तथा उनकी प्रतिलिपि अंकन करना आता है।

पाश्चात्य कला पद्धति मे प्रकृति का यर्थाथ वादी चित्रण जिसमें फूल पत्ती, पेड़ पौधों, माडल ड्राइंग, प्राकृतिक दृश्य चित्रण, मूर्तियों का लाइट व शेड में यर्थाथ वादी चित्रण, स्केचिग तथा पोर्ट्रेट पेन्टिंग आते है जिसमें जलरंग, तैलरंग, पेस्टल, चारकोल आदि विभिन्न माध्यमों मे चित्रित करने की शिक्षा दी जाती है। अतिरिक्त इसके पाश्चात्य कला विभाग के विद्यार्थियो के लिए मूर्तिकला की शिक्षा भी अनिवार्य थी। आज से पचास वर्ष पूर्व लखनऊ स्थित कला एवं शिल्प आज से पचास वर्ष पूर्व लखनऊ स्थित कला एव शिल्प महाविद्यालय की यही शिक्षण प्रशिक्षण प्रणाली आज लगभग उत्तर प्रदेश की आधुनिक कला या प्रदेश में चित्रकला के क्षेत्र में आधुनिकता की शुरूआत को जानने का सबसे उत्तम माध्यम हैं।

उत्तर प्रदेश ही क्या आज के सभी प्रमुख भारतीय चित्रकार करीब-करीब एक सी समस्याओ मे उलझे हैं। 1910 के बाद जब यह स्थापित हो गया कि चित्रकार के लिए किसी परिचित आकार का आग्रह आवश्यक नहीं है, आगे आने वाले चित्रकारो के लिए रास्ते खुलते ही चले गये (जिन्हें सम्भावनाओं के ही रूप में ग्रहण किया जाता है) और स्थिति आ गई कि रगो-रेखाओं या विसंग आकारों का वास्तविकता से पृथक स्वतंत्र प्रयोग ही चित्रकला की सम्पूर्ण परिणति हो गई। जब हम यह मान लेते हैं कि चित्रकला यथार्थ की अनुकृति नहीं है तो हम चित्रकला के वर्तमान तर्क को भी मानने के लिए बाध्य हो जाते है, चाहे वह तर्क ऐसी दिशा की ओर ले जाता है जिसके हम आदी नही है।

इसके साथ-साथ एक दूसरा भी है- कुछ आकार कुछ रंग हम अपने चारों ओर देखते हैं, अनुभव करते हैं आत्मसात करते हैं- कभी कभी हम उनसे आक्रान्त हो जाते हैं।' शब्दों के माध्यम से हम सम्भवतः उन्हें विघटित करने में अधिक सफल हो सकते हैं। शब्द

एक सीमा तक वस्तु को अमूर्त करते है किन्तु चित्रकार के लिए इसकी सृजनात्मक सम्भावना कम होती है ऐसे चित्रो को जो काफी सीमा तक फार्मलिस्टिक (आकार-मूलक) हैं, जो अक्सर चित्रकार और चारों तरफ के अनुभवों के मूड को दृष्टिगत करते है, हम चाहें तो चित्रकार की वर्कशाप मान सकते हैं। कठिनाई केवल यह है कि इन चित्रों का अपना एक महत्व है, एक सार्थकता है।[1] भारतीय कला स्थिति का आकलन विश्व के बदलते सन्दर्भ में करते हुए श्री बिष्ट ने कहा था। ''दुनिया छोटी होती जा रही है और फासले कम, जिसकी वजह से हमारे मूल्यो तथा अवधारणाओ मे तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं। हमारे देश की कला के विकास की कहानी और पाश्चात्य कला के विकास की कहानी मे फर्क है। कुछ सीमा तक हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति ऐसी नही रही है, कि वह एक विशेष प्रकार की कला को लागू कर सके। भारत वर्ष के कलाकारों को आत्मनिर्भर आत्म अन्वेषक होना चाहिए और जीवन की वास्तविक स्थितियो से साक्षात्कार करना चाहिए।[2]

देश का सबसे पुराना कला महाविद्यालय जो अब लखनऊ विश्वविद्यालय का अग है उसने भारतीय समकालीन कला को काफी योगदान दिया है।[3]

''फरवरी 1962 में उत्तर प्रदेश शासन द्वारा स्थापित स्वायत्तशासी संस्था राज्य ललित कला अकादमी समय समय पर केन्द्रीय ललित कला अकादमी की घुमंतू कला प्रदर्शनी का भी आयोजन करती है साथ ही कलाकृतियों का क्रय भी करती हैं।

ज्ञातव्य हो कि अकादमी की ओर से होने वाली प्रकाशन सामग्री, ले-आउट मुद्रण व प्रकाशन की दृष्टि से उच्च स्तरीय माने गये हैं। अकादमी द्वारा प्रकाशित ड्राइंग पोर्टफोलियों पर भारत सरकार ने अंग्रेजी कला प्रकाशनों में प्रकाशन एवं डिजाइन, ले-आउट प्रिन्टिंग का प्रथम पुरस्कार प्रदान किया।

---

1 धर्मयुग 6 अगस्त 1967 (कला त्रैमासिक- पृष्ठ स० 10)

2 कला त्रैमासिक, (रा सिह विष्ट विशेषाक) पृष्ठ स० 16

3 वही पृष्ठ स० 19

उत्तर प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि आज यहाँ केन्द्रीय ललित कला अकादमी, उत्तर प्रदेश शासन व राज्य ललित कला अकादमी के सहयोग से लखनऊ मे एक क्षेत्रीय कलाकेन्द्र की स्थापना हुई है। इस केन्द्र हेतु 39,527 वर्गफुट जमीन पर भवन का शिलान्यास 11 फरवरी 1980 को श्री रामनिवास मिर्धा ने किया था। आज इस केन्द्र की स्थापना से कलाकारों को अनेक प्रकार की सुविधाये उपलब्ध हैं।[1]''

उपरोक्त राज्य ललित कला अकादमी एवं कला महाविद्यालय जो लखनऊ मे स्थित होते हुए भी पूरे देश मे कला के विकास को गति देते रहे हैं के अतिरिक्त बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का ललित कला विभाग, भारत कला भवन (बनारस), अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अनेकों कालेज, आज चित्रकला की विधिवत शिक्षा देने के साथ साथ अन्य कला सम्बन्धी गतिविधियों से निरतर प्रदेश को इस क्षेत्र में अग्रणी बनाने के लिए प्रयत्नशील है। इलाहाबाद स्थित उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र में तो वर्ष 1996 से महात्मा गाधी आर्ट गैलरी, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के चित्रकारो की प्रदर्शनी के साथ-साथ नवोदित चित्रकारों को भी अत्यन्त अल्प शुल्क में उपलब्ध है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डेलीगेसी मे भी वर्ष 1996 से निराला आर्ट गैलरी खुली है। जहाँ इलाहाबाद विश्वविद्यालय के चित्रकला के विद्यार्थी शिक्षण काल में ही समय समय पर अपने चित्रों की प्रदर्शनी श्रेष्ठ गुरूजनों के निर्देशन में करते रहते हैं। वर्तमान में इ० वि० वि० के चित्रकला विभाग के अद्यक्ष डा० आर० के विश्वकर्मा जो स्वयं भी एक समर्पित चित्रकार एवं लेखक हैं अपने कार्यकाल में विभाग में एक विशाल कला दीर्घा का निर्माण विश्वविद्यालय प्रशासन की ओर से करवा रहे हैं।

अतिरिक्त इसके इलाहाबाद संग्रहालय की भूमिका भी चित्रकला के आज के वर्तमान स्वरूप के लिए काफी महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में पं० जवाहर लाल नेहरू का वह वक्तव्य उल्लेखनीय हैं जो उन्होने 18 दिसम्बर 1960 में राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली के औपचारिक उद्घाटन के अवसर पर कहा था, ''संग्रहालय महज अजीबो ग़रीब वस्तुओं को सुरक्षित

---

1 कला त्रैमासिक (बाल कला अक) पृष्ठ स०— 63

रखने एवं देखने के लिए ही स्थापित नहीं किये जाते है। जैसा कि अक्सर कहा जाता है ये समस्त संग्रहालय देश की शिक्षा एवं सांस्कृतिक क्रिया कलापों के अभिन्न अग है।''[1]

सन् 1960 से इलाहाबाद संग्रहालय प्रतिवर्ष शीत ऋतु मे एक बाल चित्रकला प्रतियोगिता आयोजित करता आ रहा है। प्रतियोगिता मे चार वर्गो में इंगित 5 से 15 वर्ष आयु के बालक तथा बालिका भाग लेते हैं। इनके नाम विभिन्न संस्थाओं की ओर से आते हैं। सग्रहालय प्रतियोगियों से किसी प्रकार का कोई शुल्क नही लेता तथा बहुधा चित्रण सामग्री भी संग्रहालय की ओर से प्रदान की जाती है। चित्रों का मूल्यांकन नगर के तीन जाने माने कलाविदों तथा कलाकारो द्वारा किया जाता है। भारत के बाल कला के प्रवर्तक श्री शंकर पिल्लै का इस आयोजन को आशीर्वाद प्राप्त है। वे प्रतिवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय बाल कला प्रदर्शनी दिल्ली के चित्रों को इलाहाबाद भेजते हैं। स्थानीय बाल चित्रकला प्रतियोगिता मे सफल बालकों के चित्रों तथा दिल्ली के चित्रों की एक सम्मिलित प्रदर्शनी भी प्रतिवर्ष की जाती रही है। किन्तु इधर कुछ वर्षो से इ० संग्रहालय में चित्रकला कार्यशाला, मूर्तिकला कार्यशाला किसी भी उम्र के इच्छुक लोगों के लिए खुली है। इसमें विद्यार्थियों को चित्रकला की बारिकियों से प्रसिद्ध चित्रकार श्री बालादत्त पाण्डेय, परिचित करा रहे है। संग्रहालय की दीर्घा में प्रसिद्ध ख्यातिप्राप्त चित्रकारों से लेकर नवोदित चित्रकारो तक की प्रदर्शनियॉ निरंतर आयोजित की जाती हैं। वर्ष 1989 में ललित कला अकादमी के 'संग्रह' की विशाल प्रदर्शनी यहाँ आयोजित की गई थी।

इसी प्रकार बच्चों के लिए चित्रकला के क्षेत्र में आगे का मार्ग प्रशस्त करने के लिए लखनऊ में मोतीलाल नेहरू मार्ग पर सन् 1957 में मोती लाल बाल संग्रहालय की स्थापना की गई। इस संग्रहालय का मुख्य उद्देश्य कला के माध्यम से बच्चों का सर्वागीण विकास करना है जिसमें मानसिक और शारीरिक विकास प्रमुख है। बच्चों को जो वातावरण अपनी शिक्षण संस्थाओं में नहीं मिलता है वह वातावरण यहाँ उपलब्ध कराया जाता है।

---

1 द म्यूजियम एण्ड कल्चरल हेरिटेज ऑफ इडिया ले०- डा० एन० आर० बनर्जी पृष्ठ सं० 120-121

बच्चे हमारा भविष्य है उनकी प्रतिभा को निखारना और उजागर करना हमारा दायित्व है। यह बात ध्यान में रखकर जवाहर लाल नेहरू स्मारक निधि के द्वारा इलाहाबाद में जवाहर बाल भवन नामक संस्था स्थापित की गई है। इसमें संध्याकाल में बच्चो को सगीत नृत्य आदि के साथ चित्रकला, काष्ठ शिल्प, एव क्ले माडलिंग की शिक्षी की जाती है। प्रतिवर्ष यहॉ नेहरू जी के जन्म दिन 14 नवम्बर को जो आयोजन भव्यता के साथ किया जाता है वह है 5 से 15 वर्ष के बच्चो के लिए चित्रकला प्रतियोगिता। प्रतिवर्ष यहॉ हजारो की सख्या मे बच्चे भाग लेते हैं। हर्ष का विषय है कि यहॉ के शिक्षित कुछ बच्चे आज बनारस, लखनऊ, दिल्ली आदि के कला महाविद्यालयों मे चयनित होकर कला सिक्षा प्राप्त करने के साथ - साथ चित्रकला प्रदर्शनियॉ भी कर रहे है जिनमें राम रघुवीर मिश्रा, आनन्द जयसवाल आदि प्रमुख हैं, ये नवयुवक प्रदेश की आधुनिक समकालीन चित्रकला की कड़ी हैं।

उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला में 'समीक्षावाद' नामक धारा को यहॉ के कई कलाकारों ने ही जन्म दिया। इस वाद का ध्येय देश की आधुनिक कला में विदेशी प्रभाव को रोकना तथा कला में समाज एवं जीवन की आलोचना को प्रमुख स्थान देना था। इसका सम्बन्ध न तो प्राचीन भारतीय कला परम्परा से है और न पूर्व एवं पश्चिम की कला की वास्तविकता से। सामाजिक तथा आर्थिक संघर्ष से इस धारा का अटूट सम्बन्ध है। समीक्षावादी कला मानव के सन्निकट है। समाज के उत्पीड़न तथा आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओ की ओर यह विशेष रूप से जागरूक है। उत्तर प्रदेश के आठ चित्रकारों ने इस आन्दोलन को सर्वव्यापी बनाने के लिए वर्ष 1980 में 'जहाँगीर आर्ट गैलरी' मुम्बई में समीक्षावादी चित्रों की एक प्रदर्शनी नवम्बर माह में आयोजित की थी।

वर्ष 1977 में दिल्ली के प्रगति मैदान में लखनऊ कला महाविद्यालय के चार कलाकार-योगी, बी० एन० आर्या, एस० जी० श्री खण्डे और असद अली ने अपने भिन्न चित्रों का निर्माण किया। यह कार्य श्री आर० एस० बिष्ट के निर्देशन मे किया गया। इनके द्वारा बनाये म्यूरल्स उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जीवन एवं लोक कला पर आधारित थे। इनमें

ग्रामीण जीवन और उसकी वास्तविकता तथा सुन्दरता को लोक कला के माध्यम से प्रस्तुत किया था। इन म्यूरल्स ने भारतवर्ष के कलाकारों और कला समालोचकों को एक अवसर परदान किया कि वे प्रदेश की लोक कला का ऐसा उपयोग होते हुए देखें जिससे कि यह सिद्ध हो सके कि हमारे प्रदेश की ग्रामीण कला कितनी सम्पूर्ण है। श्री बिष्ट के निर्देशन में इन म्यूरल्स को बनाने से पूर्व चित्रकारों ने उत्तर प्रदेश के उन ग्रामीण स्थानो का भ्रमण भी किया था जहॉ की परम्परागत लोक कलाएँ प्रस्तुत की थी। इसमे मुख्य रूपसे मथुरा, कन्नौज, गढ़वाल, मिर्जापुर, वाराणसी, अयोध्या आदि के निकतवर्ती ग्रामीण जीवन तथा वहॉ के रीतिरिवाजों का अध्ययन करके ऐसे 'मोटिफ' या 'आर्टीकेट' एकत्र किये जिसके आधार पर दीवार पर म्यूरल बनाये। ये चित्र हाई रिलीफ मे बनाये गये थे, जिसमें प्लास्टर ऑफ पेरिस, शीशे आदि की कोलाज तकनीक थी। इनमे सूर्य को शक्ति के प्रतीक स्वरूप चित्रित किया था और ऐसी आकृतियों का समायोजन था जो ग्रामों में घर की दीवारों पर अंकित होते है।[1]

उत्तर प्रदेश की चित्रकला को आधुनिकता की ओर अग्रसर करने में प्रो० के० एस० कुलकर्णी की भूमिका आविस्मरणीय है। सन् 1973 से 1979 के दौरान प्रो० कुलकर्णी राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष थे। प्रो० कुलकर्णी मूलत: चित्रकार हैं लेकिन उन्होंने मूर्तिकला में भी कार्य किया है और यदा कदा सिरेमिक्स पैनल आदि का भी सृजन किया है। वे उन प्रारम्भिक कलाकरों में है जिनके नाम के साथ आधुनिक समझी जाने वाली दृश्य कला कहीं न कहीं जुडी हुई हैं और इनका उसमें प्रमुख योगदान है। सच्चाई तो यह है कि उत्तर प्रदेश राज्य ललित कला अकादमी की वे योजनाएँ जो आज क्रियान्वित की जा रही हैं या जिन्हें क्रियान्वित किये जाने का प्रयत्न किया जा रहा है उनमें से अधिकाधिक प्रो० कुलकर्णी द्वारा ही परिकल्पित की गई है। उदाहरण के तौर पर लोककला के सम्बन्ध मे जो धारणाएँ हैं उनको न केवल संकलित करने बल्कि उनके माध्यम से समकालीन कला को समृद्ध करने की प्रेरणा का आह्वान ही उन्होंने किया। उनका विचार रहा है कि हमारे भारतीय शिल्पकार या कलाकार जो लोक कलाओं में संलग्न है वे कहीं न कहीं हमारी आधुनिक कला के लिए प्रेरक शक्ति साबित हो सकते हैं। उनको इस कला की समकालीनता

---

1 कला त्रैमासिक अक 7, पृष्ठ स० 24-25

के बारे मे जो आभास था वह बहुत कम ही लोगों को हो पाता है। वे दृश्यकला का विस्तार औद्योगिक डिजाइन या कोई ऐसे कला प्रारुप जो वास्तुकला से भी सम्बन्ध रखते हो या जिन्हें उपयोगी वस्तुओं में इस्तेमाल किया जा सकता हो आदि तक मानते हैं। उनकी ऐसी दृष्टि रही है कि यदि इतने व्यापक तरीके से नही सोचा गया तो वास्तव में कला को सही रूप मे समझना मुश्किल होगा। जहाँ प्रो० कुलकर्णी दृश्यकला को स्वतंत्र रूप से अध्ययन किये जाने के हामी हैं वहीं वे सारी भारतीय परम्पराओं, शास्त्रो तथा अन्य विधाओ से उसे गहरे तरीके से अन्तर सम्बन्धित समझते है और कला को व्यापक जीवन अनुभव या परम्परा का अश मानते है। कुछ रेखाओं तथा रगों के माध्यम से वे आधुनिक जीवन की जटिलताओ की विशिष्ट अभिव्यक्ति करने मे सफल हो सके है तो दिन प्रतिदिन अपनी कला को सरलीकृत करने की प्रवृत्ति के कारण ही। भारतीय आधुनिक कला की रचनात्मक उर्जा और विधा विशेष के लोगो को प्रोत्साहन या संरक्षण का कार्य जिन ऊँचाइयो के साथ प्रो० के० एस० कुलकर्णी ने किया, वह विरले ही कलाकारों के बस की बात रही है। देश की आजादी के बाद कलाकारों के सामने भी कला के स्वतंत्र एवं प्रयोगवादी आन्दोलन की चुनौती थी, प्रश्न था प्रचलित रूढ़ियों व प्रभावों से हटकर उन नये रुपाकारो को जन्म देना, जिनसे देशज कला को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्व मिल सके। प्रो० कुलकर्णी ने पुराने का विरोध नही किया बल्कि उनके गुणों को आत्मसात करते भारतीय आकृतियों मेंसरलता व बिम्बों के सहारे अनगिनत परिष्कृत रूपों को संजोया है।[1] श्री अमृतलाल नागर के अनुसार — '' रूप का माधुर्य मन को सरलता से अपनी ओर खींच ही लेता है। कलात्मक दृष्टि से देखें तो हमे यह जरुर नजर आता है कि आकृतियो का आधुनिक रूप मनोवैज्ञानिक अनुभूति से जुडगया है। अनुभूतिपरक कला ही श्रेष्ठ और सुन्दर मानी जाती है।[2]

इसके साथ ही उत्तर प्रदेश में अरुण वादी कला के दौर मे श्री विष्ट आदि कलाकारों के आकृति विहीन चित्रों को देखकर भी नागर जी ने कहा था—'' रंगों में बिष्ट के चित्र देखता हूँ या सतीश के देखता हूँ तो रंगों के जादू में, अभिव्यक्ति में बहुत कुछ व्यक्त होता है।

---

1 कला त्रैमासिक, प्रो० के० एस० कुलकर्णी विशेषाक- पृष्ठ स० 30

2 कला त्रैमासिक अक 7 पृष्ठ स०-29

और इन दो चित्रकारों के बारे में मैं कह सकता हूँ— मुझे रूप की मिठास मिलती है। भले ही कलाकार कहें कि मैंने रूप को व्यक्त नही किया। मुझे ऐसा लगता है कि उस अभिव्यक्ति में एक व्यक्तता है जिसे हम नकार नहीं सकते।''[1]

नागर जी के उपरोक्त कथन को कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला में उस वक्त भी बुद्धिजीवी वर्ग खास कर लेखक समुदाय रूप एव अरूप मे भी चित्रकारो की मौलितका को भली प्रकार समझ ले रहा था। वह रगो की विभिन्नताओं मे तूलिका घातों में पूरी सौन्दर्य दृष्टि के साथ रसास्वादन कर पा रहा था।

आज उत्तर प्रदेश के असंख्य कलाकार विश्वस्तर तक अपनी रचनाओं को पहुँचा पा रहे हैं। परनाम सिंह (बनारस) पूर्णतया आकृति मूलक चित्र बना रहे हैं उनके चित्रो मे 'रिक्शा पुलर', 'आदिवासी कन्या' सब यथार्थवादी होते हुए भी उनकी मौलिकता है रगों का उड़ता प्रभाव और ब्रश के चौडे आघात। इसी प्रकार ए०पी० गज्जर के चित्रों मे मिथकीय आकारों एव मिथकीय पात्रों को नये तरीके से प्रस्तुत करने के साथ सामाजिक दुर्घटनाओ के भी चित्र रंगों के खेल में ही बताने की कोशिश हैं। भले कहीं-कहीं ये रग श्वेत श्याम ही हैं। उदाहरणार्थ क्रमशः 'लंका दहन' एवं 'भोपाल गैस त्रासदी' चित्रों का सन्दर्भ लिया जा सकता है।[2]

आगरा कॉलेज, आगरा के डा० अश्वनी कुमार शर्मा अपने चित्रों में 'पानी' को पकड़ने की कोशिश करते दिखाई देते है। उनके तैल रंगीय चित्रों में यह जल पृष्ठभूमि (कैनवस केऊपर) में गुरुत्वाकर्षण शक्ति से रहित होकर भी चित्रित है। ऐसे चित्रो को देखकर स्पेन के सल्वाडोर डाली के स्वप्न ओर यथार्थ के बीच झूलते आकार सहज ही स्मरण हो आते हैं। फिर भी अश्वनी के चित्र बेहद शान्त होकर विशुद्ध कल्पना की ओर से ही प्रेरित हैं।

---

1 वही

2 इलाहाबाद सग्रहालय मे वर्ष 1989 एव 1993 उपरोक्त चित्रकारो के चित्रोकी प्रदर्शनी देखकर।

इसी प्रकार अनेकों चित्रकार हैं जिनके चित्रों का विश्लेषण करने के लिए कितने ही शब्द कम हैं। कितने ही पन्ने छोटे पड़ सकते हैं

अत: सभी का सन्दर्भ देना मुश्किल है। फिर भी उत्तर प्रदेश की समकालीन एव आधुनिक चित्रकला का वर्तमान स्वरूप राज्य ललित कला अकादमी मे हाल ही मे उत्तर प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षकों और विद्यार्थीयों की सामूहिक प्रदर्शनी में लगे चित्रों के बहुत सहजता से स्पष्ट हो जाता है।

समसामयिक काल के प्रारम्भ से वर्तमान तक के कलाकारों के वैचारिक चितनो एव एनुभवो से सरचित नयी से नयी कलाकृतियॉ उत्तर प्रदेश की कला के सृतनात्मक पक्ष की गवाही देती हैं। साथ ही यहाँ की कलाकृतियों से भारतवर्ष के कला आन्दोलनों और कला के नये रूपाकारो की झलक आसानी से देखी जा सकती है।[1]

आधुनिक कलाकारों में श्री असद अली, आलोक कुमार, ए० एस० पंवार, बी० एन० आर्या, सी० के० पालीवाल, मामून नोमानी, एम० एल० नागर, एन० खन्ना, ओम झिंगरन, रवि बुटालिया, आर० सी० साथी, राजेन्द्र प्रसाद, सतीश चन्द्र, शरद पाण्डेय, उमेश कुमार सक्सेना, वाई एन० वर्मा, गोलाप दत्त शर्मा, जयकृष्ण, किरन राठौर मनोहर लाल, संदीप भाटिया, (लखनऊ) अमरुत पटेल, ए० पी० गज्जर, अविरल कुमार, डी० के० दासगुप्त, एच० एन० मिश्रा, जे० एम० आहिवासी, ओम प्रकाश शर्मा, रामचन्द्र शुक्ल, आर० एस० धीर, एस० दासगुप्त, एस० एन० लाटिडी, एस० परनाम सिंह, सुबाचन यादव, विजय सिंह, दीपक बनर्जी, कुसुमदास,, (वाराणसी) डी० पी० धुलिया, (गोरखपुर), जगदीश गुप्त, रामकुमार विश्वकर्मा, (इलाहाबाद) आर० के० भटनागर, वी० एन० खन्ना, (कानपुर) एस० अजमत शाह, सीमा कु० (अलीगढ) राम शब्द सिंह (सहारनपुर) इत्यादि कलाकारों के चित्र राज्य ललित कला अकादमी के संग्रह में देश के तमाम कलाकारों के साथ सुरक्षित हैं। श्री एन० खन्ना कहते हैं—"आधुनिकता न तो कोरा कागज है और न ही कोरा विचार, बल्कि

---

1 राज्य ललित कला अकादमी के सग्रह (कैटेलाग) की भूमिका से

विगत की खूबियों से आगे की वह तलाश है जहाँ नयी कला के लिए प्रयोगों के तेवर बदलते रहते हैं।[1]

समसामयिक कला से पूर्व जोगीमारा, सोनकाढा, मानिकपुर, होशंगाबाद आदि की पर्वत श्रेणियों में गुफाचित्रों का विशाल वैभव उत्तर प्रदेश में रहा है। यहाँ हमारे सम्पन्न रीति-रिवाजों, आचार-विचार में लोक कला का विस्तार दिखलाई पड़ता है। वाराणसी, जौनपुर, लखनऊ, आदि में मुगल व राजपूत शैली के लघु-चित्र बने हैं। कुमायूँ व गढवाल के पहाड़ी इलाकों में क्षेत्रीय शैली पनपी।

जैसा कि विदित ही है कि प्रदेश की कला में आधुनिक आयामों की ऊर्जा हेतु लखनऊ कला विद्यालय की एक बहुत बड़ी भागीदारी रही है। 1911 से लेकर 1956 तक क्रमशः नेथोलियन हर्ड, हल्दार, एल० एम० सेन, प्रो० मेढ़ एवं खास्तगीर ने इस महाविद्यालय का प्राचार्य पद सम्भालते हुए उत्तर प्रदेश मे आधुनिक चित्रकला को उत्तरोत्तर गति प्रदान की।

1964 से 1967 के मध्य एक महत्वपूर्ण परिवर्तन में कालेज ऑफ फाइन आर्ट्स, दिल्ली के प्रो० दिनकर कौशिक को प्राधानाचार्य के पद पर आसीन कराया गया। 1967-68 में वाश शैली के विशेषज्ञ प्रो० सुखबीर सिंहल ने कार्यवाहक प्रधानाचार्य के पद पर रहकर कालेज का दायित्व सम्भाला। 1968 में प्रसिद्ध चित्रकार प्रो० रणवीर सिंह बिष्ट ने विधिवत स्थायी प्राचार्य का पद सम्भाला और समसामयिकता का नये सिरे से आगाज किया। यथार्थ से नवीन यर्थाथ की ओर सृजन प्रारम्भ हुआ। चित्रकला जगत् को विशाल कैनवस दिलाने के क्षेत्र में प्रयास प्रारम्भ हुआ।

1973 में इस संस्थान के लखनऊ विश्वविद्यालय का ललित कला संकाय बन जाने से प्रदेश के विश्वविद्यालयों में बी०एफ०ए० उपाधि की पहल हुयी। श्री बिष्ट के 1989 में सेवानिवृत्ति के बाद से यहॉ पर नियमित नियुक्ति मे विराम लगा रहा है। फिर भी 1994 तक

---

1. पत्रकार सदन, पृष्ठ 49

योगेन्द्र नाथ योगी, 1996 तक बी० एन० आर्य ने प्राचार्य पद सम्भाला और इसी बीच स्नातको्तर (एम० एफ० ए०) की शुरूआत भी हुई। वरीयता क्रम मे सबसे कम समय के लिए सिरेमिक्स मूर्तिकला की पहचान वाली श्रीमती विमला विष्ट प्रधानाचार्य की कुर्सी पर बैठी।

1997 में से ग्राफिक कला प्रारम्भ हुई जिसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय मच तक पहुँचे श्री जय कृष्ण के दायित्वों की यात्रा जड़ो की गरहाईयो से आज की ऊँचाईयो तक, महाविद्यालय की पहचान के उनके सकल्प साथ है— वे पाठ्यक्रम को वर्तमान के साथ लेकर चलना चाहते हैं।

महज पदीय प्रतिष्ठा ही नहीं, अपितु चित्रकार की हैसियत से भी साठ के दशक से ही श्री खस्तगीर एवं प्रो० बिष्ट पद्मश्री से सम्मानित किये गये। बिष्ट साहब को तो राज्य एवं केन्द्रीय अकादमी का सर्वश्रेष्ठ अधिसदस्यता सम्मान भी मिला है। महाविद्यालय परिसर के ही प्रो० मदनलाल नागर-लखनऊ की तंग गलियो के आधुनिक संयोजन, श्री बद्रीनाथ आर्य के वाशनुमा तैलचित्र तथा श्री सतीश चन्द्र ने प्रकृति सौन्दर्य के गम्भीर अध्ययनमय कैनवस पर राष्ट्रीय पुरस्कार से अपनी कला संस्था को गौरवान्वित किया। श्री नित्यानन्द महापात्र जिन्होंने आकृति के आनुपातिक अध्ययन तथा पेन एण्ड इंक, माध्यम को नया दृष्टिकोण दिया, राज्य ललित कला की अधिदस्यता से विभूषित किये गये। अस्सी के दशक में तांत्रिक प्रतीको की रचना के लिए एन० ए० राय ने अपने को राष्ट्रीय स्तर कर चर्चित रखा। उमेश कुमार सक्सेना को पर्वतीय परतों के तैलचित्र हेतु राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का पुरस्कार मिला।[1] श्री शरद पाण्डेय गढवाली यर्थाथ संवेदनाओं के लिए प्रसिद्ध होते जा रहे हैं।

अत्यन्त अल्प आयु (37 वर्ष) में मृत्यु को प्राप्त श्री ओम झिंगरन बच्चो की पाठशाला, उनके तौर तरीके मनोवैज्ञानिकता तथा स्वच्छन्द विचरते पक्षियों के जो चित्र बना गये हैं वह अद्भूत हैं। दोनों हाथों से अपंग 31 वर्षीय शीला अपने पैर की उंगलियो में ब्रश

---

1 पत्रकार सदन, अक्टूबर – दिसम्बर 1998 पृष्ठ स० 51

को दबाकर जब चित्र बनातीं हैं तो उनके चित्रों के समक्ष उनकी अपंगता समाप्त हो जाती है और वह संपूर्ण सृष्टि को पूरी संपूर्णता के साथ जीती हैं इन चित्रों में ।

1920 में महान कलाविद श्री रायकृष्ण दास (1892-1980) ने वाराणसी मे भारत कला परिषद की स्थापना की जिसमें नयी एवं पुरानी सभी कलाकृतियो का संग्रह किया गया जो 1950 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अन्तर्गत 'कला-भवन' की अमानत बनाया गया। समसामयिक कला के संग्रह हेतु डा० राधाकमल मुखर्जी (1889-1964) ने करीब 500 कृतियों को एकत्र किया जिनमे से राज्य ललित कला अकादमी को जिसके वे अध्यक्ष भी थे- 271 कृतियाँ दान स्वरूप प्रदान की गई। शेष चित्र लखनऊ विश्वविद्यालय के टैगोर पुस्तकालय, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, साक्षरता निकेतन आदि स्थानों मे शोभायमान हैं। संग्रह के क्रम मे देखे तो डा० एस० सी० काला के प्रयत्नो ने इलाहाबाद संग्रहालय जिसकी स्थापना मे पं० ब्रज मोहन व्यास का महत्वपूर्ण योग है, को पुरातात्त्विक महत्व से आधुनिक सन्दर्भो तक की समृद्धता प्रदान की। परम्परावादी यर्थाथ के ऐतिहासिक चित्रकार मोलाराम के चित्रो के संग्रह व प्रचार के उद्बोधक, गढ़वाल के बैरिस्टर मुकुन्दी लाल बने। लखनऊ में प्रशासनिक अधिकारी श्री बी०डी० सानवाल ने समसामयिक कला के सग्रह व प्रदर्शन के उद्देश्य से 1950 में म्युनिस्पल आर्ट गैलरी बनायी और प्रसिद्ध चित्रकार श्री मदनलाल नागर को उसके संचालन का कार्य सौंपा गया। इस वीथिका में वाश शैली के समीउज्जमा, ईश्वर दास, तारादास सिन्हा, बी० एन० जिज्जा, बी० सी० गुई, पी० आर० राय, एल० एम० सेन, फ्रैंक वैसली इत्यादि कलाकारों के चित्र लगाये गये। दुर्भाग्य वश वर्षा के पानी ने उपर्युक्त चित्रकारों के चित्रों को क्षति पहुँचाई फिर भी प्रो० के एन० कक्कड़ आदि के प्रयासों ने धूमिल पडते इतिहास में से काफी कुछ बचा लिया, परिणामस्वरूप गैलरी में पहले जैसी सक्रियता बनी हुई है। वर्ष 1936 में उत्तर प्रदेश कलाकार संघ की स्थापना हुई जिसने हर उभरते चित्रकार को मंच प्रदान किया।

बंगाल से आधुनिक चेतना का सूत्रपात करने वालों में से प्रमुख श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार को वर्ष 1992 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा आमंत्रित किया गया और

सायंकालीन डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ हुआ, जो उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए वर्ष 1994 से दृश्य कला विभाग के रूप में स्वतंत्र होकर कार्य कर रहा है। चित्रकार, शिक्षक डा० रामकुमार विश्वकर्मा विभागाध्यक्ष के रूप में इस प्रभाग की प्रोन्नति की जिम्मेदारी बाखूबी निभा रहे हैं।

क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार मूलत: वाश शैली में अपने आराध्य चैतन्य महाप्रभु के जीवन प्रसंगों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर सम्मावित चितेरे थे तथा तैल रंगों से अभिव्यंजनावादी पद्धति से दैवीय शक्तियों के संयोजन किया करते थे। उनकी वाश शैली के स्रोत सुखवीर सिहल ने इलाहाबाद का नाम रौशन किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कला शिक्षा विस्तार के लिए प्रभाववादी चित्रकार डी०पी० धुलिया समीक्षावादी, प्रो० रामचन्द्र शुक्ल तथा रेखांकन के धनी डा० जगदीश गुप्त एवं श्री शम्भुनाथ मिश्र का योगदान अप्रतिम रहा है। नगर के सास्कृतिक वातावरण को चित्रकला मय बनाये रखने वालों में मे श्रीपत राय, प्रकाश करमाकर, सत्यसेवक मुखर्जी, बालदत्त पाण्डेय, अजय जैतली, राधेश्याम अग्रवाल आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। वाराणसी जो आज समसामयिक कला का केन्द्र है, मे वर्ष 1949 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने सायंकालीन चित्र व मूर्तिकला की शिक्षा प्रारम्भ करते हुए सर्वप्रथम रणदा उकील एवं रामचन्द्र शुक्ल को आमंत्रित किया। इन कलाकार द्वै के प्रयासो से एक वर्ष के भीतर ही इस कॉलेज ऑफ म्युजिक एण्ड फाइन आर्ट्स में परिवर्तित किया गया। वर्ष 1963 मे यहाँ स्नातक उपाधि प्रारम्भ हुई और एप्लाइड आर्ट का भी शुभारम्भ हुआ। जब श्री मुरलीधर अहिवासी ने सर जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुम्बई से यहाँ आकर शिक्षा के तकनीकी आयामों को विस्तार दिया। वर्ष 1967 में यह प्रदेश का पहला सकाय स्थापित हुआ। इसी वर्ष प्रो० के० एस० कुलकर्णी यहाँ के अध्यक्ष हुए। प्रो० कुलकर्णी सृजनात्मक, सरलीकृत रचना धार्मिता तथा मौलिकता के पक्षधर थे। इनकी अध्यक्षता में वर्ष 1973 से यहाँ एम० एफ० ए० की डिग्री प्रारम्भ हुई। और 1978 में शिक्षा के इस केन्द्र को दृश्यकला सकाय का रूप दिया गया। प्रो० कुलकर्णी के साथ ए० पी० गज्जर, डी० के० दासगुप्ता, पम्मीलाल, आर० एस० धीर आदि थे।

वर्तमान में इस संकाय की बागडोर प्रतिभावान चित्रकार विजय सिंह, प्रणाम सिह, रवीन्द्र नाथ मिश्र, मृदुला सिन्हा, हीरालाल प्रजापति आदि सम्भाले हुए हैं। कानपुर में सर जे० जे० स्कूल से आये सी० बरतरिया तथा शान्ति निरकेतन के विश्वनाथ खन्ना, स्तम्भ बने। गतिविधियों के आयोजन हेतु नन्दू खन्ना ने कठिन परिश्रम किया। यहाँ पर 1969 में 'कला वीथिका'', 1970 मे 'शिल्पी', 'तूलिका', एवं 1994 के चिकितुषी कला संस्थाओ ने कलाकारों को एक जुट किया है। यहाँ के श्री विश्वनाथ खन्ना, उ० प्र० राज्य ललित कला अकादमी की अधि सदस्यता से सम्मानित किये गये। प्रेमा मिश्रा एव रेखा निगम अकादमी की कार्यकारिणी व सामान्य सभा तथा पुष्पा गर्ग, पुष्पा खन्ना, मकबूल अंसारी, बृजेश कटिहार को सामान्य सभा का सदस्य बनाया गया। नंदू खन्ना, अकादमी के सचिव पद पर नियुक्त हुए। श्रीमती प्रेमा शिक्षा, एस. एन. सक्सेना, हृदयनाथ एवं पूर्णिमा तिवारी राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हुए है।

कानपुर के चित्रकारों में प्रदेश से बाहर अनीस फारुकी, राष्ट्रीय आधुनिक कला वीथिका के निदेशक बनाये गये। आर० के भटनागर, केन्द्रीय ललित कला अकादमी के सचिव नियुक्त किये गये। उमेश चन्द्र शर्मा, इन्दिरा गाँधी संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के कुलपति बने। आर० पी० निगम को राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। डा० अभय द्विवेदी व नरेन्द्र सिंह के चित्रो को अखिल भारतीय महात्मा गाँधी कला प्रदर्शनी से पुरस्कृत किया गया।

गोरखपुर की कलाभिरुचि, गोरखपुर विश्वविद्यालय के ललित कला विभाग से प्रारम्भ होती है। यहाँ की अभिवृद्धि हेतु, विभागाध्यक्ष डी० पी० धुलिया ने परिश्रम किया। वर्ष 1981-82 में स्नातकोत्तर कक्षायें प्रारम्भ हुई और राष्ट्रीय स्तर तक के आयोजनो की पहल हुई। वर्तमान में इस विभाग में मनोज कुमार, श्रीमती करुणा सिब्बू एवं भारतभूषण नवोदित चित्रकारों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।

अलीगढ़ में सत्तर व अस्सी के दशक से कला गतिविधियाँ तेज हुई। चित्रकार अजमत शाह, गोपाल मधुकर चतुर्वेदी, एस० पी० वर्मा, खलीक अशफ़ाक, अनुसूया सिंह शहर की परिधि से बाहर निकले हैं। वर्ष 1997-98 में विश्वविद्यालय स्तर पर यहाँ ललित कला संकाय प्रारम्भ हुआ।

आगरा के वी० पी० कम्बोज केन्द्रीय ललित कला अकादमी के सचिव पद पर नियुक्त हुए जिसने आगरा के कला जगत् को पहचान दी। डा० अश्विनी शर्मा को राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी का पुरस्कार मिला। मगन सिंह आर्य पोट्रेट के क्षेत्र में सुरेश सेठी कैनवस पर जलरंगो से 'ताज महल' को अकित करने में, डा० चित्रलेखा सिंह 'चित्रांगन' (पुस्तकालय) के माध्यम से शोधार्थियो को लाभान्वित करने के साथ 'शिव' के अनेक रूपों को कैनवस पर उतारने में व्यस्त हैं। रेखा कक्कड़, शिवेन्द्र सिंह आदि भी प्रकृति दृश्यो के नये प्रयोगो मे प्रयत्नशील है।

उत्तर प्रदेश व दिल्ली के अत्यन्त समीप नोयडा मे एस० बी० सेठ जो 'सुमानव' के नाम से रचना करते हैं अपने मानवता वादी चित्रों के लिए ख्यात हैं। यहॉ चित्रकला के लिए सेना के कर्नल पद को छोड़ने वाले शरी जीतेन हजारिका, बडे आकार के वाश चित्रों के लिए ख्यात शेरसिंह कुक्कल, रूप नारायण वाथम एवं संतोष काफी सक्रिय हैं।

दिल्ली तो वह स्थल हैं जहॉ, उत्तर प्रदेश के अनेकों चित्रकारो देश के आधुनिक कला आंदोलन से स्वयं को जोड़े हुए हैं। प्रो० विश्वनाथ मुखर्जी कॉलेज आफ फाइन आर्ट्स के प्राचार्य बने। उमेश बहुखण्डी शारदा उकील आर्ट्स कॉलेज में प्रधानाचार्य रह चुके हैं। वर्तमान में उत्तर प्रदेश के हरिहर शर्मा पदभार लिए हुए है। हरीश श्रीवास्तव, डी० बी० सेठ, आर० पी० निगम, आर० पी० डबराल आदि तो राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित चित्रकार हैं। मामून नोमानी व राजीव लोचन, जाममिया मिल्लिया विश्वविद्यालय के अध्यापक है। मामून प्रदेश की अनेक कला संस्थाओं से आज भी जुड़े है। जनवादी प्रो० यशोधर मठपाल ने भीमताल में बिना सरकारी सहारे के लोक संग्रह केन्द्र बनाया हैं एवं वर्ष 1977 में आधुनिक कला के स्थान के लिए वीथिका उद्घाटित कराके, पथरीले रास्तों पर जन प्रतिनिधियों में कला की आवाज दी। देहरादून के रणवीर सक्सेना ने कला शिक्षा व सवादों को यथा सम्भव प्रोत्साहित किया। देहरादून के ही हृदय नारायण मिश्र प्राचीन लोक प्रतीकों को बौद्धिक विचार के साथ आज की कला आयामो का अंग बनाकर चल रहे हैं।

पंत नगर विश्वविद्यालय के मो० सलीम प्राकृतिक सौन्दर्य बोध को अब जल रगों के स्थान पर अक्रेलिक रंग में अंग्रेजी लिपि में संजो रहे हैं।

शिमला में लखनऊ के सनत चटर्जी के उत्तर प्रदेश के प्रतिनिधित्व को, वहॉ पर कला की नयी विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाकर, गौरवान्वित किया है। इन्होने शक्ति के प्रतीक धर्म, मनोविज्ञान एवं विज्ञान के आधार पर 100' × 11' का सिल्क स्क्रोल निर्मित कर प्रसिद्धि पाई है।

लखनऊ कला महाविद्यालय के स्थापित श्याम शर्मा (पटना) श्री बलदेव गम्भीर (अमृतसर) सुरेन्द्र जोशी व राम औतार जायसवाल (जयपुर) इलाहाबाद के अशोक भौमिक (कलकत्ता) आदि ने प्रदेश से बाहर एक मजबूत स्थिति बना रखी है। इनके अतिरिक्त शांतिनिकेतन में संपत कुमार डेविड और शिमला कला महाविद्यालय के पहले प्रधानाचार्य हरीश राय उत्तर प्रदेश के ही है।

मुम्बई की फिल्मी दुनियां मे लखनऊ के 'ललित नाग ने कला निर्देशक एवं भीम सेन ने फिल्मो और कार्टून फिल्मों के निर्माण के लिए कलात्मक सोच विकसित की। मशहूर फिल्म 'उमराव जान' के निर्देशक श्री मुजफ्फर अली का रचनात्मक सफर प्रदर्शनियों मे भाग लेने तथा उत्तर प्रदेश राज्य ललित अकादमी के पुरस्कार से शुरू होता है।

इस प्रकार बीसवी सदी के आरम्भ से ही समसामयिकता के आधार हेतु नवीन आचार की परिकल्पना प्रतिपादित की गयी। अब तक करीब 25 चित्रकारों का राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जाना, कलाकारों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में बुलावा, विदेशी अध्ययन वृत्ति एवं छात्र वृत्ति के अवसर आदि उत्तर प्रदेश की आधुनिक एवं समकालीन आधुनिक एव समकालीन कला स्वरूप की समृद्धता के प्रतीक हैं।

अध्याय-6

भारत की आधुनिक व समकालीन चित्र कला में उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के चित्रकारों का योगदान

भारत की आधुनिक व समकालीन चित्रकला मे उत्तर प्रदेश के चित्रकारो का योगदान प्रचुर मात्रा में है किन्तु बंगाल शैली से आधुनिकता की ओर अग्रसर जिन चित्रकारो ने अपना स्थान बनाया उनमें मदन लाल नागर, रनवीर सिह विष्ट, विनोद बिहारी मुखर्जी, सुधीर रंजन खास्तगीर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन कलाकारों ने न सिर्फ उत्तर प्रदेश बल्कि सम्पूर्ण भारत मे अपने कार्यो से एक सशक्त पहचान बनाते हुए देश के आधुनिक कलाजगत को समृद्ध किया।

उपर्युक्त चित्रकारों के योगदान की बात करने से पूर्व भारत के आधुनिक कला जगत पर एक दृष्टि डालना आवश्यक है।

श्री रवीन्द्र नाथ टैगोर ने 1926 में ढाका (बांग्लादेश) मे एक भाषण मे कहा था— ''जब पेशेवर कला समीक्षक नहीं थे और भारतीय कलाकारों को बार-बार बताकर थका नहीं दिया जाता था कि वे भारतीय हैं तो बाहर से प्रेरणा लेने के बावजूद वे सहज रुप से भारतीय नजर आते थे।''[1]

समकालीन भारतीय कला को समझने के लिए टैगोर के उपर्युक्त कथन पर लम्बी बातचीत की जा सकती है। आधुनिक भारतीय चित्रकला का इतिहास लगभग 70 वर्ष पुराना है आज इस बात को आसानी से स्वीकार लिया जाता है कि रवीन्द्र नाथ ठाकुर एवं अमृता शेरगिल से आधुनिक भारतीय चित्रकला की शुरूआत हुई। तीस के दशक में इन दोनों प्रतिभाओं ने जो चित्र बनाये वे अब एक महत्त्वपूर्ण पहल के रूप में देखे जाते है। रवीन्द्र नाथ टैगोर एवं अमृता शेरगिल ने अपने चित्रों मे समकालीन जीवन की चुनौतियों को

---

1 कला चित्रकला, ले० - विनोद भारद्वाज, पृष्ठ स०-13

स्वीकार किया साथ ही पाश्चात्य कला शैली को पूरी तरह त्याग देने को भी एक अर्थहीन कार्यवाही माना।

साठ सत्तर वर्षो के बाद आज समकालीन भारतीय चित्रकला एक मजबूत जमीन पर खड़ी है। इस समय भारत में जो कला के क्षेत्र में काम हो रहा है वह न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का है बल्कि अनेक पश्चिमी देशों के मुकाबले मे अधिक अर्थपूर्ण है। समकालीन भारतीय कलाकारों की इस बेहतर रचनात्मक स्थिति के पीछे एक आधार है।

भारत उन देशो में है जहाँ अनेक परम्परायें सक्रिय हैं। एक ही समय में भारत मे एक समय से दूसरे समय तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। यहाँ विज्ञान और तकनीक से परिचित एवं उस पर आश्रित समाज भी मौजूद है और मध्यकालीन जीवन मूल्यो को अपनाने वाले लोगों को भी खोजना आसान है।

आज भारतीय आधुनिक कला के लिए पश्चिमी आधुनिकता के वर्गीकरण व्यर्थ साबित हो रहे हैं। ज्यों ही भारतीय कलाकार पश्चिमी आधुनिकता खास कर अमूर्तन के आतक से मुक्त हुआ और उसने अपनी परंपरा से एक रचनात्मक रिश्ता कायम किया तो प्रत्यक्षीकरण के सारे द्वारा खुल गये। आज उसके पास चुनने और रचनात्मक संघर्ष के लिए अपनी कई परंपरायें हैं, अपनी संस्कृति है।

संस्कृति का एक सामाजिक और सामूहिक अर्थ भी होता है जो काल और स्थान के विचारों से निरुपित होता है। कालीघाट के चित्र बांकुड़ा की संस्कृति भी हैं और परम्परा भी जिनसे प्रेरणा लेकर यामिनी राय ने अपनी कला को नया आयाम दिया। इसका अर्थ यह है कि सस्कृति स्थान के विचार से अलग कोई सैद्धान्तिक अवधारणा नहीं है न ही वह काल के विचार से अलग कोई गतिहीन अवधारणा है।

''भारतीय परम्परा संस्कृति को केवल वैयक्तिक जीवन के ही सन्दर्भ में नहीं जानती थी, बल्कि खास समयों और स्थानों के समूहों, समुदायों और समाजों के जीवन के सन्दर्भो में भी जानती हैं।''[1]

---

1 भारतीय कला का अध्ययन, ले०- नीहार रजन राय, पृष्ठ स०- 172

बंगाल शैली के कतिपय कलाकारों ने अपने अतीत से तादात्म्य रखते हुए कला के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए नये धरातल पर काम किया। ''कलात्मक दृष्टि से देखे तो हमें यह जरुर नजर आता है कि आकृतियों का आधुनिक रूप मनौवैज्ञानिक अनुभूति से जुड गया है और अनुभूति परक कला ही श्रेष्ठ और सुन्दर मानी जाती है तथा उसके रूप का माधुर्य मन को सरलता से अपनी ओर खींच ही लेता है।[1]

एक समय था जब बनारस में रहने वाला चित्रकार न्यूयार्क के चित्रकार की हास्यास्पद नकल करने के लिए मजबूर था। किन्तु आज स्थिति भिन्न है। रामकुमार एव वी एस गायतोंडे का अमूर्तन उनकी अपनी शर्तो पर है। रामकुमार के अमूर्त चित्र बनारस के घाटो के गहरे अध्ययन से विशुद्ध भारतीय संदर्भ लेकर चला है।

इसी तरह 'काली घाट' चित्रो की परम्परा की बात करें तो यह शब्द 'काली घाट' कलकत्ते के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल काली मन्दिर में से उत्पन्न माना जाता है। जहॉ पटुआ चित्रकार इन चित्रों का निर्माण कर रहे थे।[2] इस शैली का प्रारम्भ बंगाली पट चित्रों से ही माना जाता है। इन चित्रों का चमकीला रंग, सायास सरलीकरण और शक्तिशाली लयात्मकता मुख्यत: पहचानी जाती है।[3] आधुनिक कला की बात करते हुए परम्परागत काली घाट चित्रो का संदर्भ अटपटा लग सकता है किन्तु यही से लोक कला से आधुनिक रूपाकारो की खोज का सिलसिला सर्वप्रथम यामिनी राय ने ही शुरू किया।

परम्परा अतीत की ऐसी जागरूकता है जो नये विचारों व आकारों के साथ साथ वर्तमान और भविष्य की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाती है। पाश्चात्य कला जगत में भी जब-जब कला आकारों में परिवर्तन हुआ तब-तब उसका मूल आधार पूर्ववर्ती सांस्कृतिक परम्परायें और दार्शनिक विचार रहें हैं। इस परिवर्तन की आवश्यकता को सुप्रसिद्ध कला

---

1 कला त्रैमासिक, अक 7, रा०ल०क० अकादमी, ले०- अमृत लाल नागर, पृष्ठ - 29

2 क्रेजी अबाउट काली घाट, ले० अशुल अविजित, पृष्ठ-3। हिन्दुस्तान टाइम्स 12-06-1999

3 कालीघाट ड्राइग, ले० डब्ल्यू जी० आर्चर पृष्ठ - 6

इतिहासकार हेनरिख वोल्फालिन ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स ऑफ आर्ट हिस्ट्री' मे बहुत ही आकर्षक रूप में दर्शाया है। पश्चिम के कलाकारों ने अपनी जमीन, अपनी जडो को सही अर्थो में पहचाना था यही कारण है कि पश्चिम की आधुनिक कला सदैव नयी दिशाओं और शक्तिशाली आकारों में विभिन्न वादों के रास्ते से होते हुए अपने गन्तव्य की ओर निरंतर बढ गई है।[1]

प्रारम्भ में भारतीय कलाकारो के लिए आधुनिकता एक समस्या ही रही उन्होने अपनी जडो में झांकने के बजाय पश्चिम के वादो की ओर निहारा और कला को पश्चिम की तर्ज पर दिशा देने की चेष्टा की। गगनेन्द्र नाथ टैगोर इसके अपवाद नही है। किन्तु यामिनी राय, जार्ज कीट, शैलोज मुखर्जी ने अपने व्यक्तिगत प्रयासों से आधुनिकता के प्रारम्भिक दौर में भारतीय कला को अविस्मरणीय योगदान दिया। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के प्रो० रामचन्द्र शुक्ल ने बनारस की लोककला के रुपकारों को सरल करके काशी शैली नाम देकर, आधुनिक चित्रकला को नवीन दिशा देने का प्रयास किया, जो आगे चलकर तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों को नजर अंदाज न कर सकी और उनके चित्र उन बुराइयो पर कुठाराघात करने वाले समीक्षावादी चित्रो की श्रेणी में आ गये।

''कला के क्षेत्र मे ऐसी मान्यता है कि कला कितनी ही पहले की हो वह पुरानी नही पड़ती। उसका सौन्दर्य तत्व या कला तत्व अथवा उसकी अभिव्यजना शक्ति आज भी हमे उसी तरह प्रभावित कर सकती है। हम चाहे तो उसकी शक्ति के रहस्य को पहचानकर उनको अपनी कला में भी स्थान दे सकते हैं।[2] ऐसा प्रयत्न कुछ कलाकारों ने किया भी है। इस प्रकार कला के विकास में हम परम्परा से भी प्रेरणा लेते रहे हैं।

आधुनिक भारतीय कला में परम्परागत आकारों के सरलीकरण को देखते हुए पिकासो का यह कथन भी ठीक है कि ''हम जो देखते हैं उसे चित्रित करने के बजाय हम जो जानते हैं उसे चित्रित करना चाहते है।''[3]

---

1 आधुनिक कला, कोश, ले०- विनोद भारद्वाज, पृष्ट स०- 387

2 आधुनिक कला समीक्षावाद, ले०- प्रो० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-15

3 पिकासो, ऐन अमेरिकन ट्रिब्यूट, एडीटर- जॉन रिचर्डसन पृष्ठ- 37

अवनीन्द्र नाथ टैगोर ने भी रुप और चरित्र की बात करते हुए कहा है कि ''एक पूर्ण आकृति जिसमें कोई गलती न हो वह संसार की दुर्लभतम् चीजों मे एक होगी इसी लिए कोई भी आकृति सभी के लिए आदर्श नहीं हो सकती।[1]

एक समय ऐसा भी आया जब सुधीर पटवर्धन जैसे कलाकार ये कहने से नही हिचकिचाये कि ''मुझे आरा से ही प्रेरणा मिलती है जर्मनी में जन्में आभिव्यंजना वाद से नही'' और पुष्पमाला के अनुसार-''हमें अब कही से कुछ लेने की ज़रूरत नही है। ये मुद्दे अब अप्रासंगिक हो गये हैं। भारतीय कला, फिल्म, नृत्य, नाटक, यह पूरा रचना संसार एक दूसरे से गुंथा हुआ है। अब यही हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत हैं।[2]

ऐतिहासिक रूप मे देखें तो बंगाल स्कूल का सबसे महत्वपूर्ण योगदान विभिन्न कलाओ की आवाजाही मे निहित था। जिस प्रकार उपर्युक्त, रवीन्द्रनाथ, यामिनी राय, अमृता शेरगिल ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा के बल पर दूसरी परम्परा बनाई उसी प्रकार उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के निम्नलिखित चित्रकारों ने भी अपने-कौशल से न सिर्फ उत्तर प्रदेश बाल्कि भारत की समकालीन आधुनिक कला को विशिष्ट योगदान से नवाजा।

विशुद्ध भारतीय सन्दर्भो को लेकर चलने वाले माहौल में मदन लाल नागर के सिटीस्केप जैसे चित्रों का अतियथार्थ वाद स्पेन के सल्वाडोर डाली से एकदम भिन्न है। वे लखनऊ की चक्कर दार गलियो में जन्मे थे, इसलिए वे उन्ही गलियो का सन्दर्भ लेकर जब चित्र निर्माण करते है तो उसे अनदेखा नही किया जा सकता।

विनोद बिहारी मुखर्जी का 'वृक्षप्रेमी' नामक, चित्र जो दिल्ली की माडर्न आर्ट गैलरी में शोभायनाम है उसमें साफ दिखता है कि कलाकार ने अपने भीतर की अकुलाहट को फलक पर उतारा है। यहाँ जर्मन अभिव्यंजना वादी एडवर्ड मुंख के चित्रों से विनोदबिहारी के चित्रों की तुलना करना समीचीन नहीं है विनोद बिहारी की अभिव्यक्ति मुंख की अभिव्यक्ति से कोई साम्य नहीं रखती।

---

1 सम नोट्स ऑन इन्डियन आर्टिस्टिक अनाटामी, पृष्ठ स०- 6

2 आधुनिक कला कोश, ले०- विनोद भारद्वाज, पृष्ठ स०- 1

इसी तरह बद्रीनाथ आर्या 'साँवरी' की साँझ को परे रखकर जब कारीडोर्स जैसे चित्रों की रचना करते हैं तब वे उत्तर प्रदेश की परिधि को अखिल भारतीयता का विस्तार दे देते हैं।

असीत कुमार हल्दार जगई-मधई या कृष्ण राधा का चित्र बनाते वक्त विषयो को छोडकर पूरी तरह आधुनिक हैं।

क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार गीत गोविन्द का सन्दर्भ तो लेते है किन्तु ऐसे में उनके चित्रों की आध्यात्मिकता के पीछे छिपी आधुनिकता को साफ देखा जा सकता है। जब लम्बी गर्दन वाली आकृतियाँ यथार्थ से अलग हटकर अपने आप को आध्यात्मिक जगत का बताने के लिए मुखर होती प्रतीत होती हैं।

रनवीर सिंह विष्ट के कैनवस धरती और आकाश के मिलन को साकार करते है जैसे पहाड़ो के बीच कोई अपने को एकाग्र करके चिन्तन में डूब गया हो। फिर भी इनके चित्रो को उत्तर प्रभाववादी चित्रकार सेजां के करीबी मानने वालों को यह नहीं भूलना चाहिए कि विष्ट के सैरा चित्रों का उद्‌गम जिसमें धरती आसमान मिल रहे हैं अनायास ही नही है बल्कि इनके पीछे उनका लैंस डाउन में बीता बचपन है।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के चित्रकारों ने बंगाल शैली की रूमानियत को अलग हटाकर अपने समाज के लिए जो कुछ गढ़ा वह पूर्णतया नया था और खोज के परिपाक से जन्मा था जिस प्रकार अन्य आधुनिक भारतीय चित्रकारों की गणना होती है उत्तर प्रदेश के कलाकार भी अपने कृत्यो के लिए भारतीय आधुनिक कला जगत में श्रद्धा से गिने जाते हैं।

इन कलाकारों ने पाश्चात्य कला की भाँति अपने रुपाकारों को बिना जरूरत तोड़ा मरोड़ा नहीं। प्रकृति के साथ कठोर मनमानी न करते हुए भी अपने चित्रों को मौलिकता से सजाये रखा है। साथ भी देश-विदेश में घूमकर अपने चित्रों के प्रदर्शन से भारतीय आधुनिक चित्रकला का समय-समय पर सशक्त प्रतिनिधित्व कर रहे है।

उत्तर प्रदेश के चित्रकारों के विषय मे श्री नीहार रजन राय का निम्नलिखित कथन अप्रत्यक्ष रूप से बहुत सटीक हैं—"मैंने अतीत से जो कुछ विरासत में पाया वह मेरा 'कुल है, और मैंने अपने समाज के एक अंग के रूप में स्वयं अपने लिए और अपने समाज के लिए जो गढ़ा वह मेरा 'शील' है। किन्तु मेरे पुत्र और पुत्री के लिए अर्थात् अगली पीढ़ी के लिए मेरा 'शील' उनका कुल अर्थात् उनकी विरासत हो जाती है और यदि वे (पुत्र-पुत्री) अपनी ओर से संस्कृति की धारा को अविराम गति से नित नवीन शक्ति और विस्तार के साथ बहते रहने देना चाहते हैं, तो उन्हें अपने समय और स्थान की समस्याओं और चुनौतियो के जवाब मे अपना शील गढना होता है। इस प्रकार कुल-शील की मिली जुली अवधारणा परंपरा और परिवर्तन की अवधारणा का औचित्य सिद्ध करती है और दोनों को बीच के द्विभाजन (अतर) का समाधान करती है।[1]

बंगाल शैली मे भी परम्परागत ढंग से गुरुशिष्य का सम्बन्ध रहा है। किन्तु अपनी पहचान की तलाश और नये को रचने की बेचैनी ने चित्रकारों को अलग शख्सियत प्रदान की। यह देश के आधुनिक कला जगत के लिए गर्व की बात है।

पिछले दिनों वर्ष 1999 में राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय ने राज्य ललित कला अकादमी उत्तर प्रदेश के सहयोग से लखनऊ, मे अपने सग्रह से 24 चित्रकारों के 45 चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित की। इस प्रदर्शनी में सतीश गुजराल, अम्बादास, प्रभाकर बर्वे, विकास भट्टाचार्य, शक्ति वर्मन, जोगेन चौधरी मकबूल फिदा हुसैन, कृष्ण खन्ना, गनेश पाइन, रामकुमार, जगदीश स्वामीनाथन, के० जी० सुब्रमण्यम, सूजा, अजली, इलामेनन, मनु, पारेख के साथ उत्तर प्रदेश के ए० के० हल्दार, एम० एल० नागर, आर० एस० बिष्ट, बी० एन० आर्य, जयकृष्ण, बी०पी० कम्बोज और मुजफ्फर अली के चित्र लगाये गये। उत्तर प्रदेश के प्रथम चार कलाकार बंगाल स्कूल के मूर्धन्य रहे हैं।

अतः भारत की आधुनिक समकालीन चित्रकला में इन चित्रकारों का योगदान आज भी यथावत् स्वीकारा जा रहा है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उपरोक्त प्रदर्शनी है। श्री घनश्याम

---

1 भारतीय कला का अध्ययन, पृष्ठ स० 174

रंजन ने मदन लाल नागर के चित्रों को देखकर कहा है— इनके चित्रों में समय बॅधा है। लखनऊ नगर की गलियो का समय रूप में बंधा है। उन्होंने इनके चित्रो को गलियो का पोट्रेट कहा है। 'सिटी इंटीरियर' नामक चित्र में फाटक के भीतर से जाती हुई सीढ़ियाॅ अंतहीन रास्तो तक पहुँचती हुई भूल-भुलइया हो जाती है। वहाॅ कोई जीवन नहीं है, सन्नाटा है।

हल्दार का 'ए सेड ट्यून' तैल रंग का चित्र है तथा इसका चित्र 'ऑन द लुक आउट' भी तैल माध्यम में निर्मित है। इन चित्रो को अजन्ता शैली के आधार पर बनाया गया है।

रूपवादी कला से हटकर रियलिस्टिक कला का चित्रण बी०पी० कम्बोज के चित्र '31 वॉ' मे देखने को मिलता है। यह चित्र श्रीमती इदिरा गांधी की हत्या के बाद का है।

'मुजफ्फर अली' का कोलाज चित्र पेटिंग शीर्षक से प्रदर्शित किया गया है। इसमे बाँसी कागज को चित्रफलक पर रंगकर चिपकाया गया था।

बी० एन० आर्या ने लखनऊ की वाश शैली की कृतियों के मानव आकारों को तोड़कर यहाॅ के पुराने भवनों के मेहराबों को अपनी चित्र रचना का आधार बनाया।

आर० एस० बिष्ट ने 'नीला फलक', श्रृंखला की शुरूआत में 'हिमालयन' 'माउटेन 2'' चित्र बनाये जो इनका बहुत बोल्ड काम है। भारतीय आधुनिक कला में तल्लीनता है त्रासदी नहीं। नये की खोज में सशक्त नेतृत्व है, सामाजिक, व्यवस्था के अर्न्तसम्बन्ध हैं। भारतीय कला के हर क़दम पर तर्कपूर्ण विचार व सर्जनात्मक दृष्टिकोण है। यह सच है कि भारतीय समसामयिकता, राष्ट्रीय अस्मिता से ही जुड़कर शुरू हुई थी लेकिन भारतीय चित्रकार ने स्वदेशी का अर्थ किसी भी चरण में बंधी शैली से नही माना और न ही पुरानी मान्यताओं के अनुरूप बल्कि नये के प्रति प्रतिबद्धता उसका संकल्प था और आज भी मौलिक सम्प्रेषण की तलाश से आगे बढ़ रहा है।

दुनिया के नक्शे पर कला की आधुनिकता ने कितनी ही करवटे क्यों न ली हों परन्तु भारतीय कलाकार अपनी देशज स्थितियों के साथ प्रयोग की सार्थकता के प्रयास करता रहा।

हमारी गति भले ही धीमी रही हो परन्तु क्रमागत विकास के कारण योरोप जैसी तीखी प्रक्रियाओं का सामना नही करना पडा।[1]

अतः इसमें बहस की कोई गुंजाइश नही है कि जिन कुछ चित्रकारों ने राष्ट्रीय आधुनिक कला के जड़-बीज बोये, उनमें उत्तर प्रदेश के कलाकारों का योग बहुत ही प्रभावी एवं महत्वपूर्ण रहा है। आचार्य अवनीन्द्र बाबू की शाखा के असीत कुमार हल्दार ने प्रचलित जापानी प्रभावों से बचते हुए भारतीय रंग व रूपों के महत्व को शिक्षा व लेखन के माध्यम से प्रचारित किया। जल रंगों में प्रकृति के लघु चित्रों के लिए लखनऊ के वीरेश्वर सेन अपनी शैली के इकलौते चित्रकार थे। इलाहाबाद के क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार ने अवनी बाबू की वाश शैली को और भी परिष्कृत रूप दिया, साथ ही घनवादी प्रकृति के तैल चित्रो से माध्यम को विस्तार दिया। लखनऊ में स्थित ललित मोहन सेन के पेस्टल रंग में सरल व सजीव मुखाकृति चित्रण, मौलिक हस्ताक्षरों के नवीन आयाम साबित हुए। यही नही, उन्होने लिनोकट व उडकट के लिए, जो दिशा बोध कराया, उसे आधुनिक ग्राफिक तकनीक का प्रारम्भिक सूत्र माना जाता है। इलाहाबाद के शैलेन्द्र नाथ डे तथा लखनऊ के हकीम मो० खां की रचनायें भी अनदेखी नहीं की जा सकतीं। विनोद बिहारी मुखर्जी भित्ति चित्र परम्परा के नये सदेश थे।[2]

अतः यह तो निर्विवाद है कि बंगाल शैली आधुनिक कला का पहला स्रोत थी।

---

1 पत्रकार सदन — पृष्ठ स० 46

2 पत्रकार सदन, लेखक- एन० खन्ना, पृष्ठ सं० - 36-37

समय समय पर चयनित होकर प्रदेश का गौरव बढ़ाया है। मंजीत बावा के अनुसार-'' विश्व चित्रकला मे भारत का स्थान बहुत ही ऊपर है।'' वह ये भी कहते हैं कि हालांकि '' कला को परखने की जो मानसिकता है, उसमें भारतीय कला पूरी तरह फिट नहीं बैठती। इस वजह से जल्दी कोई भारतीय कलाकार उस घोषित सूची में शामिल नहीं होता। लेकिन इसका ये मतलब नहीं कि भारतीय कलाकार उस श्रेणी के नहीं होते। भारतीय चित्रकला मे कई नये आयाम जुड़े हैं, और वे ऐसे आयाम है जो कला को बेहतरीन कला की ऊँचाइयो तक ले जाते है।''[1] लखनऊ के आर0सी0 साथी ने भारतीय कला पक्ष के लिए अपने को अमेरिका तक स्थापित किया।[2]

आमतौर पर वाश शैली को पुराने यथार्थ संयोजनो से जोडकर, विवेचना समाप्त सी की जाने लगी है, लेकिन लखनऊ के श्री बद्री नाथ आर्य, बहुआयामी प्रभावों तक की अभिव्यक्तियों से, शैली की प्राण प्रतिष्ठा के लिए अपने को संकल्पित बनाये हुए हैं। बी0 पी0 कम्बोज, अखिलेश निगम आदि के चित्र भारतीय प्रतिनिधित्व के लिए विदेशों में प्रदर्शित किये गये। प्रो0 आर0 एस0 धीर ने कम्प्यूटर से चित्र बनाकर प्रदेश की अगुआई की।

भारतीय समसामयिक कला इतिहास में सम्भवत: लखनऊ के 'सनत कुमार चटर्जी' का पहला वह नाम है, जिसे 1998 के गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में सम्मिलित किया गया। श्री चटर्जी द्वारा 100' × 11' के सिल्क स्क्रोल पर निर्मित, भारतीय आध्यात्म, दर्शन व अणु विज्ञान पर आधारित चित्र श्रृंखला को अपने किस्म की पहली अभिव्यक्ति माना जाना प्रदेश एवं देश के लिए सम्मान की बात है।[3]

इसी प्रकार महोदेवी वर्मा जितनी ऊँचाई की छायावादी कवित्री थीं उतनी ही रेखाओं में संवेदना की पक्षधर। पं0 बिरजू महाराज 'कथक नृत्य' कार्यशालाओं में कभी-कभी चित्र

---

1 पत्रकार सदन, अक्टूबर - दिसम्बर 1998, पृष्ठ स0 - 60

2 पत्रकार सदन, अक्टूर - दिसम्बर 1998, पृष्ठ स0 - 51

3 पत्रकार सदन, अक्टूबर-दिसम्बबर 1998, पृष्ठ स0 44

बनाते दिखाई पड़ते हैं । पूर्व प्रधान मंत्री श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह अक्सर राजनीति से राहत के लिए कविता लिखते है और कभी कभी चित्रों की भाषा मे अपने उद्‌गार अभिव्यक्त करते हैं।

इतना ही नहीं अनेकों विदेशी चित्रकार भारत की धरती से ही महान हुए हैं। रूस के चित्रकार श्री निकोलस रोरिक एवं उनके पुत्र श्वेतोस्लाव ने हिमालय के कुल्लू व मनाली के बीच नग्गर वैली में अपना स्थायी स्टूडियों बनाकर नैसर्गिक सौन्दर्य का जो चित्राकन किया उसी को विश्वकला इतिहास में उनकी अद्‌भुत रचनायें माना जाता है।[1]

भारतीय कला आचार्यो ने कभी इस बात से सरोकार नही रखा कि विश्व के नवीन कला परिदृश्य के कितने निकट या दूर है, और न ही कभी फैशन या स्पर्श के लिए एकदम सब कुछ त्याग कर छलांग लगाने मे विश्वास किया। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि भारतीयों ने देश प्रदेश की सीमा से बाहर अपनी पहचान नहीं बनाई बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य तक उन्होने जनवादी दृष्टिकोणो से अपने हस्ताक्षर स्थापित किये।[2]

बंगाल शैली के सन्त चित्रकार श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार जिस वक्त शान्ति निकेतन में अध्ययनरत थे उस समय के कुछ प्रसंगों को भी मजुमदार की वाणी मे जानने से स्पष्ट हो जायेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में उनके चित्रों का कितना व्यापक प्रभाव था - 'ठाकुर महाशय की कक्षा में जाकर मैंने पहला चित्रांकन किया था - 'शिशु ध्रुव की तपस्या' और इसके बाद दूसरा चित्र बनाया था 'श्री राधा का अभिसार'। ये चित्र मैने 1909-1910 में बनाया था और इनके अंकन के तुरंत बाद एक विलायती साहब उसे 80 रूपये में खरीद कर ले गये। 'राधा का अभिसार' चित्र भी विलायत के राएल कॉलेज आफ आर्टस लंदन के प्रधान अध्यक्ष श्री रोथेन्स्टीन 100 रूपये में खरीद कर ले गये जब वह भारत घूमने आये थे यही कोई 1909-1910 में । बंगाल के तत्कालीन गवर्नर श्री 'रोनाल्डशे' जब तब 'इण्डियन

---

1 पत्रकार सदन, अक्टूबर-दिसम्बर 1998, पृष्ठ स0 46

2 वही ।

सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट', जहां मैं शिक्षक था, भ्रमण के लिए आते रहते थे और मेरे चैतन्य विषयक चित्रो को निहारते थे और प्रति वर्ष 5-6 चित्र खरीद लेते थे। अपने गवर्नर काल में तो उन्होंने 26-27 चित्र खरीदे थे।'[1] इतना ही नहीं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डा0 अमर नाथ झा जब इंग्लैण्ड गये तो वहां उन्होने बंगाल के भूतपूर्व गवर्नर सर रोनाल्डशे संग्रह मे क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार के चित्रो को देखा और भारत आने पर क्षितीन्द्र बाबू को इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे चित्रकला की शिक्षा का सूत्रपात करने के लिए आमत्रित किया। 1 सितम्बर 1942 को श्री मजुमदार इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए ।

आशिक अपवाद के लिए आधुनिकता की पोषक 'अमृता शेरगिल' (1913-1941) की कला शिक्षा पेरिस में होने के कारण उन पर शैलीगत विदेशी प्रभावो की बात की गई किन्तु अल्प अन्तराल के बाद ही उनकी कला पंजाब, राजस्थान व पहाड़ी जनजीवन के साथ भारत से जुड़ गई।[2] बल्कि उत्तर प्रदेश के सरैया (गोरखपुर) के वातावरण ने उन्हे जो प्रेरणा दी वह अन्ततः उनके व्यक्तित्व का एक हिस्सा बनीं और अमृता शेरगिलकी अन्तर्राष्ट्रीय उपलब्धि से हर कोई परिचित है ही।

'इसी तरह श्रीलंका मूल के चित्रकार जार्ज कीट भारत के रीति रिवाजों, उत्सवो, जन जीवन आदि से इतना प्रभावित हुए कि उन्हीं को आधुनिकता के लिए ठोस आकर्षक रंगों व मोटी रेखाओं से पेन्ट करके अपने देश को गौरवान्वित किया साथ ही वहाँ की संकुचित विचार धारा को विस्तार दिया।'[3]

इसी प्रकार डा0 जगदीश गुप्त के चित्र अनेक देशी संग्रहों के साथ स्टेला क्रैमरिश जैसी विदेशी कला पारखियों के यहाँ संग्रहीत हैं। इन्होंने नेपाल और अण्डमान आदि जगहों

---

1 चित्रे गीत गोविन्द, श्री क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, (लेखक की निजी बातों से)

2 पत्रकार सदन, अक्टूबर-दिसम्बर 1998, पृष्ठ स0 35

3 पत्रकार सदन, अक्टूबर-दिसम्बर 1998, पृष्ठ स0 46

पर भी अपने चित्रो का प्रदर्शन किया। एक जर्मन प्रोफेसर माइकेल जूनियस ने 1962 में इनके चित्रो को देखकर कहा था – 'रेखाओं के लिए कलाकार की अद्‌भुत संवेदनायें और लयात्मक बहाव प्रशंसनीय हैं जो भारतीय कला परंपरा का सर्वश्रेष्ठ है।'[1]

यही नहीं उत्तर प्रदेश एवं भारत के भी जाने माने ख्याति प्राप्त ग्राफिक चित्रकार 'जयकृष्ण' सत्तर के दशक में करीब एक माह के लिए या इससे अधिक समय के लिए अमेरिका सरकार के निमंत्रण पर वहां के कला दृश्य और कला प्रवृत्तियो को देखने - समझने के लिए गये थे। यह उत्तर प्रदेश के लिए गर्व की बात रही है, किन्तु जयकृष्ण से जब वहाँ के बारे में बात की गई तो कई तथ्य खुलकर सामने आये जैसे- अमेरिका मे नयेपन की प्रवृत्ति तो बहुत देखने को मिली जिसमें विचित्र प्रयोगो और यत्रों पर अधिकाधिक निर्भरता जिस प्रकार उन्हें देखने को मिली उसने जयकृष्ण को आकर्षित नही किया क्योंकि उसमे कला के सहज स्फूर्ति गुण का लोप होता है। अतिरिक्त इसके वहां किसी कलाकार की ख्याति कला के बजाय अमेरिका में कला वीथिकाओं तथा कला समीक्षको के बिछे जाल पर ज्यादा निर्भर रहती है और इन दोनो का सम्बन्ध धन और विक्रय से ज्यादा है - कला से कम। बातचीत में यह भी सामने आया कि अनेक भारतीय कलाकार वहाँ काफी अच्छा काम दिखाने के बाद भी स्थापित नहीं हो पाते क्योंकि बावजूद अपनी तमाम उदारता के ढिंढोरे के अमेरिकी कला जगत में संकीर्ण प्रवृत्तियां हावी है।[2] फिर भी वर्तमान भारतीय कला और कलाकार किसी मायने में कम नहीं है। भारतीय कला जीवन्त है अतः आज बीस वर्षो बाद वह विश्व स्तर पर सराही जा रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण भारत वर्ष मे आयोजित त्रिनाले कला प्रदर्शनी मे देखने को प्रति तीन तीन वर्ष में मिल जाता है।

श्री सुधीर रंजन खास्तगीर जब वर्ष 1936 में दून स्कूल देहरादून (उत्तर प्रदेश) में कला शिक्षक नियुक्त हुए, उसी के फौरन बाद वर्ष 1937 में एक वर्ष के लिए ये यूरोप गये,

---

1 डॉ0 गुप्त की एकल प्रदर्शनी के कैटेलाग से, इ0 सग्रहालय वर्ष 1994

2 कला त्रैमासिक, अक 6, जुलाई 1977, पृष्ठ स0 - 27

जहाँ इन्होंने कांस्य ढलाई का काम सीखा। प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल के चित्र आज विदेशो मे भी सग्रहीत है। श्री ललित मोहन सेन को वर्ष 1924 में रायल कालेज आफ आर्टस लन्दन मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई। लन्दन में इन्हें रोथेन्स्टीन के ऐतिहासिक विद्यार्थियों में गिना जाता था तथा 1926 में इन्हें चित्रकला एवं उड इन्ग्रेविग पर इनकी मौलिकता के लिए रायल कालेज आफ आर्टस की एसोसियेटशिप से सम्मानित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में सेन साहब का स्थान और महत्व इस बात से भी बढ़ जाता है कि वर्ष 1928 में इन्हें भारत के अन्य तीन चित्रकारो के साथ लन्दन के इण्डिया हाउस की भित्ति पर चित्रांकन हेतु आमंत्रित किया गया। यह घटना उत्तर प्रदेश के लिए गौरव की बात रही है। खासकर इस सन्दर्भ में कि उस समय दिल्ली, बम्बई और शन्ति निकेतन के चित्रकारों का बोलबाला था, लखनऊ आर्ट कालेज के विद्यार्थियों को कम अवसर मिल पाता था, सेन साहब की कला प्रतिभा के आधार पर उन्हें जो उपरोक्त सम्मान मिला उससे लखनऊ कला विद्यालय लगातार आलोकित होता रहा।

श्री मदनलाल नागर के चित्रों की प्रदर्शनी जब मुम्बई में आयोजित की गई तो उस दौरान अनेक विदेशी पर्यटकों ने उनके चित्रों की सराहना की। स्विट्जरलैण्ड के एक युवा दम्पत्ति को इनका चित्र गणेश गली बहुत भाया था। लन्दन के श्री एवं श्रीमती हैरीबेन्स को मदनलाल नागर की कला अप्रोच सर्वथा मौलिक प्रतीत हुई।

श्री रणवीर सिंह बिष्ट के सैरा चित्र तो प्रसिद्ध सेरा चित्रकार फ्रैंक वैसली के समकक्ष ही रहे हैं।

इसी प्रकार श्री के0 एस0 कुलकर्णी ने तो अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत के क्रिया कलापो को अत्यन्त निकट से देखा है। वर्ष 1942 में न्यूयार्क में अपने चित्रों की प्रदर्शनी के दौरान उनका परिचय 'डाली' से हुआ। श्री कुलकर्णी के शब्दों में - 'अमेरिका में हर वर्ष, हर महीने, हर पखवाड़े एक नया आन्दोलन जन्म लेता है लेकिन जहां तक भारत वर्ष का प्रश्न है हमने गहरी खोज की है और अर्न्तरात्मा में जाने का प्रयत्न किया है। यदि हम बहुआयामी

कला की प्रेरणा अपने ही स्त्रोतो से ग्रहण करते हैं तो कहीं ज्यादा उपयोगी काम कर सकेगे। मै स्पष्ट शब्दों मे कहना चाहता हूँ कि कला उधार नहीं ली जा सकती।'1

इस प्रकार अलग अलग सन्दर्भो मे उत्तर प्रदेश के चित्रकारों का अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत से सामना होता रहा है जहाँ उनका महत्व और स्थान अद्यतन सुरक्षित है और आगे आने वाले चित्रकारों के लिए मार्ग भी प्रशस्त हो रहा है।

श्री बिष्ट की कलाकृतियों का प्रदर्शन भारत के अलावा दक्षिण एशिया, जर्मनी, जापान एवं लैटिन अमरीका के अनेक देशों में हुआ है। विभिन्न राष्ट्रीय पुरस्कारो के साथ इन्हे उत्तर प्रदेश ललित कला अकादमी एव यूनेस्को की फेलोशिप भी प्रदान की गयी है। देश विदेश के अनेक कला सग्रहालयों में उनकी कृतियाँ अद्यावतन सुरक्षा पूर्वक सग्रहीत है।2

अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में चित्रकारों के स्थान एवं महत्व की बात उठाते वक्त यह प्रश्न भी कौंधता है कि जिस प्रकार यूरोपीय कलावादो का भारत में स्थान है, महत्व है भले आज कला शिक्षा तक ही हो किन्तु यह तो निर्विवाद है कि वहाँ का प्रभाव यहाॅ पडा था। किन्तु भारतीय कला का प्रभाव विदेशों में कहाँ दिखता है। एशियाई चित्रो की बात करें तो जापानी छाप चित्रों का प्रभाव यूरोपीय प्रभावादी चित्रकारों पर अवश्य पड़ा। मातिस (यूरोपीय फाववादी चित्रकार) के चित्रों में बहुत से अशं भारतीय कांगड़ा शैली से एव राजधानी शैली से मेल खाते है, इसी प्रकार रैम्ब्रां के चित्रों में मुस्लिम कला का प्रभाव दिखता है। प्रसिद्ध चित्रकार पाल क्ला एवं वानगॉग के चित्रों मे आत्मिकता का वर्चस्व है। पाल क्ला तो'शून्य' से कार्य प्रारम्भ करते हैं जो भारतीय दर्शन का अहम् हिस्सा है। हमारे यहाँ शून्य में अखिल ब्रह्माण्ड की कल्पना की जाती है, अतः भारत वर्ष के श्रेष्ठतम् दर्शन एवं आध्यात्मिक मूल्य वहाँ के कतिपय आधुनिक चित्रकारों का प्रेरणा श्रोत रहा है यह भी सत्य हैं।

---

v कला त्रैमासिक, सयुक्ताक 8-9, पृष्ठ स0 32

2 आधुनिक भारतीय चित्रकला गिर्राज किशोर पृष्ठ स0 81

उत्तर प्रदेश की आधुनिक कला या चित्रकारों का महत्व भी एक घटना से अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्ष 1994 में जब प्रसिद्ध समीक्षावादी चित्रकार प्रो0 रामचन्द्र शुक्ल अमेरिका गये तो वहाँ शिकागो आर्ट कालेज के अध्यक्ष से उनकी भेंट हुई तो शुक्ल जी ने प्रश्न किया कि आपके यहाँ नवीनतम् कलावाद या प्रचलित पद्धति क्या है तो उन्होने कहा- ''हम लोग आज कल कला में सामाजिक पहलू पर भी काम कर रहे है।''[1] गौर करने का विषय है कि इस प्रकार का सामाजिकता का कार्य उत्तर प्रदेश मे वर्ष 1994 में समीक्षावादी चित्रकारो ने बखूबी शुरू कर दिया था।

आज भारतीय कला को विश्व फलक तक पहुँचाने के लिए वेबसाइट को कुछ कलाकार एक खतरे के रूप में देख रहे है। एक तरफ अंजली इलामेनन इसे विश्व दर्शन से जोड़कर देख रही हैं, तो दूसरी ओर मंजीत बाबा और केशव मलिक ने इसे भारतीय आधुनिक कला के लिए खतरे का संकेत बताया है। उनका साफ तौर पर कहना है कि हमारी कला जनसाधारण के लिए भी है और वेबसाइट उन्हें कला से काटने की पूरी तैयारी कर रहा हैं।

पिछले दिनों दिल्ली मे एक वेबसाइट इन्डियन आर्ट सर्किल कॉम (Indıan art circle Com) की शुरूआत हुई। इसे केशव मलिक एवं अंजलि इला मेनन ने लांच किया। वेबसाइट को गार्गी सेठ ने तैयार किया है, वह कहती हैं इसका उद्देश्य भारतीय कलाकारों की कलाकृतियों व उनकी उपलब्धियों की जानकारी विदेशों में रहने वाले कला प्रेमियों तथा कला छात्रों तक पहुँचाना है। उनका मानना है कि इससे भारतीय आधुनिक कला का विस्तार होगा और हमारी कला के विकसित होने के लिए रास्ते खुलेंगे।

मंजीत बावा ने कला इंटरनेटीकरण पर चिंता जताई है। उनके अनुसार वेबसाइट के माध्यम से जब किसी कलाकार की किसी विशिष्ट कृति की मांग ज़्यादा बढ़ेगी तो लालच वश इस कृति की नकल बनने लगेगी। ऐसा होने से मूल कृति की संम्प्रेणीयता और उसकी

---

1 प्रसिद्ध चित्रकार प्रो0 शुक्ल से बातचीत के आधार पर-

कलात्मकता समाप्त हो जायेगी। न जाने कितने भारतीय कलाकारों की कृतिया विदेशो में बिक रही है और मूल कलाकारों को पता तक नहीं चलता।

इस वेबसाइट का सुखद पक्ष यह है कि विदेशो में कला की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो को इससे अवश्य लाभ होगा।[1]

उत्तर प्रदेश में श्री शान्तनु मुखर्जी ने भी अपनी स्वंय की वेबसाइट तैयार की है, किन्तु उद्देश्य चित्रों की बिक्री प्रमुख है।

कला में अन्तर्राष्ट्रीयता की बात पर आज के इस इंटरनेटीकरण को ध्यान में रखकर चलना है तथा यह विवेक दृष्टि भी सदा साथ रखकर चलना है कि 'यह' देश एवं प्रदेश की कला मे कितना कारगर है।

---

1 दैनिक हिन्दुस्तान,लेखक-विकल्प शर्मा, पृष्ठ स0- 09

उपसंहार

आधुनिक कला कही की भी हो आधुनिक ही होती है। परम्परागत शैलियो की बात चले तो उसका प्रांत/ राज्य/क्षेत्र के आधार पर विभाजन करके कहा जा सकता है कि यह फलां स्थान की कला है। किन्तु आधुनिक कला अर्थात आज की कला जिसका आधार आत्मिक अनुभूति, लोक कला अथवा आदिम कला हो सकते हैं और यह एक स्थान पर एक ही विषय पर कार्य करने वाले दो कलाकारों की भी भिन्न भिन्न व्यक्तिगत पहचान लिए हुए हो सकती है। इसी प्रकार भिन्न क्षेत्र , प्रान्त, राष्ट्र एवं विश्व के सन्दर्भ में देखने पर भी ऐसा ही होता आया है। उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला से तात्पर्य यह है कि उत्तर प्रदेश में आधुनिक चित्रकला और अब तो आधुनिकता की भी कोई बात नहीं है बल्कि समसामयिकता की ही बात ज्यादा होती है।

इस प्रबन्ध में बंगाल शैली के उन चित्रकारों के विषय में बात कही गई है जो यहाँ पैदा हुए या यहाँ शिक्षित हुए या किन्हीं कारणों से उत्तर प्रदेश जिनकी कर्म स्थली रही है । इन चित्रकारों ने बंगाल शैली की वाशविधा में तो कार्य किया ही किन्तु उसके पश्चात जब उन्होंने बंगाल शैली से हटकर अपने ढंग से चित्रों का निर्माण किया तो जैसे एक रास्ता खुला। उत्तर प्रदेश की धरती पर जिन भी मौलिक चित्रकृतियों का निर्माण हुआ वे सभी उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला का प्रतिनिधित्व करती आयी हैं। इन चित्रकृतियों ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक की चित्रकला प्रदर्शनियों में शामिल रहकर उत्तर प्रदेश का नाम रौशन किया है।

एक अन्तर जो आज देखने में आता है वह है कलाकृति और कलाकार का। बंगाल स्कूल तक तो यह बात मुख्य थी कि कलाकृति कलाकार से ऊपर होती थी। यूँ रचना तो हमेशा ही रचनाकार से बड़ी होती है, फिर भी आज कलाकार का नाम अहम् है। इस वैयक्तिकता ने प्रदेश देश विदेश की सीमाओं को तोड़ दिया है।

आज उत्तर प्रदेश में चित्रकला के क्षेत्र में जो भी कार्य हो रहा है वह चिन्तन का विषय है। कुछ लोग उत्तर प्रदेश को पिछड़ा कहकर इसकी महत्ता से आँखें बंद कर लेना

चाहते हैं और यहाँ की सांस्कृतिक गतिविधियों से अनभिज्ञ होने का अभिनय करते हैं, किन्तु यह प्रदेश कितना समृद्ध रहा है इसे हम पिछले अध्यायों में बता चुके हैं।

इसी प्रकार बंगाल शैली को भी नीरस और स्वतंत्रता आन्दोलन से प्रेरित क्षणिक आवेग तक की संज्ञा दे डालते हैं उन्होंने बंगाल स्कूल को कट्टर पंथी तक कह डाला था और इसके समकालीन गोंगा, वानगांग आदि को क्रान्तिकारी मानते हुए बंगाल स्कूल की कला को अतीतोन्मुखी बताते रहे हैं। इस सन्दर्भ मे श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय' (सुपरिचित भारतीय रचनाकार एवं चितक) जी के भाषण का कुछ अंश उद्धृत है जिसमें उन्होंने भारतीय चित्रकला में बंगाल स्कूल की अहमियत को कुछ यूँ बताया है - 'शान्ति निकेतन के संरक्षण में पनपने वाला यह आन्दोलन स्वाभाविक और अनिवार्य भी था, भारतीय भी था, अपने समय में आधुनिक भी था और आज भी कहना चाहता हूँ कि सही भी था, क्योंकि वह बहुत गहराई में भारत की प्रतिभा और आकांक्षा के साथ जुडा हुआ था और उसे रूपायित भी कर रहा था। यह कला आन्दोलन भारत की तत्कालीन आकांक्षा और प्रतिभा से प्रेरणा भी ले रहा था और रूप भी दे रहा था जो लोग उसकी आलोचना करते हैं कि यह प्राचीन शैलियों से प्रेरित कथा कहने जैसा ही है, वे इस बात को सर्वथा अनदेखा करते हैं कि अधिकांश यूरोपीय चित्रकार उस समय भी, (जब यूरोप में उपर्युक्त वानगाग और गोंगा का बोलबाला था) विस्तार वादी थे और अनूठे विदेशी अर्थात एग्जोटिक को सहज भाव से ग्रहण करते थे, जबकि दूसरी ओर भारत की समस्या स्वरूप की पहचान और एक सह आत्मबिंब की प्रतिस्थापना की थी, जिसका इसलिए नये आयात के प्रति शंकालु होना स्वाभाविक था।'[1]

इसी प्रकार अमृता शेरगिल जो काफी हद तक बंगाल स्कूल की विरोधी थीं ने भी बंगाल स्कूल के पक्ष में एक बात एकदम सत्य कही कि - 'बंगाल स्कूल ने भारतीय जन मानस के एक हिस्से मे ं यह जागरूकता पैदा कर दी कि हमारी विरासत कम समृद्धि शाली नही है।'[2]

---

1 अमुता शेरगिल, ले0 कन्हैया लाल नन्दन, पृष्ठ संख्या 61

2 अमृता शेरगिल, पृष्ठ स0 64

किसी भी देश की कला वहाँ के लोगों के मनोविज्ञान की प्रतिच्छाया होती है। उस कला की गुणवत्ता का स्तर उसकी राजनीतिक शक्ति की समृद्धि और दारिद्रय दोनो का प्रतिबिम्ब होता है और उस देश के लोगों की बौद्धिकता और सौन्दर्य बोध के विकास का एक संकेत होता है। बंगाल शैली के चित्रकारों ने अपनी कला परम्पराओ से प्रेरणा लेते हुए जो पुनर्जागरण की अलख जगाई वह काफी सफल रही, किन्तु आगे चलकर कुछ बंगाल शैली के ही चित्रकारों ने समय की ज़रूरत को पहचाना उन्हें लगा कि अब सिर्फ पुनर्जागरण से काम नहीं चलने वाला और अब तक बंगाल शैली के चित्रो में ठहराव की भी गन्ध आने लगी थी। बंगाल शैली के कतिपय चित्रकारों ने स्थिति को भांपते हुए यह महसूस कर लिया था कि आत्म चिन्तन खोज और सरलीकरण को नकार कर वे अपनी कला को अधिक दिन बदलते परिवेश में स्थायित्व नहीं दे पायेंगे अतः उन चित्रकारो ने बंगाल शैली की रोमानियत और कथा विस्तार को आदिम कला प्रतीकों , लोक कलाओं, चिन्तन और खोज की तरफ मोड़ दिया। उन्होंने नित नया करने की ठानी इस सन्दर्भ में श्री जयशकर प्रसाद की यह उक्ति याद आती है कि -

'पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक' [1]

अर्थात् प्रकृति भी हर क्षण परिवर्तन चाहती है। इसी प्रकार और भी कि 'क्षणे क्षणे यन्वतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ''[2]

अर्थात् क्षण क्षण में जो वस्तु को अपूर्व सुन्दरता अथवा नवीनता प्राप्त होती है, वही रमणीयता का (सच्चा) स्वरूप है या फिर जो क्षण क्षण में नवीनता को धारण करता है वही सुन्दर है।

जब नये की और आधुनिक की बात आयी है तो इस पर कुछ चर्चा किये बगैर बढ़ना उचित नहीं जान पड़ता - बैदिक दृष्टि में आधुनिकता एवं पुरातनता को जोडकर ही बात की जाती है। 'महाकाल की नजरों में तो आधुनिक और पुरातन में कोई अंतर नहीं है।

---

1 कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रृद्धा सर्ग, पृष्ठ स0 55

2 शिशुपाल वध, महाकविमाघ, 4-17

क्योकि जो अधुना है, अद्यतन है वही पुरा और अनद्यतन हो जाता है। व्यवहार की दृष्टि से हर कोई आधुनिक या अद्यतनीय होना चाहता है। कोई भी पुरातनपथी नहीं होना चाहता । आधुनिकता एक ओर व्यक्ति के बाहरी व्यक्तित्व को प्रभावित करती है जिसके कारण फैशन नई नई उपभोक्तावादी वस्तुओं को अपनाने की ललक नई वेशभूषा आभूषण व सुविधा पूर्ण जीवन शैली की ओर व्यक्ति उन्मुख रहता है। परन्तु यह बाह्य आवरण सच्ची आधुनिकता को नही अभिव्यक्त करते। जिस प्रकार अग्रेजो द्वारा स्थापित कला विद्यालयों में स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी पद्धति में चित्रकला सिखाई जाती रही थी, अतिरिक्त इसके यूरोप के पुराने पड़ चुके कला वादों की भारतीय चित्रकार नकल करने को ही आधुनिकता मान रहा था जबकि इस तरह के चित्रनिर्माण को हम सिर्फ फैशन ही कह सकते हैं।

इसी समय रवीन्द्र नाथ टैगोर की प्रेरणा से अवनी बाबू ने तत्कालीन पाश्चात्य कला के नाम पर सिखाये जा रहे कलावादों की वंचना को समझा और अपनी जड़ों की ओर उन्मुख हुए किन्तु सच्ची आधुनिकता आन्तरिक विकास का वह रूप है जिसमें मनुष्य पुरातनता के मोह में न पड़कर उदारवादी दृष्टिकोण अपना लेता है। यह उदार वादी दृष्टिकोण ही सच मे मनुष्य को आधुनिकतावादी बनाता है क्योंकि तब व्यक्ति परम्परा के क्षत विक्षत अश का परित्याग कर ग्राह्य को ग्रहण कर उसे देशकाल के अनुरूप जीवन का अंग बनाकर विकसित कर लेता है। अवनी बाबू ने भी भारतीय परम्परागत अजंता मुगल, राजस्थानी आदि की रेखाओं मे छिपी आध्यात्मिकता के मर्म मे जो हर क्षण नवीन था उसे ग्रहण किया और तकनीक चीन और जापान की रखी क्योंकि यह रग तकनीक उनके विषयों की कोमल संवेदनाओं के सर्वथा अनुकूल थी। यहाँ पर अवनी बाबू का उदार दृष्टिकोण ही ठाकुर शैली के जन्म का कारण बना। जिसे आधुनिक कला का सूत्रपात कहा जा सकता है। सच पूछिये तो आधुनिकता के प्रति आकर्षण किसे नहीं होता ? सभी नित नये की चाह करते हैं। प्रकृति में भी नित नये परिवर्तन होते रहते हैं। अत: नवीनता की चाह रखना मानव को प्रगतिवादी बनाता है। प्रकृति के अनुकूल बनाता है। इसीलिए 'हमारी संस्कृति का उच्चतम् प्रतीक ढाई अक्षर का ओम् (अउम्) है जो प्रणव है- प्र-नव-प्रकर्षेण नव- विशेष रूप से नवीन है। वास्तव में ओम् शब्द एक तरफ तो चिर पुरातन है तो दूसरी ओर चिर नवीन भी। पुरातन

इसलिए कि चिर प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित है तथा नवीन इसलिए कि आज भी इसके प्रयोग को मानसिक शान्ति के लिए उपादेय बताया जा रहा है। यूरोप के एक धार्मिक संगठन ने नई सहस्राब्दी का स्वागत हाय, हे से न करके 'ओम्' से करने की सिफारिश की है। यही ओम इस्लामी परम्परा मे 'आमीन्' है तो यहूदी व ईसाई परम्परा मे 'अमेन' – दोनों ही जगह शान्ति के अर्थ अभिव्यक्त होते हैं।'[1] हमारे यहाँ वेद भी चिर पुरातन होते हुए भी नित नवीन है। इसलिए वे आधुनिकता का सामना करने में नितान्त सक्षम हैं जैसी की हमारी शस्त्रीय एवं लोक कलाएं। अतः बंगाल शैली ने यदि अपनी परम्परा से प्रेरणा लेकर कार्य किया तो उसे आधुनिक मानना ही श्रेयष्कर है और सत्य भी।

उपर्युक्त वेद पुराण या ओम् की बात बंगाल शैली को आधुनिक बताने के लिए सिर्फ तर्क ही नही है बल्कि यही वास्तविकता है। यदि बंगाल शैली का जन्म न हुआ होता तो आज की समकालीन आधुनिक कला जिस मजबूत जमीन पर खड़ी है वह भी न होती। वास्तव में 'अपनी जड़ों से कटकर कोई सच्चे अर्थो में न आधुनिक हो सकता है और न ही सार्वभौम दृष्टि विकसित कर सकता है । भूमण्डलीकरण के इस दौर में हमें ऐसी विश्वव्यापी संस्कृति की तलाश करनी है तथा विकास करना है जो यथार्थ मे अन्तर्राष्ट्रीय भी हो और मानवीय भी।'[2] अतः नवीनता को अंगीकार करते हुए प्राचीनता को न त्यागना ही श्रेयष्कर है। जिस प्रकार दिन रात में रात्रि के बिना दिन नहीं रह सकता है और दिन के बिना रात्रि नहीं रह सकती। इसी प्रकार एक ॠतु के बिना दूसरी ॠतु का विकास नहीं होता। यही बात संस्कृति और सभ्यता पर लागू होती है। प्राचीन नवीन का सम्बन्ध मूल शाखा तथा पत्र पुष्प का है, मूल के बिना शाखा और पत्र पुष्प नहीं हो सकते। पत्र पुष्प के बिना मूल व्यर्थ है। दोनों अपने स्थान पर उपयोगी हैं। प्राचीन संस्कृति से ही नवीन संस्कृति का विकास होता है परन्तु समाज पत्र पुष्प की चाह में संस्कृति सभ्यता के नवीनतम रूप को अपनाने लगता है तथा मूल की उपेक्षा करता रहता है।' इस सन्दर्भ में यह स्मरण दिलाना चाहूँगी कि जब श्री गगनेन्द्र नाथ टैगोर ने घनवादी चित्र बनाये तो वे चित्र बहुत सराहे नहीं जा सके क्योंकि वे

---

1 हिन्दुस्तान, लखनऊ रविवार 27 अगस्त 2000 लेखक – डा0 प्रवेश सक्सेना

2 हिन्दुस्तान, 27 अगस्त 2000, वही

चित्र पाश्चात्य घनवाद से प्रेरित थे। इन चित्रों में अपनी जडों से कोई प्रेरणा नहीं ली गई थी। परन्तु दूसरी ओर नन्दलाल बोस, यामिनी राय, विनोद बिहारी मुखर्जी, ललित मोहन सेन, ए0के0 हल्दार , क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार, सुधीर रंजन खास्तगीर इत्यादि कलाकारो ने अपनी जडो के महत्व को तो पहचाना ही साथ ही साथ उन्होंने अपनी भीतरी इच्छा को भी अभिव्यक्ति दी। उन्होंने स्वयं ये महसूस किया कि नवीनता की खोज में उन्हें बाहर नहीं जाना बल्कि भीतर ही अवस्थित होना है, जहाँ हर क्षण नवीन रस धार उनकी धमनियो मे अजस्र प्रवाहित होती रहती थी। ये कलाकार जानते थे कि आदिम कला, लोक कला एवं धार्मिक प्रतीकों के रूप में अपनी मूल प्रवृत्तियो को चिरवृत्तियों को आत्म सात किये बगैर सच्ची आधुनिकता का वरण नहीं किया जा सकता । इन सबके लिए अन्तर्मुखी प्रवृत्ति ही कारगर होती है। अतिरिक्त इसके यह मनुष्य - मनुष्य में अवस्थित दिव्यता को पहचानने की भी सामर्थ्य रखती है तथा सभी को मित्र दृष्टि से देखना सिखाती है। यजुर्वेद में कहा भी गया है- 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' [1]

इस प्रकार बंगाल शैली के आधुनिक चित्रकारों ने न सिर्फ एक दूसरे को मित्र भाव से देखा बल्कि विश्वमैत्री के भाव को अपने भीतर पूरी तरह पनपने का मौका दिया। इस भाव को साथ लेकर ही वे शान्ति निकेतन से निकलकर अलग अलग प्रान्तों मे कला शिक्षा एवं कला के प्रचार प्रसार के लिए आजीवन साधना रत रहे।

उत्तर प्रदेश मे बंगाल शैली के जिन कलाकारों ने आधुनिक कला से प्रदेश वासियों का परिचय ही नहीं कराया वरन् सम्पूर्ण प्रदेश को चित्रकला मय बनाया उनमें से जिन कलाकारों का संक्षिप्त जीवन परिचय एवं उनके चित्रों का विश्लेषण चौथे अध्याय मे किया गया है। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं :-

1. असीत कुमार हल्दार, 2 क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार 3. शैलेन्द्र नाथ डे 4. वीरेश्वर सेन 5. ललित मोहन सेन 6. विनोद बिहारी मुखर्जी 7. सुधीर रजन ख़ास्तगीर 8. प्रणय रंजन राय 9. हरिहर लाल मेढ़ 10 बृज मोहन नाथ जिज्जा 11. सुखबीर सिंहल 12. विश्वनाथ मुखर्जी 13 द्वारिका प्रसाद धुलिया 14. मदन लाल नागर 15. रामचन्द्र

---

1 यजुर्वेद, 36- 18(पृ0 स0 - 280)

शुक्ल 16. असद अली 17 जगदीश गुप्त 18 रनवीर सिंह बिष्ट 19. नित्यानन्द महापात्र 20 बद्री नाथ आर्य 21 रघुबीर सैन धीर, 22 राम कुमार विश्वकर्मा।

उपर्युक्त चित्रकारों के अलावा रणवीर सक्सेना, ए0 पी0 गज्जर, बी0सी0 गुई मकबूल अंसारी जैसे अन्य अनेक कलाकार हैं जिनकी चर्चा पांचवे अध्याय में नामोल्लेख के द्वारा की गई है। इन चित्रकारों पर अध्ययन जारी है जिसे भविष्य में प्रारूप देना बाकी है साथ ही इनके लिए नये कलेवर की भी आवश्यकता है। पाँचवे अध्याय मे उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला के स्वरूप को बिना किसी विभाजन या बन्धन के समग्र रूप से उल्लिखित करने का प्रयास है। यहाँ विश्वविद्यालयों मे कला शिक्षा के साथ साथ अन्य सस्थानों द्वारा कला शिक्षा के महत्व को पहचानते हुए जो भी गतिविधियाँ है सभी को सक्षेप में बताने का प्रयास है क्योंकि अप्रत्यक्ष रूप से उत्तर प्रदेश की आधुनिक चित्रकला का स्वरूप इनके प्रयासों का भी परिणाम है।

इसी प्रकार छठे अध्याय जिसमें भारत की समकालीन आधुनिक चित्रकला मे उत्तर प्रदेश के बंगाल शैली के चित्रकारों के योगदान को बताने के लिए चौथे अध्याय मे जिन चित्रकारो का चयन है उन्हीं के राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचने एवं पहुंच कर अपनी शख्सियत को सशक्त तरीके से सम्पूर्ण राष्ट्र हित मे अपने चित्रो के माध्यम से पहचनवाने की बात कही गयी है। क्योंकि जिस प्रकार से अन्य प्रान्तो के चित्रकारों ने बेहतरीन चित्र निर्माण करके देश का गौरव बढ़ाया है उसी प्रकार उत्तर प्रदेश के चित्रकारों ने भी अपना योगदान पुस्तुत किया है। इसी के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में भी उत्तर प्रदेश के चित्रकारो का स्थान एवं महत्व पहचाना गया। सातवें अध्याय में उत्तर प्रदेश के सिर्फ बंगाल शैली के ही नहीं बल्कि उससे इतर चित्रकारों के भी महत्व की चर्चा आवश्यक समझी गई।

ऐसा नहीं रहा है कि जिन चित्रकारों का उल्लेख इस शोध प्रबन्ध में किया गया है वे सर्वथा हमारे लिए अनजाने रहे हैं बल्कि ये कलाकार तो बहुत ही प्रसिद्ध रहे हैं और इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर करीब 50 वर्षो से विभिन्न पत्र पत्रिकाओं एवं चित्रकला सम्बन्धी पुस्तकों में चर्चा की जाती रही है। फिर भी यह बताना अभीष्ट समझती हूँ कि मेरे भीतर

इस विषय पर शोध कार्य करने की इच्छा क्यो जगी- हर कोई जानता है कि अपने देश, प्रदेश एवं अपनी मिट्‌टी से लगाव होना बहुत स्वाभाविक सी बात है। ये मिट्‌टी हमारे जीते जी तो साथ होती ही है हमारे संसार से जाने के बाद भी वायुमण्डल में जीवित रहती है, ये नये को जन्म देती है और पुराने को अपने गर्भ में समेट लेती है। हर क्षण बदलाव लाती है हर पल नया रचती है जिससे यह क्रम अनवरत् चलता रहता है।

उत्तर प्रदेश के आधुनिक कला जगत को प्रारम्भ से लेकर अब तक अध्ययन करना मुझे आवश्यक लगा, साथ ही यह भी सोचने की बात है कि उत्तर प्रदेश में आधुनिक कला या समकालीन कला का जो रूप हमारे सामने है वह किन किन रास्तों एवं परिस्थितियों से आज इतना समृद्ध है, तो फिर बगाल शैली के चित्रकार ही नज़र आये जिन्होंने विदेशी जकडन से स्वतंत्र हुए भारत को भी देखा है और देश की आन्तरिक रूढ़ियों मे जकडे हुए भारत को भी। इन आपदाओं और बन्धनों से लड़कर इन कलाकारो ने आधुनिकता के लिए खिड़की खोली। इतना ही नहीं इन कलाकारों ने स्वयं से भी संघर्ष किया और जब मौलिक रचनाये प्रस्तुत कीं तो कहीं से भी यह आभास नहीं हुआ कि ये कलाकार परम्परागत चित्रण में भी कभी सक्रिय रहे थे। इन्हीं कलाकारों में से जो कलाकार उत्तर प्रदेश आये, जो यहाँ जन्में या जिन्होंने यहाँ कुछ वर्ष ही बिताये उन सभी के माध्यम से खोज करके उत्तर प्रदेश की आधुनिक कला को जानना अपने आप में तो महत्व पूर्ण है ही साथ ही सम्पूर्ण देश विदेश के कला जगत में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

आम तौर पर इन सभी चित्रकारों एवं इनकी कृतियों को अलग अलग ही रेखांकित किया जाता रहा है। एक साथ सिर्फ उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ मे इन्हें बहुत कम देखा गया । मेरे शोध का उद्‌देश्य इन्हें साथ जोड़कर इनकी कला को जानना और प्रदेश की आधुनिक कला में इनके अप्रतिम योगदान को पहचानना मुख्य है।

इस प्रबन्ध में उत्तर प्रदेश के विषय में तो जो जानकारी आवश्यक थी, है ही साथ ही बंगाल शैली एवं आधुनिक चित्रकला को प्रदेश की सीमाओं से आगे बढ़कर व्याख्यायित करने का भी प्रयास है और हर क्षण क्रमशः प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में इनके अस्तित्व एवं इनके विकास क्रम को समग्र रूप से उल्लिखित किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जिन चित्रकारों को आधार बनाकर कार्य किया है वे सभी अत्यन्त सक्रिय रहे है उन्होंने अपने जीवन की अंतिम सांस तक चित्रण किया है और कर रहे हैं। किसी ने सत्य ही कहा है -

'चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।

सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चँरश्चरैवेति॥'[1]

सक्रिय व्यक्ति को मधु की प्राप्ति हो जाती है और सदा गतिशील व्यक्ति स्वादिष्ट उदुम्बर आदि फल प्राप्त करता है। अविश्रान्त रूप से अहर्निश गतिमान् रहने के कारण ही सूर्य विश्ववंद्य है। अत: जीवन में दृढ निश्चय के साथ आगे चलते चलो, चलते चलो।

आज उत्तर प्रदेश की चित्रकला का स्वरूप बहुत निखर गया है, एक सुखद बात यह भी है कि इस वर्ष से राज्य ललित कला अकादमी की कला पत्रिका 'कला त्रैमासिक' का पुर्नप्रकाशन एक दशक से भी ज्यादा अन्तराल के बाद प्रारम्भ हो गया है।

अंत में यही कहना चाहती हूँ कि अपने भरसक मेरा पूरा प्रयास ये रहा है कि इस प्रबन्ध में कहीं कोई भ्रम न रहे तथा चित्रकला विषय के विद्वानों और विद्यार्थियो के अतिरिक्त अन्य लोग भी इसे पढ़कर लाभान्वित हो सके तो चित्रकला के विकास में एक कड़ी और जुड़ सकेगी, और मेरा प्रयास सार्थक होगा।

चित्रकला जगत के समस्त प्रेमियों से अनुरोध है कि यदि मुझसे इस पूरे शोध प्रबन्ध मे कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए क्षमा करने की महती कृपा करें ।

Juhi Shukla

जूही शुक्ला
शोध छात्रा

---

1 ऐतरेय ब्राह्मण, 33-3

ग्रन्थानुक्रमणिका

1	अग्रवाल, गिर्राज किशोर,	:	आधुनिक चित्रकला के युग निर्माता, अलीगढ़
2	अग्रवाल, गिर्राज किशोर,	:	आधुनिक भारतीय चित्रकला अलीगढ़, 1991
3	अग्रवाल गिर्राज किशोर,	:	रुपांकन, अलीगढ, 1986
4	अग्रवाल शर्मा,	:	रुपप्रद कला के मूलाधार, मेरठ 1998
5	अग्रवाल आर० ए०,	:	कला विलास, मेरठ, 1997
6	अग्रवाल, वासुदेव शरण,	:	भारतीय चित्रकला, वाराणसी 1965
7	अप्पासामी, जया	:	विनोद बिहारी मुखर्जी, दिल्ली
8	अज्ञेय, सच्चिदानन्द वात्सायन,	:	भारतीय कला दृष्टि, दिल्ली 1985
9	गुप्त, जगदीश	:	प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली 1967
10	गुप्त, जगदीश	:	भारतीय चित्रकला के पदचिन्ह, दिल्ली 1961
11	गुप्ता, श्यामला	:	सौन्दर्य तत्त्व मीमांसा दिल्ली, 1992
12	कुमार अजीत, मन्नू भण्डारी	:	संकल्प का सौन्दर्य शास्त्र, नई दिल्ली 1997
13	गैरोला, वाचस्पति	:	भारतीय चित्रकला, दिल्ली 1990
14	गैरोला, वाचस्पति	:	भारतीय संस्कृति और कला, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1985
15.	गोस्वामी, प्रेमचन्द्र	:	आधुनिक भारतीय चित्रकला के आधार स्तम्भ, जयपुर,1995
16	जैन, उर्मिला	:	कला (शान्ति की खोज), दिल्ली 1967

17 जोशी ज्योतिष : समकालीन कला अंक 17 दिल्ली 1996

18 डे, शैलेन्द्र नाथ : भारतीय चित्रकला पद्धति, इलाहाबाद 1957

19 दास, रायकृष्ण : भारत की चित्रकला, — —

20 नाथ, राम : मध्यकालीन भारतीय कलाए और उनका विकास, जयपुर 1973

21. नंदन, कन्हैया लाल, : अमृता शेरगिल (जीवनी), मुंबई, 2000

22 पाटणकर, श०भा०, (अनुवाद) चंद्रकात वादिवडेकर : सौन्दर्य मीमांसा, दिल्ली, 1990

24 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र : चिति वीथिका (शोध पत्रिका), इलाहाबाद 1996-97

25 प्रसाद, जयशंकर : कामायनी, इलाहाबाद 1949

26 फिशर अंर्स्ट(अनु० रमेश उपाध्याय) : कला की जरुरत, दिल्ली 1990

27 बाजपेयी, राजेन्द्र : सौन्दर्य, कानपुर, 1981

28 भारद्वाज, विनोद : आधुनिक कला कोश, नई दिल्ली 1989

29 भारद्वाज, विनोद : कला चित्रकला, नई दिल्ली 1996

30. भटनागर, आर० के० : समकालीन कला अंक 3-4 दिल्ली 1984-85

31 मालवीय, बद्रीनाथ : विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला, इलाहाबाद 1960

32. मजुमदार, क्षितीन्द्र नाथ : चित्रेगीत गोविन्द (बंगला), इलाहाबाद 1961-62

33. राय, नीहाररंजन : भारतीय कला का अध्ययन, नई दिल्ली 1978

34. राय, नीहाररंजन : भारतीय कला के आयाम, नई दिल्ली 1984

35 विश्वकर्मा, रामकुमार, : भारतीय चित्रांकन, इलाहाबाद 1978

36 विश्वकर्मा राम कुमार, : भारतीय चित्रकला में सगीत तत्त्व, दिल्ली, 1996

37 विमल कुमार, : सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व, नई दिल्ली 1981

38 वर्मा, लक्ष्मीकांत, : इलाहाबाद के चित्रकार, इलाहाबाद 2000

39 विरंजन, राम : मिर्जापुर की चित्रकला, एक अध्ययन, (शोध प्रबन्धक) इलाहाबाद 1996

40 शुक्ल, रामचन्द्र : आधुनिक कला समीक्षावाद, इलाहाबाद 1994

41 शुक्ल रामचन्द्र : कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, लखनऊ 1974

42 शुक्ल, रामचन्द्र : कला का दर्शन, मेरठ 1964

43 शुक्ल, प्रयाग : कला समय और समाज, नई दिल्ली, 1979

44 शुक्ल, प्रयाग : देखना, दिल्ली, 1993

45 शर्मा, अशोक कुमार : उत्तर प्रदेश, दिल्ली 1998

46 शर्मा, मृदुल : उत्तर प्रदेश की आधुनिक महिला चित्रकार, आगरा- (शोध प्रबन्ध) शर्मा,

47. शर्मा राजेन्द्र : जोधपुर क्षेत्र के भित्ति चित्रों का कलात्मक अध्ययन, जयपुर, 1996

48. सांकलिया, हंसमुख धीरज लाल : पुरातत्व परिचय, पूना, 1969 (अनु० गोविन्द नारायण मालवीय)

49 साखलकार, र० वि० : आधुनिक चित्रकला का इतिहास, जयपुर 1989

50 सोलंकी, जैन, भटनागर, : उत्तर प्रदेश, सामान्य ज्ञान, आगरा, 1999

51 समर्थ, भाऊ, : चित्रकला और समाज, इलाहाबाद, 1988

52 हल्दार, असीत कुमार : भारतीय चित्रकला, इलाहाबाद, 1959

53 हल्दार, असीत कुमार : रुपदर्शिका, इलाहाबाद 1965

54 हल्दार, असीत कुमार : ललित कला की धारा, इलाहाबाद 1960

पत्र, पत्रिकाएं

आकृतियां ललित कला अकादमी, नई दिल्ली 1993

असद अली (मोनोग्राफ) राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ, 2000

आचार्य ललित मोहन सेन (मोनोग्राफ)-राज्य ललित कला अकादमी, लखनऊ

कला दीर्घा, लखनऊ, अक्टूबर 2000

कला त्रैमासिक, अंक चार रा० ल० क० अ०, लखनऊ , 1977

कला त्रैमासिक, रा० ल० क० अ० लखनऊ, 1975

कला त्रैमासिक, अंक सात रा०ल०क०अ०, लखनऊ, 1977

कला त्रैमासिक, अंक दो रा०ल०क०अ०, लखनऊ, 1975

कला त्रैमासिक विष्ट विशेषांक रा०ल०क०अ०, लखनऊ, 1985

कला त्रैमासिक, बाल कला अंक रा०ल०क०अ०, लखनऊ, 1981

कला त्रैमासिक, कुलकर्णी विशेषांक रा०ल०क०अ०, लखनऊ ,1985-86

कला त्रैमासिक, अक छः रा०ल०क०अ०, लखनऊ ,1977

कला त्रैमासिक, आठ-नौ रा०ल०क०अ०, लखनऊ, 1978

कला त्रैमासिक, रा०ल०क०अ०, अप्रैल से जून 2000

कृति 93 - (कैटेलाग)-उत्तर मध्य सांस्कृति केन्द्र इलाहाबाद, 1993

कुबेर टाइम्स, लखनऊ, 1999

जगदीश गुप्त (कैटेलाग) इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद, 1994

दैनिक जागरण, कानपुर, 1999

प्रयागराज टाइम्स, इलाहाबाद 1994

पत्रकार सदन, लखनऊ, 1994

पत्रकार सदन, लखनऊ 1998

पत्रकार सदन, लखनऊ 1999

पत्रकार सदन, लखनऊ 2000

युग संवाद, लखनऊ 1999

राष्ट्रीय सहारा, देहरादून, 1996

रचना, कला प्रवाह, रजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय लखनऊ, 1969

रामचन्द्र शुक्ल की कला यात्रा - इलाहाबाद संग्रहालय, इलाहाबाद (मोनोग्राफ), इलाहाबाद 1990।

स्वतंत्र भारत, लखनऊ 1993

संग्रह (कैटेलाग) राज्य ललित कला अकादमी लखनऊ, 1989

सुजस, राजस्थान, 1992

समकालीन कला, सन्दर्भ तथा स्थिति, नई दिल्ली, 1980

स्मारिका, दृश्य कला विभाग इ. वि वि. उत्तर मध्य सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद, 1995

हिन्दूस्तान लखनऊ , 2000

त्रिनाले कैटेलाग, ललित कला अ० दिल्ली 1991

त्रिनाले कैटेलाग, ललित कला अ० दिल्ली 1994

त्रिनाले कैटेलाग, ललित कला अ० दिल्ली 1997

संस्कृत

कालिदास :- मालविकाग्निमित्रम् (कालिदास ग्रन्थावली) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी - 1976।

नगेन्द्र :- भारतीय सौन्दर्य शास्त्रावतार: - राष्ट्रीय संस्कृत, संस्थान नई दिल्ली - 1987

माघ :- शिशुपाल वध (महाकाव्य) — हिन्दी साहित्य सम्मेलन - प्रयाग - 1979

ऐतरेय ब्राह्मणम् (प्राच्यभारतीग्रन्थमाला-14) - संपादक : सुधाकर मालवीय:, तारा पब्लिकेशन, कमच्छा वाराणसी, 1980

यजुर्वेद - वेद प्रतिष्ठान, नई दिल्ली - संवत 1934

विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् - नाग पब्लिकेशन, नई दिल्ली- 1985

BIBLIOGRAPHY

1 Acharekar, M R, Roopdarshini, The Indian Approach to Human Form, Bombay, 1963.

2 Agrawala, Vasudeva, Studies in Indian Art, Varanasi, 1965

3 Agrawala, Vasudeva Sharan, The Heritage of Indian Art, Delhi, 1986

4	Alı, S M ,	Geography of Puranas, Delhı, 1966
5	Archer, W G ,	Kalıghat Drawıngs, Bombay, 1962
6	Banerjee, N R ,	Museum and cultural Herıtage of Indıa, Delhı, 1990
7	Bartholomew, R L	Nandlal Bose, New Delhı, 1983
8	Basham, A L ,	The Wonder That Was Indıa, London, 1969
9	Bazın, Germaın,	A Concıse Hıstory of Art II, London, 1968
10	Bhatnagar, Romıla,	Fun Wıth Art and Craft, New Delhı, 1993.
11.	Bıswas, S S ,	Terracotta Art of Bengal, Delhı, 1981
12	Bloom field,	A Vedıc Concordance, Allahabad
13	Brijbhushan, Jamıla,	The World of Indıan Mınıature, San Francısco, 1979
14	Chatanya, Krıshna ,	Art of Indıa, New Delhı, 1987
15	Chaturvedı, G M Verma, S P ,	Creativıty and Contemporary Art ın Indıa, Aligarh, 1987

16	Cheney, Sheldon,	A Primar of Modern Art, New York,
17	Coomaraswamy, A K ,	Christian And Oriental Philosphy of Art, New Delhi, 1974
18	Coomaraswamy, A K	Introduction to Indian Art, New Delhi, 1969.
19	Coomaraswamy, A K ,	The Transformation of Nature in Indian Art, New York, 1954
20	Ettingausen, Richard	Paintings of the Sultans and Emperors of India in American Collection, Delhi, 1961
21	Hugghe, Rene,	Modern Art from 1800 to the present Day, England, 1984
22	Kala, Satish Chandra,	Indian Miniature in Allahabad Musium , Allahabad, 1961
23	Kramrish, Stella,	Art of India London, 1954
24	Leepa, Allen, (Foreword by Herbert Read)	The Challenge of Modern Art, London, 1957
25	Mookerjee, Ajit,	Art of India, Calcutta, 1952
26	Mookerjee, Ajit,	Modern Art in India, New Delhi,

27 Moorti, C Shivram, . Approach to Nature in Indian Art, New Delhi, 1980

28 Moorti, C Shivram, Indian Painting, New Delhi, 1996

29 Pal, M K, Crafts and Craftsmen in traditional India, New Delhi, 1978

30 Pandey, G C, . Citi Vithika Vol, 1, Nos 1-2, Allahabad, 1995-96

31 Rao, P R Ramchandra Modern Indian Painting Madras, 1953

32 Rao, P R Ramchandra Contemporary Indian Art, Hyderabad, 1969

33 Rihardson, John, Picasso, An American Tribute, New York, 1962.

34 Schelen, Norman, · Art in the Modern World, Canada, 1965

35 Singh, Chandra Mani, Centres of Pahari Painting, New Delhi,

36. Srivastava, A L, Silpa Sri, Studies in Indian Art and Culture, Delhi, 1990

37. Tagore, Abnindranath, · Some Notes on Indian Artistic Anatomy Calcutta, 1914

38 Vıshwakarma R K, Paıntıngs ın Ancıent Indıa, Allahabad, 1999

39 Welch, Stuart Cary, · Indıa Art and Culture 1300 — 1900, New York, 1985

JOURNALS AND PERIODICALS

1 Akrıtıyan, Lalıt Kala Akademı, New Delhı, 1993

2 Appreciatıon of Art, B N Arya And Hıs Art, Lucknow, 1975

3 Annual , Government College of Art and Craft, Lucknow, 1957

4 Bıren De (Monograph), Lalıt Kala Akademy Delhı, 1985

5 Chıldren's Voıces from Vıllage Indıa, H R D and N V S., Delhı, 1998

6 Drawıng (Catelogue) S L K A , Lucknow, 1975-76

7 Frontlıne, Chennaı, 1997

8 Four Decades, Art of Uttar Pradesh, Lucknow

9 Hındustan Tımes, Delhı, 1999

10. Hındustan Tımes, Lucknow, 1997

11 Indıan Aesthetıc and Art Actıvıty Vol 2 , Indian Instıtute of Advanced study, Sımla, 1968

12 Maqbool Fıda Husaın's Rare Paıntıng, Sıgned (Catalogue) Delhı, 1995

13 National Herald, 1975

14 Panorama of Indian Paintings, Publication Division, M I B Government of India Delhi, 1992

15 Portfolio of contemporary Paintings, Lalit Kala Akademy, New Delhi,

16 Reader's Digest Family Treasury, of Great Patinters and Great Paintings Montreal Sydney, 1965

17 Recent Paintings of B N Arya, New Delhi 1980

18 Sudhir Khastgir (Monograph) State Lalit Kala Akademy, Lucknow, 1978

19 The Times of India, Delhi, 1980

20 Northern India Patrika, Allahabad, 1980.

चित्रानुक्रमणिका

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
1	राजागोवर्धन चन्द्र	-	पहाडी (गुलेर)	1750	इला0स0
2	कृष्ण और राधा	-	सुजान पुर	-	
3	रगिनी तोडी	-	राजस्थानी	1650	इला0स0
4	सेतु बन्ध		राजपूत	18वीं श0ई0	
5	लैला मजनू		मुगल	18वीं श0ई0	
6	सहस्त्रवाहु वध		बसौली	18वीं श0ई0	
7	वियोग		कागडा	18वीं श0ई0	
8	श्रीकृष्ण जन्मोत्सव		राजस्थानी		
9	कल्पसूत्र(खम्भात)		अपभ्रश	1481 ई0	
10	न्यामत नामा माण्डु		(ईरानी प्रभाव)	1469-1501	
11	लौर चन्दा		अपभ्रश	1540	
12	रसिक प्रिया		राजस्थानी, बूदी	17 वीं सदी	
13	रज्मनामा		मुगल	16वीं शताब्दी	
14	जहाँगीर का शबीह		मुगल		
15	गीत गोविन्द		राजस्थानी	1590-1600 ई0	
16	शकुन्तला	राजा रवि वर्मा	पाश्चात्य /तैल	20वीं श0ई0	
17	स्टोरी टेलर	अमृता शेरगिल	तैल	20वीं श0ई0	मा आ गै दिल्ली
18	सयोजन	गगनेन्द्र नाथ टैगोर	घनवादी/ जलरग	20वीं श0ई0	
19	चित्रकृति	रवीन्द्र नाथ टैगोर	-	20वीं श0ई0	
20	वीणा वादिनी	नन्द लाल बोस	टेम्परा	1937	मा आ. गै दिल्ली
21	रथ	यामिनी राय	टेम्परा 41×27		राष्ट्रीय आ क स दिल्ली

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ.	समय	संग्रह
22	प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट	फ्रांसिस न्यूटन सूजा	तैल	1949	
23	आज	एस0एच0रजा	एन्ग्रेविंग/ 50×65	1972	
24	पेपर कोलॉज	सतीश गुजराल	कोलाज	1968	
25	रिफ्यूजी	के0के0हैब्बर	तैल/102×107	1971	
26	नौटकी (माधुरी)	मकबूल फिदा हुसैन	अक्रेलिक /121 ×183 सेमी	1995	'आर्ट टुडे' दिल्ली
27	नन्द लाल/माधुरी	मकबूल फिदा हुसैन	अक्रेलिक / 121 ×183 सेमी	1995	आर्ट टुडे, दिल्ली
28	माधुरी राज	मकबूल फिदा हुसैन	अक्रेलिक /150 ×106 सेमी	1995	आर्ट टुडे, दिल्ली
29	सत योद्धा	मजीत बावा	तैल 130×105	1986	
30	चित्रकृति	जगदीश स्वामीनाथन	तैल	-	
31	नेचर	अश्वनी शर्मा	तैल 120×135 से0मी0	-	महात्मा गाँधी,काशी विद्यापीठ वाराणसी
32	तात्रिक सयोजन	अब्बास बाटलीवाला	तैल /90×100	1989	उ म क्षे सा केन्द्र
33	पुटकी	नरेन्द्र पाल सिह	अक्रेलिक/तैल 60×75 से0मी0	1990	
34	बाल चित्र	अजीत कुमार	बाल कला	1998	न वि स दिल्ली
35	मिर्जापुर की लोकचित्रकला	नन्दिता शर्मा	गेरू, खडिया	1995-96	उ0म0क्षे0 सास्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद
36	भील पिथौरा	फेमा फात्या	अर्थ कलर	1995-96	उ0म0क्षे0 सा0 केन्द्र,
37	मयूर	पुष्पा आर्या	मिश्रित	-	बी0एन0 आर्या
38	कुमाऊनी लोक कला	पुष्पा आर्या	मिश्रित (लोकला से प्रेरित)		बी0एन0 आर्या

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
39	गणेश	पुष्पा आर्या	लोक कला (कुमाऊनी)	–	बी0एन0 आर्या
40	गीत गोविन्द का दृश्य	राम गोपाल विजयवर्गीय	वाश /50×35 से0मी0	20वीं श0ई0	
41	गीत गोविन्द का दृश्य	राम गोपाल विजयवर्गीय	वाश /50×35 से0मी0	20वीं श0ई0	
42	चैतन्य सकीर्तन काष्ठ पुस्तक वेष्टन		बगाल शैली (परम्परागत)	18वीं श0ई0	
43	भारत माता	अवनीन्द्र नाथ टैगोर	वाश (जलरग)		
44	माता पुत्र	असित कुमार हल्दार	लैक्यूर आन उड	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
45	बुद्धा	असित कुमार हल्दार	वाश जलरग	20वीं श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
46	हारवेस्टिग डे	असित कुमार हल्दार	वाश	20वीं श0ई0	
47	सह अस्तित्व	असित कुमार हल्दार	जलरग	1957 ई0	
48	श्रगार	असित कुमार हल्दार	टेम्परा	20वीं श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
49	वासवदत्ता	असित कुमार हल्दार	टेम्परा	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
50	यशोदा कृष्ण	असित कुमार हल्दार	लैक्यूर आन उड	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
51	इन्तजार	असित कुमार हल्दार	वाश	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
52	उमा	असित कुमार हल्दार	टेम्परा	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
53	इटरनल फ्लेम	असित कुमार हल्दार	जलरग	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
54.	अशीर्षक	असित कुमार हल्दार	जलरग	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
55	वेलोसिटी	असित कुमार हल्दार	कगज पर जलरग	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
56	अशीर्षक	असित कुमार हल्दार	कगज पर जलरग	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
57	जगई मधई	असित कुमार हल्दार	लैक्यूर आन उड	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
58	आन द लुक आउट	असित कुमार हल्दार	टेम्परा	.20वीं श0ई0	इलाहाबाद संग्रहालय

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
59	अबुल	असित कुमार हल्दार	कगज पर जलरग	20वीं श0ई0	अहमदाबाद
60	डेस्टिनी	असित कुमार हल्दार	आधुनिक		
61	समर्पण	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
62	मीराबाई	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
63	गीत गोविन्द	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
64	जयदेव और पद्मावती	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
65	श्रीकृष्ण और राधा	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
66	कृष्ण और गोपियाँ	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
67	रास लीला	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
68	राधा और सखी	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
69	वासर सज्जा	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
70	प्रेम विह्वल राधा	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
71	राधा और सखी	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
72	सखि सवाद	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
73	वियोगी मधुसूदन	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
74	प्रमोन्मत्त कृष्ण	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
75	कलहान्तरिता	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
76	मान भञ्जन	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
77	सानन्द गोविन्द	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
78	कृष्ण राधा विलास	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
79	तिलक रचना	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	वाश	20वीं श0ई0	
80	प्रभु हरिदास	क्षितीन्द्र नाथ मजुमदार	टेम्परा	20वीं श0ई0	रा ल क अ. लखनऊ

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	सग्रह
81	यक्ष पत्नी	शैलेन्द्र नाथ डे	वाश	20वीं श0ई0	चित्रकार के स० मे
82	यक्ष	शैलेन्द्र नाथ डे	जलरग	20वी श0ई0	भा क भवन, वाराणसी
83	पिलग्रिम्स	वीरेश्वर सेन	जलरग /36×25	20वी श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
84	ब्लू माउन्टेन	वीरेश्वर सेन	जलरग	20वीं श0ई0	
85	द गार्जियन	वीरेश्वर सेन	तैल	20वीं श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
86	हिमालय	वीरेश्वर सेन	जलरग	20वीं श0ई0	श्री चित्रालयम त्रिवेन्द्रम
87	माउन्टेन	वीरेश्वर सेन	जलरग	20वीं श0ई0	शिल्पी मद्रास
88	माउन्टेन	वीरेश्वर सेन	जलरग 6×9	20वीं श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
89	प्रसुप्त सिह	वीरेश्वर सेन	जलरग	20वीं श0ई0	
90	दृश्य चित्र	ललित मोहन सेन	तैल	20वीं श0ई0	र। ल क अ नऊ
91	पनिहारिन	ललित मोहन सेन	मोनोक्रोम	20वी श0ई0	श्री सुदेव राम चौधरी
92	पनघट से वापसी	ललित मोहन सेन	टेम्परा	20वीं श0ई0	श्री सुदेव राय चौधरी
क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/माध्यम	समय	संग्रह
93	हिमालय	ललित मोहन सेन	तैल /45×37	20वीं श0ई0	रा ल क अ लखनऊ
94	स्नान गृह मे	ललित मोहन सेन	वाश	20वीं श0ई0	श्री सुदेव राय चौधरी
95	अनगारिका गोविन्द	ललित मोहन सेन	तैल	1940 ई0	-
96	सेल्फ पोर्ट्रेट	ललित मोहन सेन	टेम्परा आन बोर्ड	20वीं श0ई0	इलाहाबाद सग्रहालय
97	बनारस घाट	ललित मोहन सेन	तैल	20वीं श0ई0	-
98	भूखण्ड चित्र	ललित मोहन सेन	तैल	20वीं श0ई0	-
99.	ग्राम्य दृश्य	ललित मोहन सेन	उडकट	20वीं श0ई0	-
100	मुखाकृतिया	ललित मोहन सेन	उडकट	20वीं श0ई0	-
101	गाँधी	ललित मोहन सेन	लिनोकट	20वीं श0ई0	-
102	ग्राम्य दृश्य	ललित मोहन सेन	लिनोकट	20वीं श0ई0	-

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
103	वृक्ष प्रेमी	विनोद बिहारी मुखर्जी	टेम्परा /67 5×52	1932	मा आ गै नई दिल्ली
104	बनारस घाट	विनोद बिहारी मुखर्जी	जलरग	20वीं श0ई0	–
105	मन्दिर का घटा	विनोद बिहारी मुखर्जी	टेम्परा /66 5× 40 5 से0मी0	1952	माडर्न आर्ट गैलरी, नई दिल्ली
106	सूरज मुखी	विनोद बिहारी मुखर्जी	टेम्परा	20वीं श0ई0	–
107	शरवन	विनोद बिहारी मुखर्जी	टेम्परा /33×31 5	1938	इन्दु लेखा घोष
108	हिन्दी सत	विनोद बिहारी मुखर्जी	फ्रेस्को बूनो /23 मी0 8 से0मी0	1947	शान्ति निकेतन (हिन्दी भवन)
109	छत	विनोद बिहारी मुखर्जी	टेम्परा 6 मी0 / 2 5 से0मी0 × 2 मी0 57 से0मी0	1940	शान्ति निकेतन (कला भवन, छात्रावास)
110	हिन्दी सत	विनोद बिहारी मुखर्जी	फ्रेस्को बूनो /23 मी0 8 से0मी0	1947	शान्ति निकेतन (हिन्दी भवन)
111	नेपाली हाट	विनोद बिहारी मुखर्जी	जलरग	1949	–
112	बनारस घाट	विनोद बिहारी मुखर्जी	स्याही /44 5 × 54 5 से0मी0	1943	चित्रकार के व्यक्तिगत सग्रह मे
113	सयोजन	विनोद बिहारी मुखर्जी	जलरग	1949	–
114	प्रोफाइल	सुधीर रजन खास्तगीर	इक	–	इलाहाबाद सग्रहालय
115	माता पुत्र	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /51×74	–	रा ल क अ लखनऊ
116	लेटी स्त्री	सुधीर रंजन खास्तगीर	टैम्परा (60×52)	–	रा ल क अ लखनऊ
117	तूफान मे	सुधीर रजन खास्तगीर	टेम्परा	–	इलाहाबाद सग्रहालय
118	ओल्ड मैन स्मोक्रिग	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल	1959	इलाहाबाद सग्रहालय
119	वाटर टू यूथ	सुधीर रंजन खास्तगीर	टेम्परा	–	इलाहाबाद सग्रहालय
120	पुजारन	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /60×90	–	–

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	सग्रह
121	हेल्पिग हैन्ड	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /60×90	-	-
122	वृक्ष पर तोते	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /60×90	-	-
123	दीप नृत्य	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /33×27	-	-
124	शिव पार्वती	सुधीर रजन खास्तगीर	पेस्टल /56×35	-	रा ल क अ लखनऊ
125	बाउल	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल	-	रा ल क अ लखनऊ
126	सान्थाल प्रेमी	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल /90×120	-	-
127	चर्चा मे	सुधीर रजन खास्तगीर	तैल	-	-
128	स्नेह स्निग्ध सगीत	प्रणय रजन राय	वाश	-	-
129	पासिग स्प्रिग	प्रणय रजन राय	जलरग	-	-
130	आलस्य के क्षण	प्रणय रजनराय	जलरग	-	-
131	संयोजन	हरिहरलाल मेढ	वाश /27×38	1940	-
132	मेघदूत	हरिहरलाल मेढ	वाश /27×38	-	रा ल क अ लखनऊ
133	यक्ष इन एक्जाइल	हरिहरलाल मेढ	वाश	-	रा ल क अ लखनऊ
134	इन्द्र धनुष	हरिहरलाल मेढ	जलरग /38×28	-	-
135	रास्ते के झोपडे	हरिहर लाल मेढ	जलरंग	-	-
136	आरती	बी0एन0जिज्जा	वाश	-	-
137	अल्मोडा बाजार	बी0एन0 जिज्जा	जलरग	-	-
138	दृश्य चित्र	सुखबीर सिहल	जलरग	-	-
139	गुरू द्रोणाचार्य	सुखबीर सिहल	वाश	20वी शताब्दी	साभार पत्रकार सदन
140	अभिसारिका	सुखबीर सिहल	वाश	20वीं शताब्दी	-
141	सरिता	सुखबीर सिहल	वाश	20वी शताब्दी	-
142	कृष्ण अर्जुन	सुखबीर सिहल	वाश	20वी शताब्दी	-
143	सप्तनदी	सुखबीर सिहल	वाश	20वीं शताब्दी	-
144	मून इन कक्रीट	विश्वनाथ मुखर्जी	जलरग/23×25	-	रा ल क अ लखनऊ

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
145	जयपुर लैण्ड स्केप	विश्वनाथ मुखर्जी	टेम्परा	1946	व्यक्तिगत
146	रीडिग	विश्वनाथ मुखर्जी	टेम्परा	1946	व्यक्तिगत
147	खैरागढ की ओर	डी पी धुलिया	तैल /60×75	-	-
148	सयोजन	डी पी धुलिया	-	-	इलाहाबाद के चित्रकार
149	झझा	डी पी धुलिया	तैल /120×90	-	रा ल क अ लखनऊ
150	विलेज गर्ल	डी पी धुलिया	टेम्परा	-	इलाहाबाद सग्रहालय
151	पुल	डी पी धुलिया	तैल	-	इलाहाबाद सग्रहालय
152	सिटी 1	मदनलाल नागर	तैल	1973	-
153	सिटी (ड्राइग)	मदनलाल नागर	इक	-	-
154	अल्मोडा बाजार	मदनलाल नागर	वाश	-	-
155	पलाश वन	मदनलाल नागर	तैल /68×68	-	-
156	सिटी स्केप	मदनलाल नागर	तैल /170×115	-	रा ल क अ लखनऊ
157	सिटी II	मदनलाल नागर	तैल	1978	-
158	सिटी	मदनलाल नागर	तैल	-	रा ल क अ लखनऊ
159	लेन न0 1	मदनलाल नागर	तैल /22×72	-	-
160	लेन	मदनलाल नागर	तैल	-	-
161	दो बहने (ड्राइंग)	राम चन्द्र शुक्ल	इंक	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
162	गिरगिट	राम चन्द्र शुक्ल	समीक्षावादी/ तैल	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
163	पार्वती	राम चन्द्र शुक्ल	परम्परागत/ वाश	1946	इलाहाबाद वि0वि0
164	दीपावली	राम चन्द्र शुक्ल	वाश और टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
165	दीप सज्जा	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
166	प्रेम सगीत	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
167	पूर्णिमा का चाँद	राम चन्द्र शुक्ल	वाश और टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
168	सुधि आई	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
169	प्रभात वेला	राम चन्द्र शुक्ल	वाश और टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
170	घट	राम चन्द्र शुक्ल	टैम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
171	दीपशिखा	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
172	दीपदान (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1956	चित्रकार के व्यक्तिगत
173	प्रतीक्षा	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	-	चित्रकार के स0 मे
174	जीवन यात्रा	राम चन्द्र शुक्ल	वाश/ जलरग	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
175	स्वागत	राम चन्द्र शुक्ल	वाश/ जलरग	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
176	ड्राइग	राम चन्द्र शुक्ल	इक	20वी श0ई0	चित्रकार के स0 मे
177	राम लखन	राम चन्द्र शुक्ल	काशी शे0/टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
178	कमल नयना	राम चन्द्र शुक्ल	टैम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
179	वासक सज्जा	राम चन्द्र शुक्ल	वाश टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
180	सुजाता	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
181	अन्नपूर्णा	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
182	दीपावली	राम चन्द्र शुक्ल	वाश और टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
183	बाल श्रमिक	राम चन्द्र शुक्ल	वाश और टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
184	प्रतीक्षा के क्षण	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
185	सुधि	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
186	पहाडी अभिसारिका	राम चन्द्र शुक्ल	टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
187	बारात	राम चन्द्र शुक्ल	काशी /टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
188	प्रेम प्रसून	रामचन्द्र शुक्ल	काशी/टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
189	महालक्ष्मी	राम चन्द्र शुक्ल	काशी/टैम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे
190	आशिर्वाद	राम चन्द्र शुक्ल	काशी/टेम्परा	20वीं श0ई0	चित्रकार के स0 मे

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
214	शान्त सरोवर	रामचन्द्र शुक्ल	तैल/ 90×120	1980	व्यक्तिगत स0 मे
215	सयोजन	राम चन्द्र शुक्ल	तैल /90×120	1980	व्यक्तिगत स0 मे
216	युवा शक्ति का दुरूपयोग	राम चन्द्र शुक्ल	तैल	1974	व्यक्तिगत स0 मे
217	कुर्सी मे सकट	राम चन्द्र शुक्ल	तैल	1975	व्यक्तिगत स0 मे
218	दीप नृत्य	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1954	व्यक्तिगत स0 मे
219	ममता (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	पेन इक	1957	व्यक्तिगत स0 मे
220	अन्वेषक (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	पेन इक	1957	व्यक्तिगत स0 मे
221	भवर मे (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	पेन इक	1963	व्यक्तिगत स0 मे
222	चिन्तक (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
223	सन्यासी (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इंक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
224	स्वर साधक	राम चन्द्र शुक्ल	इंक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
225	प्रेमालिगन (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
226	लज्जा (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
227	सगीतज्ञ (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	1960	व्यक्तिगत स0 मे
228	नीड की ओर	राम चन्द्र शुक्ल	जलरग	-	व्यक्तिगत स0 मे
229	सहेलियाँ (ड्राइग)	राम चन्द्र शुक्ल	पेन इक	1963	व्यक्तिगत स0 मे
230.	बैल (रेखाकन)	राम चन्द्र शुक्ल	इक	-	व्यक्तिगत सं0 मे
231	केज्ड	असद अली	तैल	-	-
232	किस	असद अली	तैल	-	-
233	घर की ओर	असद अली	वाश/जलरग	-	-
234	ड्राइग	असद अली		-	-
235	ड्राइग	असद अली	-	-	-

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
236	ड्राइग	असद अली		–	–
237	ड्राइग	असद अली		–	–
238	सयोजन	असद अली	कोलॉज		–
239	आर्गेनाइज्ड	असद अली	कोलॉज		–
240	दीप श्रृखला से	जगदीश गुप्त	वाश		–
241	दीप श्रृखला से	जगदीश गुप्त	वाश		–
242	सयोजन	जगदीश गुप्त	आधुनिक/तैल	–	इलाहाबाद
243	युगल सयोजन	जगदीश गुप्त	वाश/जलरग	–	इलाहाबाद
244	हिमालय	जगदीश गुप्त	तैल	–	इलाहाबाद
245	दीपशिखा	जगदीश गुप्त	वाश/जलरग	–	इलाहाबाद
246	निराला (शबीह)	जगदीश गुप्त	तैल	–	इलाहाबाद
247	माता पुत्र	जगदीश गुप्त	मिश्रित	–	चित्रकार के स0 मे
248	सयोजन (रेखाकन)	जगदीश गुप्त	–	–	–
249	वादक (रेखाकन)	जगदीश गुप्त	जलरग	–	–
250	ड्राइंग्स	जगदीश गुप्त	पेन एण्ड इक	–	–
251.	आर0फेनेटिक	रणवीर सिंह बिष्ट	तैल 122×125	1989	रा0ल0क0अ0लखनऊ
252	संयोजन	रणवीर सिह बिष्ट	तैल//89×120	–	–
253	यौवन	रणवीर सिह बिष्ट	वाश/जलरग	–	–
254	ब्लू	रणवीर सिह बिष्ट	तैल/120×130	1978	ल0 क0 अ0, दिल्ली
255	अनवान्टेड चाइल्ड	रणवीर सिह बिष्ट	तैल	–	रा0ल0क0अ0 लखनऊ
256	डेसर्ट	रणवीर सिह बिष्ट	तैल/90×90	1991	रा0ल0क0अ0लखनऊ
257	बूटपालिश	रणवीर सिह बिष्ट	–	1959	–
258	ब्लू	रणवीर सिह बिष्ट	तैल	1970	–

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
259	माउन्टेन	रणवीर सिह बिष्ट	तैल	-	-
260	दृश्यचित्र	रणवीर सिह बिष्ट	जलरग	-	-
261	गगटोक बाजार	रणवीर सिह बिष्ट	जलरग	1954	-
262	ड्राइग	रणवीर सिह बिष्ट	जलरग	1960	-
263	मन्दिर के सामने	रणवीर सिह बिष्ट	तैल/91×122	1956	-
264	शिव ताडव	नित्यानन्द महापात्र	वाश/28×38	-	रा0ल0 क0अ0 लखनऊ
265	सैरा चित्र	नित्यानन्द महापात्र	जलरग/38×57	-	-
266	ड्राइग	नित्यानन्द महापात्र	पेन एण्ड इक	-	-
267	नन्दलाल बोस, रे	नित्यानन्द महापात्र	जल रंग	-	-
268	यीशू	नित्यानन्द महापात्र	टैम्परा	-	-
269	कृष्ण गोपिकाए	नित्यानन्द महापात्र	टेम्परा	-	-
270	लय प्रलय	बद्रीनाथ आर्या	वाश/76×58	1996	रा0ल0क0अ0 लखनऊ
271	पी कहाँ	बद्रीनाथ आर्या	वाश/90×120	1970	व्यक्तिगत स0 मे
272	सावरी	बद्रीनाथ आर्या	वाश/90×120	1969	इला0सग्रहालय
273	घुटन	बद्रीनाथ आर्या	वाश/60×90	1996	चित्रकार के स0 मे
274	बीता युग	बद्रीनाथ आर्या	जलरग	1974	-
275	कॉरीडार्स	बद्रीनाथ आर्या	वाश/135×74	1971	रा0ल0क0अ0लखनऊ
276	लय	बद्रीनाथ आर्या	वाश/जलरग	1973	रा0ल0क0अ0लखनऊ
277	एक समय था	बद्रीनाथ आर्या	वाश/जलरग	1975	चित्रकार के स0 में
278	लय	बद्रीनाथ आर्या	वाश/जलरग	1973	रा0ल0क0अ0लखनऊ
279	आहुति	बद्रीनाथ आर्या	वाश/135×37	1990	चित्रकार के स0 मे
280	जीवन	बद्रीनाथ आर्या	वाश/135×37	1971	मा आ. गै नई दिल्ली
281	सयोजन	बद्रीनाथ आर्या	वाश/60×90	-	चित्रकार के स0 मे

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
283	पहाडी बाला	बद्रीनाथ आर्या	वाश/जलरग/	-	चित्रकार के व्यक्तिगत
284	दृश्य चित्र	बद्रीनाथ आर्या	तैल	-	चित्रकार के स0 मे
285	घर की ओर	बद्रीनाथ आर्या	जलरग	-	चित्रकार के स0 मे
286	ड्राइग	बद्रीनाथ आर्या	पेन एण्ड इक	-	-
287	ग्राम बाला	बद्रीनाथ आर्या	वाश/58×39	1988	-
288	गणेश	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर	1998	चित्रकार के स0 मे
289	बनारस घाट	रघुवीर सेन धीर	वाश	-	-
290	बनारस घाट	रघुवीर सेन धीर	वाश	-	-
291	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	वाश	-	-
292	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	वाश	-	-
293	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
294	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
295	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
296	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
297	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
298	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
299	सयोजन	रघुवीर सेन धीर	पेपर कोलाज	-	-
300	संयाजन ।	रघुवीर सेन धीर	तैल/69×87	-	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
301	स्टिल लाइफ	रघुवीर सेन धीर	तैल/69×87	-	रा0ल0क0अ0 लखनऊ
302	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	जलरग	1999	चित्रकार के स0 मे
303	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	जलरग	1999	चित्रकार के सं0 मे
304	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	जलरंग	1999	चित्रकार के सं0 मे
305	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	जलरग	1999	चित्रकार के स0 मे

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	सग्रह
306	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर प्रिट	1998	व्यक्तिगत
307	रेस्टोरेन्ट ।	रघुवीर सेन धीर	अक्रेलिक/100×4 20 से0मी0	1992	उ0म0क्षे0सा0के0इला0
308	दृश्य चित्र	रघुवीर सेन धीर	जलरग	1999	व्यक्तिगत स0 मे
309	ग्रीटिग	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर ड्राइग	1999	व्यक्तिगत स0 मे
310	ग्रीटिग	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर ड्राइग	1999	व्यक्तिगत स0 मे
311	लार्ड गनेश	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर ड्राइग	2000	व्यक्तिगत स0 मे
312	ग्रीटिग	रघुवीर सेन धीर	कम्प्यूटर ड्राइग	1999	व्यक्तिगत स0 मे
313	सयोजन	दिनकर कौशिक	जलरग	-	-
314	मसूर व जहाँगीर	ईश्वर दास	जलरग	-	व्यक्तिगत स0 मे
315	पतझड	ईश्वर दास	वाश/जलरग	-	व्यक्तिगत स0 मे
316	एस्पेक्टेन्सी	बी0सी0गुई	वाश/जलरग	-	व्यक्तिगत स0 मे
317	रास लीला	बी0सी0गुई	वाश/जलरग	-	व्यक्तिगत सं0 मे
318	स्टिल लाइफ	रवीन्द्र नाथ देव	तैल		रामचन्द्र शुक्ल
319	दृश्यचित्र	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
320	दृश्य चित्र	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
321	दृश्य चित्र	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
322	दृश्य चित्र	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
323.	पशु सयोजन	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
324	मुखाकृतियाँ	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
325	मुखाकृतियाँ	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
326	सूली पर यीशु	रवीन्द्र नाथ देव	तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
327	सयोजन	रवीन्द्र नाथ देव	आ0/तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
328	सयोजन	रवीन्द्र नाथ देव	आ0/तैल	-	रामचन्द्र शुक्ल
329	सयोजन	शम्भूनाथ मिश्रा	जलरग	-	इ0 वि0 वि0 इलाहाबाद
330	चारा	विपिन अग्रवाल	जलरग	-	इ0 वि0 वि0 इलाहाबाद
331	सयोजन	विपिन अग्रवाल	आधुनिक/तैल	-	चित्रकार के स0मे
332	दृश्य चित्र	विपिन अग्रवाल	तैल	-	इलाहाबाद
333	दो बहने	के0 एस0 कुलकर्णी	अक्रेलिक/91 5× 91 5 से0मी0	1986	
334	लैण्डस्केप	रणवीर सक्सेना	तैल	-	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
335	थ्रू द वुड	सतीश चन्द्रा	जलरंग/52 5×70	-	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
336	ओऽम्	बालादत्त पाण्डेय	मिश्रित	1998	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
337	प्रतीक सरचना	योगेन्द्र नाथ योगी	कोलाज/28 5×32 5 से0मी0	1972	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
338	बार्वेड वायर	जयकृष्ण अग्रवाल	एचिग	-	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
339	वाराणसी 87	पम्मी लाल	तैल/83×83	1987	-
340	प्रिटाज नेचर	अखिलेश निगम	मिश्रित/20×32	-	-
341	सिल्क स्क्रीन रोल	सनत कुमार चटर्जी	मिश्रित/3000 ×330 से0मी0	1998	-
342	सयोजन	अर्जुन पी0 गज्जर	तैल/120×120	-	-
343	कोहबर	ह्रदय नारायण मिश्र	तैल/107×92	1989	-
344	मेरा मसीहा	एन0 खन्ना	तैल/106×92	-	रा0ल0क0 अ0 लखनऊ
345	पुरूष और प्रकृति	गोपाल म0 चतुर्वेदी	तैल	-	अलीगढ़
346	प्रकृति रूपा	मनोज कुमार सिह	तैल	-	-
347	भू दृश्य	मो0 सलीम	एक्रेलिक/90×60	1989	गोरखपुर

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
348	नारी योग वृक्ष	किरन राठौर	एचिग/48×32	-	-
349	अभिव्यक्ति	आर0पी0 निगम	तैल/95×97	-	-
350	सिटीस्केप ।	आलोक कुमार	तैल/122×138	1989	लखनऊ
351	चित्र न0 1	अश्विनी शर्मा	तैल	-	आगरा
352	प्रकृति दृश्य	मो0 सलीम	जलरग	-	कुमायूँ
353	अनाम पत्थर	मामून नोमानी	मिश्रित/ 153× 167 सेमी0	-	-
354	द ग्रोथ	उमेश सक्सेना	तैल/123×137	1989	-
355	मिस अन्डर स्टैन्डिग	एस0 अजमत शाह	तैल/122×86	-	-
356	स्पिरिट आफ नेचर	डी0वी0 सेठ, देवन	तैल/108×92	1988	-
357	वोट फ्राम उत्तराखण्ड	बी0पी0कम्बोज	तैल	-	देहरादून
358	बफेलो	अवतार सिह पवार	सिल्वर पेपर/ 52×34 से0मी0	20वीं श0ई0	रा0ल0क0अ0लखनऊ
359	ताण्डव	वीरेश्वर भट्टाचार्या	तैल/	-	उ0म0क्षे0सा0के0 इला0
360	व्यक्तिगत वार्ता	एस0प्रणाम सिह	अक्रेलिक/ 116×126 से0मी0	2000	रा0ल0क0अ0लखनऊ
361	घाट	बैजनाथ प्रसाद गुप्त	तैल	-	वाराणसी
362	नायिका	शरद पाण्डेय	तैल/50×60	1997	रा0ल0क0अ0लखनऊ
363	फ्रेगरेन्स ऑफ माउन्टेन	मजुला चतुर्वेदी	तैल/	1991	म0 गां0 का0 वि0 वाराणसी
364	सयोजन	गोपाल दत्त शर्मा	सचिंग/49×32	-	मेरठ
365	टेररिस्ट ।	राजेन्द्र प्रसाद	जलरग/75×48	-	रा0ल0क0अ0लखनऊ

क्र0	चित्रफलक	चित्रकार	शैली/मा/आ	समय	संग्रह
366	भींगी लता	शान्ताराम महादाणे	तैल/55×60	2000	चित्रकार के स0 मे
367	मसूरी मे सैलानी	मजू गागुली	तैल	-	उ0मा0क्षे0सा0के0 इला0
368	बनारस के घाट	दीप्ति प्रकाश मोहती	अक्रेलिक/	-	बनारस हिन्दू वि0वि0
369	तद्रित	उमेश वर्मा	अक्रेलिक/100×135 से0मी0	-	-
370	भू चित्र	हरीश श्रीवास्तव	तैल/76×101	-	-
371	भू दृश्य	सोम प्रकाश वर्मा	को0 ग्राफिक्र/ 23×33 से0मी0	-	-
372	थियेटर	चन्द्रकात पालीवाल	तैल/120×135	-	उ0म0क्षे0सा0के0 इला0
373	माई क्राइस्ट	एन0 खन्ना	तैल	-	उ0म0क्षे0सा0के0 इला0
374	ज्ञान गगा	आर0के0 विश्वकर्मा	तैल/105×120	1994	उ0म0क्षे0सा0के0इला0
375	मेले से वापसी	आर0के0 विश्वकर्मा	वाश/जलरग	1979	चित्रकार के स0 मे
376	स्टूडियो	आर0के0 विश्वकर्मा	वाश/जलरग	1979	चित्रकार के स0 मे
377	दृश्य चित्र	आर0के0 विश्वकर्मा	जलरग	1980	चित्रकार के स0 मे
378	रसूलाबाद घाट	आर0के0 विश्वकर्मा	जलरग	1980	चित्रकार के स0 मे
379	काल चक्र	आर0के0 विश्वकर्मा	तैल एव मिश्रित	1994	रा0ल0क0अ0 लखनऊ
380	काल चक्र	आर0के0 विश्वकर्मा	तैल/106×92	1991	रा0ल0क0अ0 लखनऊ
381	कृष्ण एव गोपियाँ	आर0के0 विश्वकर्मा	आ0/तैल/ 120×90 से0मी0	1995	उ0क्षे0सां0 के0 पटियाला

परिशिष्ट

उत्तर प्रदेश के अलग होने की तैयारियों के साथ उत्तर प्रदेश का नया नक्शा खीचे जाने की योजना बनने लगी है। केन्द्र सरकार ने ' सर्वे ऑफ इंडिया ' को प्रदेश का नया मानचित्र बनाने की जिम्मेदारी सौंपी है। इस नक्शे में सदियो से खडे हिमालय के इर्द-गिर्द घिरा उत्तराचल का एक बड़ा हिस्सा गायब हो जायेगा।

इस बटवारे के बाद उ0 प्र0 का कुल क्षेत्रफल 2,94411 वर्ग किलोमीटर से घटकर - 2,43286 किलोमीटर रह जायेगा । अब तक उत्तर प्रदेश के मानचित्र पर हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार और हिमाचल प्रदेश की सीमाए छूती थी किन्तु अब हिमांचल प्रदेश उत्तर-प्रदेश का सीमावर्ती राज्य नही कहलायेगा। बल्कि उसका स्थान उत्तराखण्ड या उत्तरांचल ले लेगा।

उत्तर प्रदेश की सीमाओं का इतिहास अपने आप में दिलचस्प रहा है। 18वीं सदी में इस क्षेत्र को लोग अवध के नाम से जानते थे। यह बंगाल के उत्तर पश्चिम सीमांत के साथ फैला उत्तर भारत के विशाल कछार मैदान का एक अशं था। एक अंग्रेज इतिहासकार के अनुसार पहाडो से रक्षित अवध की जलवायु नम थी और यह क्षेत्र हरे भरे पौधों से भरा था। शुरू में इसका क्षेत्रफल 24,000 वर्ग मील था और आबादी करीब साठ सत्तर-लाख। यह वर्णन 1764 का है, जब रूहेलखण्ड और बुदेलखण्ड अलग-अलग प्रांत थे। इतिहासकार 'मोरलैण्ड' के अनुसार 19वी सदी के आरम्भ में उत्तर भारत के मिलाए गये प्रांतों को 'जीते गये प्रदेश ' की संज्ञा दी गई। तब इसके पूर्व में गोरखपुर था, पश्चिम मे रूहेलखण्ड, दक्षिण मे दक्षिण दोआब और एक साल बाद इसमे बुंदेलखण्ड मिला लिया गया। सन 1857 मे इसे संयुक्त प्रांत कहा जाने लगा। आजादी के बाद संविधान की पहली अनुसूची में क्रमांक तेरह पर अंकित होकर ये 'संयुक्त प्रांत ' 'उत्तर प्रदेश' के नाम से जाना जाने लगा।

और अब 1 नवम्बर 2000 से इस प्रदेश का एक ख़ास अंदाज में उठा हिस्सा हमेशा के लिए नक्शे से ग़ायब हो जायेगा ।[1]

---

1 हिन्दुस्तान, (दैनिक) दिनाक-7 सितम्बर 2000 लखनऊ पृष्ठ स0 1-10

प्रदेश
मंडी
सुन्दरनगर
बिलासपुर
शिमला
मानसरोवर झील
राक्षस झील
माना दर्रा
नीती दर्रा
बद्रीनाथ
चमोली
उत्तरकाशी
टिहरी
पौड़ी (गढ़वाल)
नरेन्द्रनगर
हरिद्वार
लैंसडाउन
कोटद्वार
रानीखेत
बैजनाथ
अल्मोड़ा
नैनीताल
पिथौरागढ़
डंडेलधूरा
सिलगढी
जुमला
धनगढी
सल्यान
नेपालगंज
नवाकोट
पोम्बरा
तानसेन
तौलीहवा
करनाल
सहारनपुर
रूड़की
मुजफ्फरनगर
बिजनौर
मेरठ
गाजियाबाद
दिल्ली
गुड़गाँव
मुरादाबाद
रामपुर
बुलंदशहर
बरेली
पीलीभीत
बदायूँ
अलीगढ़
कासगंज
शाहजहाँपुर
फिरोजपुर झिरका
अलवर
वृन्दावन
मथुरा
भरतपुर
आगरा
फतहपुरसीकरी
एटा
मैनपुरी
फतहगढ़
सीतापुर
बहराइच
हरदोई
बाराबंकी
गोंडा
बस्ती
फैजाबाद
अयोध्या
कानपुर
उन्नाव
मुरैना
ग्वालियर
सवाई माधोपुर
जालौन
कालपी
हमीरपुर
फतेहपुर
रायबरेली
सुलतानपुर
आजमगढ
जौनपुर
देवरिया
गाजीपुर
बाँदा
मिर्जापुर
चुनार
ललितपुर
टीकमगढ
बीना
सतना
ध्य प्र दे श
८०
८४

1 नवम्बर 2000 से पहले का उत्तर प्रदेश

उत्तरांचल

उत्तरकाशी

चमोली

पिथौरागढ़

बागेश्वर
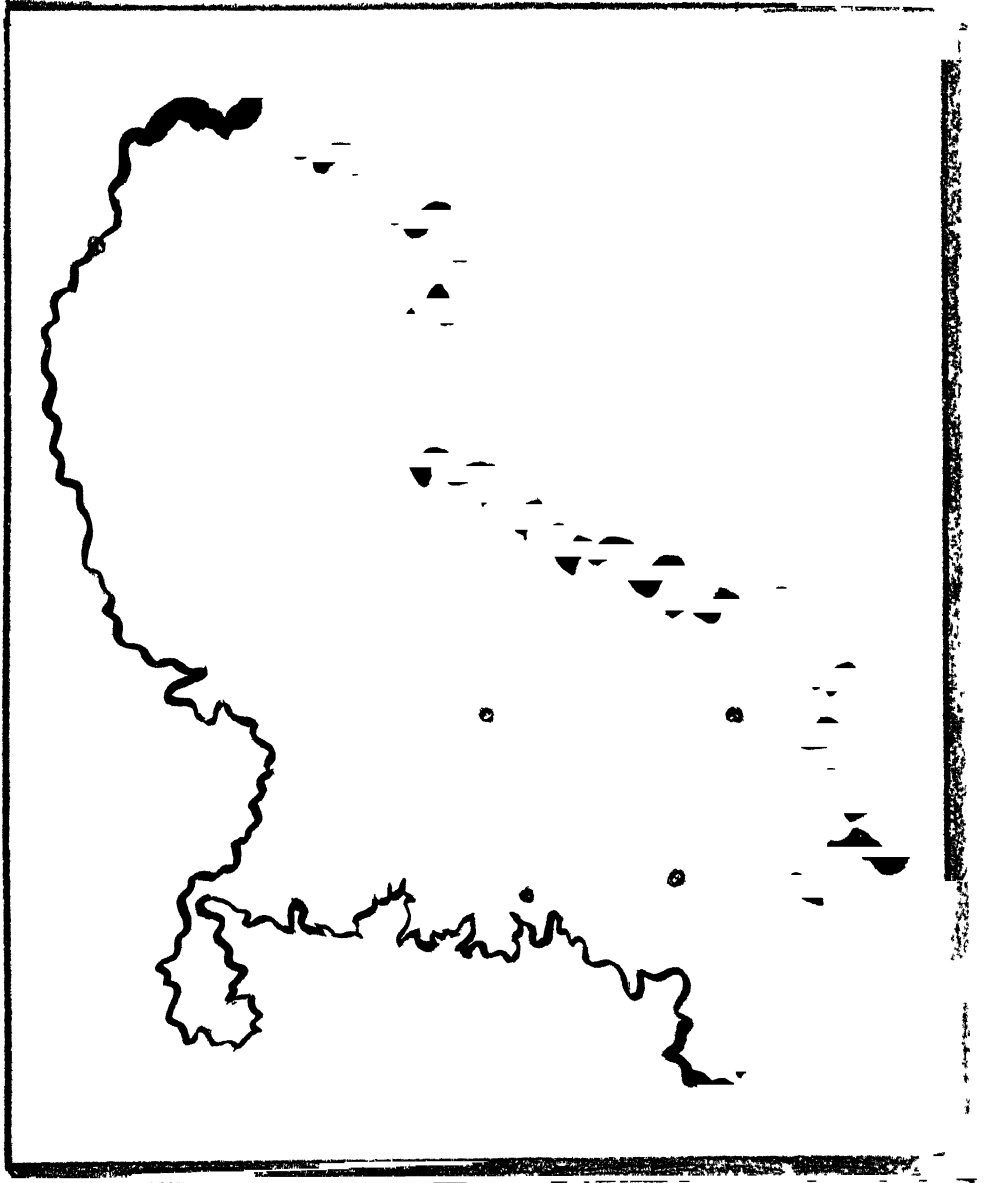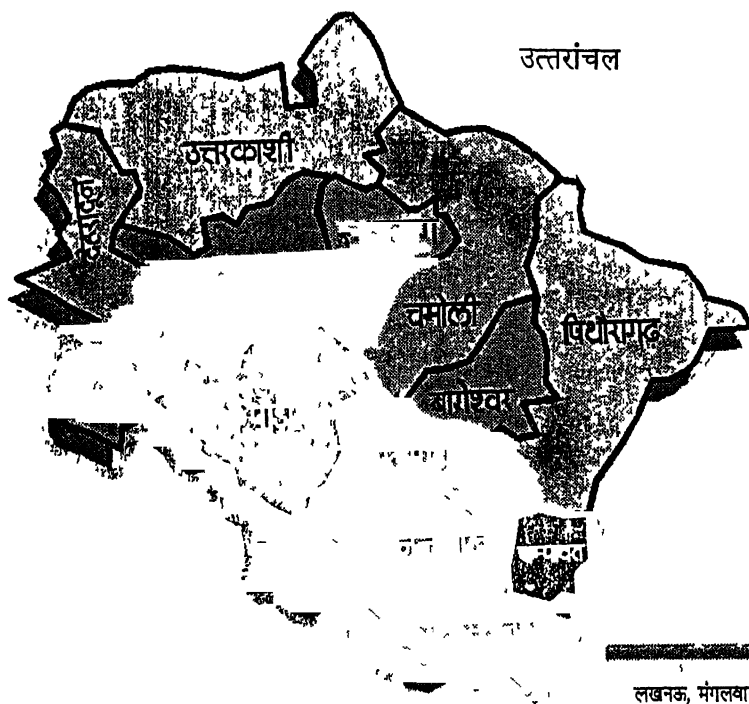
ह - स्तान

लखनऊ, मंगलवार, 29 अगस्त, 2000 ई

1 नवम्बर 2000 के बाद का उत्तर प्रदेश

श्री ललित मोहन सेन

श्री असित कुमार हाल्दार

श्री हरिहर लाल मेढ

श्री नेथेनियल हड

श्री सुधीर रजन खास्तगीर

लखनऊ कला महाविद्यालय के प्राचार्य

लखनऊ कला विद्यालय का स्टाफ 1956–57
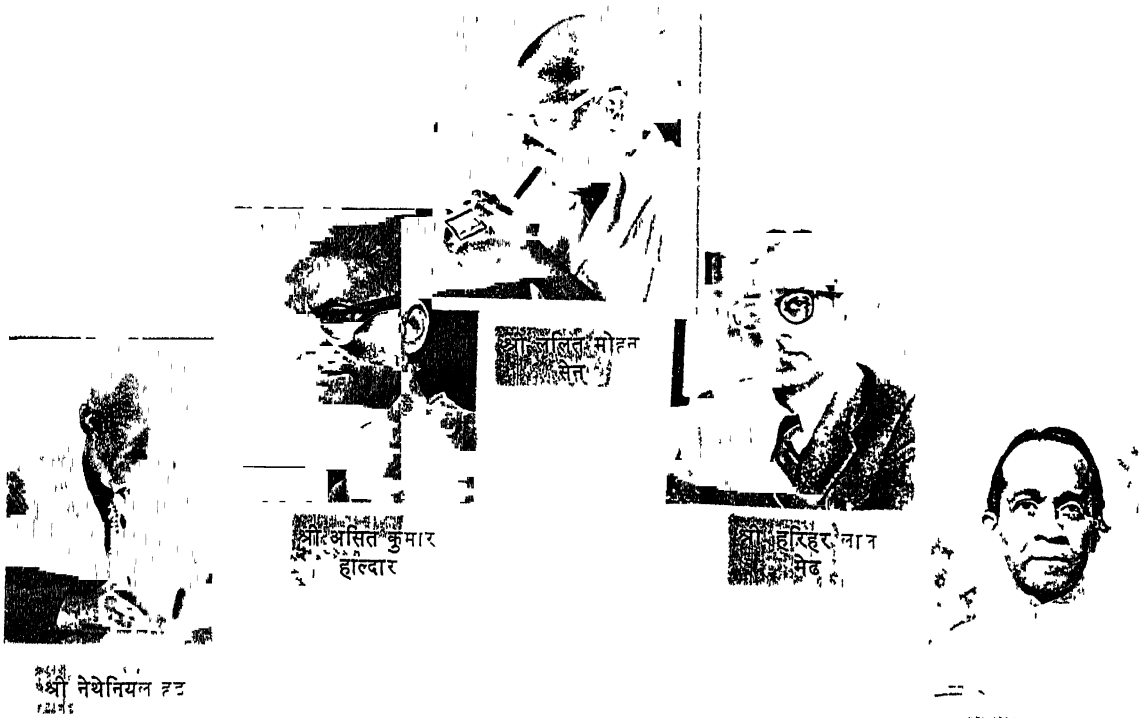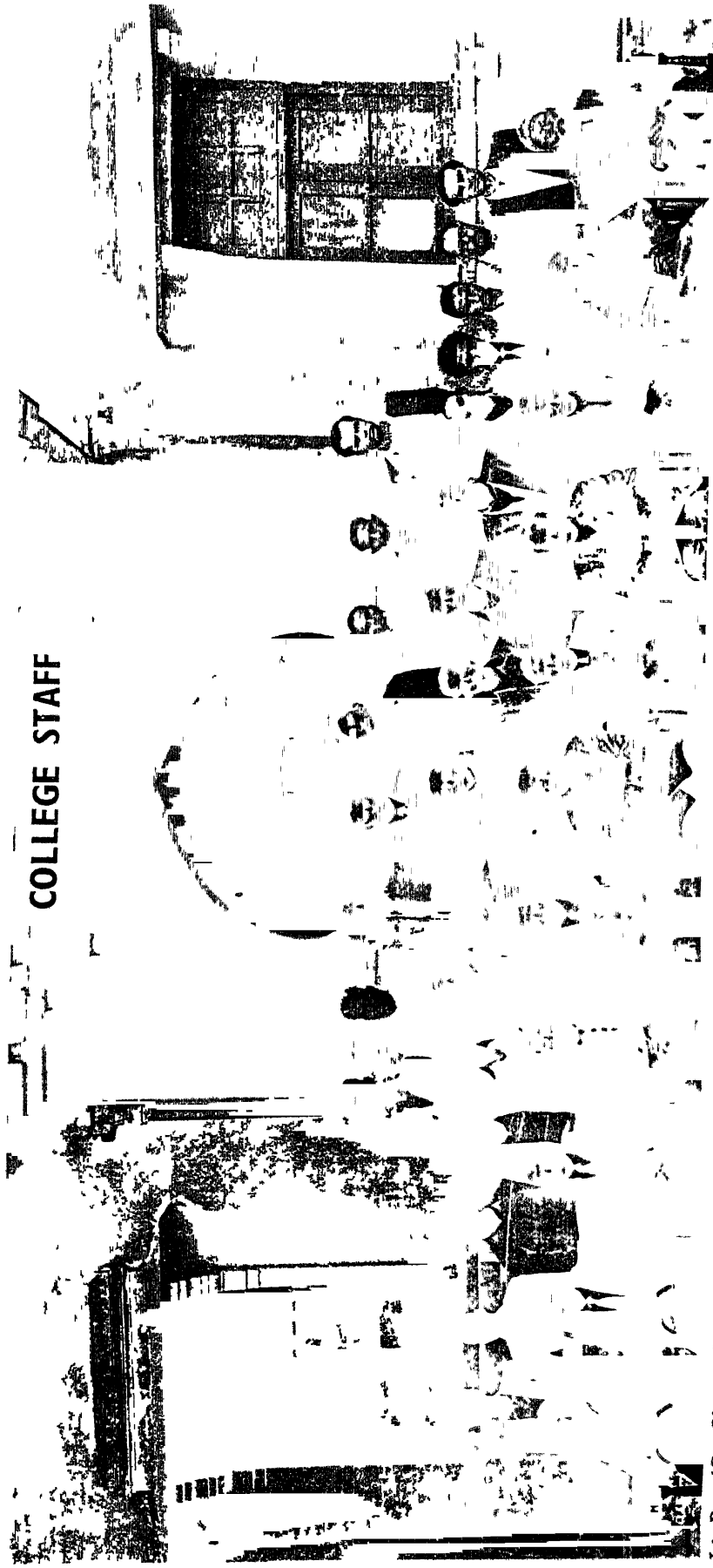
Ist. Row (On Chairs) *From Left*—Messrs Husain Mirza, Laxmi Chand, S Sen, B Sen, H I Meih, S Khastgir (Principal), S R Vaish, Kalyan Singh B. L Sah, S Mahapatra, Abdul Majid

2nd Row—Messrs V H Lulla Mahipal Singh, Bhim Sen, K D. Singh T Singh Phool Chand, Tek Chand M L Nagar Md Haneef Sibte Hasan, Md. Yunus Bishambhar Nath Kirti Singh K C Kapoor, S Govind S P Kapur

3rd Row—Messrs R. Prasad, Zafar Husain Mustafa Khan R. S Bisht A S Panwar Ganga Prasad [illegible]